राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था

(१५७४ से १८१८ ई०)

राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था

(१५७४ से १८१८ ई०)

डॉ० जी. एस. एल. देवड़ा

बीकानेर संभाग के संदर्भ मे

प्रकाशक धरती प्रकाशन गंगाशहर, बीकानेर ३३४००१/मुद्रक विकास आर्ट प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली ३२/आवरण सनू/संस्करण प्रथम, १९८१

RAJASTHAN KI PRASHASNIK VYAVASTHA (History)
By Dr G S L Devra

पुज्यनीय पिता श्री
स्व० श्री सीतारामजी देवडा
की पावन स्मृति मे...

आमुख

अपनी सांस्कृतिक एकता के पीछे राजस्थान प्रदेश भौगोलिक व वातावरणीय दृष्टि से दो भागों में विभक्त है। एक भाग हरा भरा ऊंची अरावली पहाड़ियों की विभिन्न शाखाओं से युक्त है जिसे अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों ने अध्ययन का क्षेत्र बनाकर राजस्थान का इतिहास लिखा है। द्वितीय भाग रेतीले टीलों से भरा हुआ है, जिस पर प्रकृति की अनुदारता के साथ साथ इतिहासकारों का भी ध्यान कम गया है। परिणामस्वरूप राजस्थान का इतिहास लेखन व अध्ययन की दृष्टि से अपने-आपमें पूर्ण व संतुलित नहीं रहा है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थान के रेतीले संभाग का १५७४ से १८१८ ई० तक के काल के कुछ पक्षों का अध्ययन करके एक प्रारम्भिक व सीमित प्रयास किया गया है।

राजस्थान का उत्तर पश्चिमी रेतीला क्षेत्र अपनी विकट प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण न केवल राजस्थान में बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक भिन्न स्थान रखता है। विश्व के रेगिस्तानों में इसको सबसे ऊंचा बड़ा गर्द भरा रेगिस्तान बतलाया गया है। यहां का इतिहास निरंतर प्राकृतिक विपदाओं तथा मनुष्य कृत समस्याओं से जूझने का इतिहास है। उल्लेखनीय बात यह है कि अत्यधिक गर्म प्रदेश, वर्षा की कमी तथा सिचाई के साधनों के अभाव में भी यहाँ के मानव ने संघर्षरत होकर अपने श्रेष्ठ गुणों का परिचय दिया है। उन्होंने न केवल भारतीय संस्कृति की धरोहर को रेतीले टीलों के बीच सुरक्षित रखा बल्कि स्थानीय विशेषताओं व मान्यताओं से उसे परिष्कृत करके नूतनता व गति प्रदान की। मुगल काल में केन्द्र के नियंत्रण व हस्तक्षेप के बाद भी उसके उचित प्रभावों को स्वीकार करके व स्थानीय परम्पराओं के बीच उन्हें रखकर जो विकास की गति इस क्षेत्र को प्रदान की वह इतिहास का स्मरणीय अध्ययन है। विश्व के रेगिस्तानी भागों में ऐसे बहुत कम क्षेत्र हैं जहां इस प्रकार विकास की निरंतर प्रक्रिया चलती रही है।

मध्ययुग में इस रेतीले संभाग में स्थापित कबीलावादी व जातीय परम्पराओं के बीच राठौड़ जाति मात्र एक आक्रमणकारी के आवेग में यहां के अल्प साधनों को निचोड़ने के लिये नहीं आई थी बल्कि सदैव के लिये यहां बसने की

दृढ धारणा के साथ सत्ता स्थापित करने हेतु आई थी। निरन्तर विजयो के परिणामो को सुदृढ व स्थायी बनाने के लिए गठित व प्रभावशाली प्रशासकीय संस्थाओ को स्थापित करने मे अथक प्रयास किए थे। इन प्रयासो मे आन्तरिक विरोधो व समर्थन ने तथा बाह्य दबावो व संरक्षण ने जो योगदान दिया था, वह इतिहास की प्रक्रिया मे सीमाचिह्न है। प्रशासकीय वर्ग के तीन शक्तिशाली तत्त्व-राजा, सामन्त व मुत्सद्दी ने अपने विकास, लाभ व हानि के समक्ष प्रशासन की विभिन्न संस्थाओ के निर्माण मे जो योगदान दिया तथा उनकी अवनति के द्वार खोलकर जहाँ सामान्य व्यक्ति के कष्टो मे वृद्धि की तथा बाह्य दबावो के सम्मुख अपनी शताब्दियो से संभाली मान्यताओ के मूल्य को समझा तथा फिर स्वयम् ही उनके विनाश मे कोई कसर नही छोडी—यह सब प्रस्तुत अध्ययन के मुख्य विषय हैं। कर संरचना, उसके स्वरूप तथा समाज के विभिन्न वर्गों पर पडने वाले उसके दबावो का मूल्यांकन करके कुछ निश्चित निर्णयो पर आने का यत्न किया गया है ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि राज्य की मूल समस्यायें आन्तरिक थीं। राज्य के उत्थान व पतन के पीछे निर्णय युद्ध के मैदानो मे न होकर विभिन्न संस्थाओ के गठन, कौशल तथा चरमराने व निष्प्राण होने से हुए थे। राज्य के बजट का अध्ययन करके उसके सम्पूर्ण नाडी संस्थान को पकडने का प्रयास किया गया है ताकि वित्तीय असंतुलन के राजनैतिक व सैनिक दुष्परिणाम समझाये जा सकें।

१५७४ से १८१८ ई० के बीच का काल राजस्थान इतिहास मे साधारणतया तथा विशेषकर रेतीले संभाग मे नवस्थापित बीकानेर राज्य के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण था। १५७४ ई० मे बीकानेर राज्य के मुगल सत्ता के साथ सन्धि होने के पश्चात् इस संभाग के आन्तरिक ढांचे पर दूरगामी प्रभाव पडे। ढीली-ढाली कबीला व कुलीय राजनीतिक व्यवस्था अब तेजी से सशक्त नृपतन्त्र की ओर अग्रसर होने लगी। क्षेत्रीय सीमाओ का गठन हुआ। सम्पूर्ण सत्रहवीं शताब्दी राजसत्ता के विस्तार के प्रयासो व प्रभावो की गाथा है। अठारहवी शताब्दी मे मुगलो के पराभव से पडने वाले परिणामो बाह्य आक्रमणो की चिन्ता तथा राज्य व कुलीय सामन्तवाद के बीच व्याप्त निरन्तर संघर्ष की चुनौतियो ने सम्पूर्ण व्यवस्था को झकझोरे रखा तथा जिसका समाधान ढूढने के लिये भारत मे उठती हुई ब्रिटिश सत्ता से संरक्षण प्राप्त करने के कदम उठाये गये। आधुनिक काल मे भारतीय संघ मे विलीनीकरण से पूर्व अधिकांश राजस्थान के राज्यों को इसी काल मे परीक्षण के दौर से गुजरना पडा तथा स्थायित्व पाने के लिये नये सिरे से प्रयास करने पडे।

प्रस्तुत पुस्तक मेरे शोध प्रबन्ध 'बीकानेर राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था' पर आधारित है। इसे तैयार करते समय उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण तथ्यो से मेरा साक्षात्कार

हुआ था, तथा मैंने अनुभव किया था कि इस क्षेत्र के इतिहास का सही निरूपण करने के लिये, यहा की विपुल अभिलेखीय सामग्री अध्ययन का आधार है। यह सामग्री प्रशासन व जीवन के प्रत्यक पक्ष पर प्रकाश डालती है। राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र मे अधिकाश अभिलेखीय सामग्री वहियो के नाम स विख्यात है। राज्य द्वारा लागू किये जाने वाले आदेशो स लेकर, प्रशासन द्वारा उन्हें क्रियान्वित करने तथा प्रजा द्वारा उनके पालन किय जाने, विभिन्न करो, वेतन, अधिकारो, नियुक्तियो, सूचनाए आदि सभी का आधिकारिक विवरण प्राप्त हो जाता है। यह सत्य है कि इस सामग्री की कुछ सीमाए है। प्रथम, इसम सरकारी पक्ष ही उभरकर सामने आता है। द्वितीय, य वहिया अधिकतर सत्रहवी-शती के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होती हैं।

१६वी व १७वी शताब्दी के अधिकाश भाग के अध्ययन के लिये साहित्यिक सामग्री अपनी समस्त सीमाओ के बाद भी, मुख्य आधार है। वैस बीकानेर क्षेत्र मे ऐतिहासिक सामग्री अन्य क्षेत्रो की तुलना म १६वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही प्राप्त होने लगती है। अकबरकालीन कुछ रचनाए तो बहुत प्रामाणिक हैं। अध्ययन मे सहयोग के लिये फारसी साहित्य व फरमानो का पूर्ण लाभ उठाया गया है। १८वी शताब्दी व तत्पश्चात् रचित ख्यात साहित्य महत्वपूर्ण सामग्री के रूप मे मिल जाता है। इस क्षेत्र की प्रसिद्ध ख्यात दयालदास की ख्यात है, पर अधिक प्रामाणिक विवरण इसमे पूर्व लिखित ख्यात 'बीकानेर रै राठौडा री ख्यात महाराजा सुजाणसिंह जी सू महाराजा गजसिंह जी ताई' मे है। प्रस्तुत काल की स्थितियो व समस्याओ का निष्पक्ष ज्ञान प्राप्त करने तथा उनके और समीप जाने म बीकानेर शहर के दो निजी सग्रह—मोहता व भैय्या सग्रह बहुत लाभदायक सिद्ध हुए है। इस सामग्री तथा विशेषकर भैय्या सामग्री के बिना तो १८वी शताब्दी के अन्त म आई प्रशासनिक जटिल समस्याओ तथा सकट को पूरी तरह समझ पाना ही कठिन था।

प्रस्तुत पुस्तक मे जहा तक सम्भव हुआ है, स्थानीय भाषा के शब्दो का व्याख्या के साथ प्रयोग किया गया है। परन्तु इन शब्दो का प्रयोग कई स्थलो पर होने पर बाद मे आने वाले हर स्थल पर व्याख्या नही की गई है। यही स्थिति प्रत्येक शासक के काल वर्णन को लेकर है। मूल सामग्री मे प्राप्त सूचनाओ को और अधिक स्पष्ट करने के लिये स्थल-स्थल पर सारिणिया दी गई हैं—विशेष कर पट्टायतो के दरबारी गठन मे तथा वित्तीय आकडो म। इसी दृष्टि से कुछ स्थलो पर रेखाचित्र व मानचित्र का भी सहारा लिया गया है। प्रस्तुत पुस्तक मे पाठको को कुछ शब्द उलझन पैदा कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, सामान्यत प्रत्येक उच्च अधिकारी के लिये 'हवलदार' शब्द का प्रयोग हुआ है। अत एक स्थल पर अनेक 'हवलदारो' का वर्णन आ जाना उलझन पैदा कर सकता है।

दृढ धारणा के साथ सत्ता स्थापित करने हेतु आई थी। निरन्तर विजयो के परिणामो को सुदृढ व स्थायी बनाने के लिए गठित व प्रभावशाली प्रशासकीय सस्थाओ को स्थापित करने के अथक प्रयास किये थे। इन प्रयासो मे आन्तरिक विरोधो व समर्थन ने तथा वाह्य दबावो व सरक्षण ने जो योगदान दिया था, वह इतिहास की प्रक्रिया म सीमाचिह्न है। प्रशासकीय वर्ग के तीन शक्तिशाली तत्व-राजा, सामन्त व मुत्सद्दी ने अपने विकास, लाभ व हानि के समक्ष प्रशासन की विभिन्न सस्थाओ के निर्माण म जो योगदान दिया तथा उनकी अवनति के द्वार खोलकर जहाँ सामान्य व्यक्ति के कष्टो मे वृद्धि की तथा वाह्य दबावो के सम्मुख अपनी शताब्दियो से सभाली मान्यताओ के मूल्य को समझा तथा फिर स्वयम् ही उनके विनाश मे कोई कसर नही छोडी—यह सब प्रस्तुत अध्ययन के मुख्य विषय हैं। कर सरचना, उसके स्वरूप तथा समाज के विभिन्न वर्गो पर पडने वाले उसके दबावो का मूल्याकन करके कुछ निश्चित निर्णयो पर आने का यत्न किया गया है ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि राज्य की मूल समस्यायें आन्तरिक थी। राज्य के उत्थान व पतन के पीछे निर्णय युद्ध के मैदानो मे न होकर विभिन्न सस्थाओ के गठन, कौशल तथा चरमराने व निष्प्राण होने स हुए थे। राज्य के बजट का अध्ययन करके उसके सम्पूर्ण नाडी सस्थान को पकडने का प्रयास किया गया है ताकि वित्तीय असतुलन के राजनैतिक व सैनिक दुष्परिणाम समझाये जा सकें।

१५७४ म १८१८ ई० के बीच का काल राजस्थान इतिहास मे साधारणतया तथा विशेषकर रेतीले सभाग मे नवस्थापित बीकानेर राज्य के लिये बहुत महत्वपूर्ण था। १५७४ ई० म बीकानेर राज्य के मुगल सत्ता के साथ सन्धि होने के पश्चात् इस सभाग के आन्तरिक ढाचे पर दूरगामी प्रभाव पडे। ढीली-ढाली कबीला व कुलीय राजनीतिक व्यवस्था अब तेजी से सशक्त नृपतन्त्र की ओर अग्रसर होने लगी। क्षेत्रीय सीमाओ का गठन हुआ। सम्पूर्ण सत्रहवी शताब्दी राजसत्ता के विस्तार के प्रयासो व प्रभावो की गाथा है। अठारहवी शताब्दी म मुगलों के पराभव से पडने वाले परिणामो वाह्य आक्रमणो की चिन्ता तथा राज्य व कुलीय सामन्तवाद के बीच व्याप्त निरन्तर सघर्ष की चुनौतियो ने सम्पूर्ण व्यवस्था को झकझोरे रखा तथा जिसका समाधान ढूढने के लिये भारत मे उठती हुई ब्रिटिश सत्ता स सरक्षण प्राप्त करने के कदम उठाये गये। आधुनिक काल म भारतीय सघ मे विलीनीकरण से पूर्व अधिकाश राजस्थान के राज्यों को इसी काल म परीक्षण के दौर से गुजरना पडा तथा स्थायित्व पाने के लिये नये सिरे से प्रयास करने पडे।

प्रस्तुत पुस्तक मेरे शोध प्रबन्ध 'बीकानेर राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था' पर आधारित है। इसे तैयार करते समय उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण तथ्यो से मेरा साक्षात्कार

यही स्थिति 'मुबाता' को लेकर है। लेकिन इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।

मेरे इस प्रयास को मूर्त रूप देने म जिन-जिन लोगो न स्नेह व सहयोग मिला है, उन सबके नामों का उल्लेख करना सम्भवत मेरे सामर्थ्य म नहीं है। सर्वप्रथम, मैं उन तीन आत्माओं---स्व० श्री नाथूराम खड्गावत (भूतपूर्व, निदेशक, राजस्थान राज्य अभिलेखागार), स्व० श्री घासीराम जो परिहार (भूतपूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग, डूगर महाविद्यालय, बीकानेर) एव स्व० श्री जयपालसिंह जी भैय्या (भैय्या सग्रह के स्वामी) की वन्दना करता हू, जिन्होंन न केवल इस क्षेत्र सम्बन्धी विपुल सामग्री से मेरा परिचय करवाया बल्कि विषय को समझने तथा कदम-कदम पर आने वाली प्रत्येक अड़चनों को दूर किया। मुझे इस बात का हार्दिक दुख है कि प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन से पूर्व ही वे इस असार ससार से विदा ले चुके हैं। प्रो० सतीशचन्द्र (अध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) न मुझे इस बात की प्रेरणा दी कि अन्य क्षेत्रों के इतिहास का अध्ययन करने की अपेक्षा मैं अपनी मातृभूमि के विगत इतिहास का अध्ययन करू। उनकी इस प्रेरणा के लिए मैं नतमस्तक हू।

पुस्तक को साकार बनाने में रायसिंह ट्रस्ट, जूनागढ़, बीकानेर न जो चार हजार रुपये की राशि मुद्रण खर्च हेतु दी, उसके लिये मैं डा० करणीसिंह व ट्रस्ट के सदस्यों के प्रति हृदय स अपना आभार व्यक्त करता हूँ। डा० करणीसिंह जो स्वयम् इस क्षेत्र के एक गम्भीर शोधकर्ता हैं, इस बात के लिय सदैव उत्सुक रहे कि मेरा शोध-प्रबन्ध पुस्तक के रूप म प्रकाश म आये। डा० नारायणसिंह घण्टेल ने भी इस कार्य म सदैव मेरा उत्साह बढाया। मेरे मित्र डा० मेघराज शर्मा न मुद्रण सम्बन्धी अनेक व्यवस्थायें जुटाकर अकथनीय सहायता दी। मैं इन सब महानुभावों के प्रति एक बार पुन हृदय स आभार व्यक्त करता हू।

राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर व अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानर के अधिकारियो व कर्मचारियो न जो मुझे सहयोग व सुविधाएं दी उनको धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हू। श्री ओमप्रकाश, धरती प्रकाशन, गगाशहर, के उत्साह व सहयोग के बिना तो इसका मुद्रण, साज-सज्जा व शीघ्र प्रकाशन सम्भव ही नहीं होता।

अन्त मे, मैं डा० दिलबागसिंह, श्री बृजलाल विश्नोई, श्री शिवरतन भूतडा, श्री एस० के० भनोत, डा० शिवनारायण जोशी व डा० शशी अरोडा का भी आभारी हूँ, जिनकी सत्प्रेरणाओं से यह अनुष्ठान पूरा हो सका।

जनवरी, १९८१ जी० एस० एल० देवडा
बीकानेर

अनुक्रम

संक्षेपण

१. रा० रा० अ० बी० — राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर

१ अ० स० पु० बी — अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पवित	अशुद्ध	शुद्ध
६४	अन्तिम	साईदासोत व साईदास	साईदासोत व साईदास
१०२	१८	मढी रा हुवलदार	मडी रा हुवलदार
१५२	मुख्य पवित	जमीवार	जमादार
१६३	न० ६	कोयला दलाला	कीयाला द ाला
१६४	न० २६	हबक	हवूव
१६४	न० ३०	मूगा	मूगा
१६५	१	भाल	माल
२०८	२३	रार्जसिह	गर्जसिह

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

सन् १६४६ ई० मे राजपूताना की रियासतो के राजस्थान राज्य मे विलीनीकरण से पूर्व बीकानेर राज्य भारतीय मरुप्रदेश मे अक्षाश २७.१२° से ३०.१२° उत्तर तथा देशान्तर ७२.१२° से ७५.४१° पूर्व के बीच फैला हुआ था। राठौड सरदारो के आक्रमण से पूर्व यह क्षेत्र जांगल देश के नाम से जाना जाता था।[1] इसका सम्पूर्ण क्षेत्रफल २३,३१७ वर्गमील था। राजपूताना के राज्यो मे क्षेत्रीय विस्तार की दृष्टि से इसका स्थान दूसरा था।[2] विलीनीकरण से पूर्व राज्य की सीमाए उत्तर मे पजाब के फिरोजपुर जिले, उत्तर-पूर्व मे हिसार जिले तथा उत्तर-पश्चिम मे भावलपुर राज्य की सीमाओ मे मिलती थी। राज्य के दक्षिण मे जोधपुर, दक्षिण-पूर्व मे जयपुर और दक्षिण-पश्चिम मे जैसलमेर की रियासतें

---

१ महाभारत में इस क्षेत्र का वर्णन इस प्रकार मिलता है

'तत्रै ते कुरुपाचाला शाल्वा माद्रेय जाङ्गला:'

इसका तात्पर्य यह है कि कुरु देश से मिला हुआ पाचाल देश, शाल्व और मद्र देश से मिला हुआ जांगल देश आदि।

महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय ६, श्लोक ३६

जांगल देश के लक्षण ये बतलाये जाते हैं कि जिस देश में जल और घास कम होती हो, वायु व धूप की प्रबलता हो और अन्न आदि बहुत होता हो, उसको जांगल देश जानना चाहिए। (स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवात: प्रचुर: तप:। सज्ञेया जांगलो देशो बहु धान्यादि संयुत ॥)

शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ० ५२६

—उपाध्याय-कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनक काव्यम्, पृ०, २५

(अनुवादक—डॉ० एच० ओझा)—अभय जैन ग्रथालय १२००। इम्पी० बीकानेर—दी इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, भाग ८, पृ० २०२

—डा० करणीसिंह, दी रिलेशन्स आफ दी हाउस आफ बीकानेर विद दी सेंट्रल पावर्स (१४६५-१६४६ ई०), पृ० १४४, नई दिल्ली, १६७४

२ इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, भाग ८, पृ० २०२, अर्सकिन गजेटियर आफ बीकानेर, पृ० ३०६, राजपूताने मे जोधपुर राज्य का क्षेत्रफल सबसे अधिक ३५,०६६ वर्गमील था।

स्थित थी।[1]

आकार मे अपने पडौसी राज्यो की तुलना मे (मारवाड को छोडकर) बीकानेर राज्य क्षेत्रीय दृष्टि से विशाल अवश्य था तथापि जनसख्या मे पिछडा हुआ था।[2] २३,३१७ वर्गमील के क्षेत्र में लगभग १७०० गाव थे।[3] राज्य की शुष्क जलवायु, पानी तथा प्राकृतिक साधनो के अभाव जनसख्या की वृद्धि मे बाधक थे। मुख्यत राज्य मे पानी की कमी से भूमि के अधिकाश भाग पर कृषि नही होती थी। अत इस रेतीले और कम आबादी वाले राज्य मे दृढ और सुसगठित प्रशासनिक सस्थाओ की स्थापना एक दुष्कर कार्य था। वर्षा की कमी के कारण बार-बार पडने वाले अकाल, निवासियो और प्रशासको—दोनो के लिए, एक सदैव बनी रहने वाली समस्या थे।[4]

---

१ इम्पीरियल गजेटियर आफ इडिया, भाग ८, पृ० २०२

२. १९२१ ई० में जनसख्या की दृष्टि से बीकानेर राज्य का स्थान राजपूताने मे पाचवा था जो १९३१ ई० में बढ़कर चतुर्थ हो गया। उस समय राज्य की कुल जनसख्या ६,३६ २१८ थी।
—रिपोर्ट आन दी सेन्सस आफ दी बीकानेर स्टेट, बीकानेर १९३१, रा० रा० अ० पुस्तकालय, बीकानेर।
सत्रहवी शताब्दी के अन्त मे राज्य की जनसंख्या लगभग ढाई लाख अनुमानित थी। यह गणना राज्य मे धुआ भाछ (गुहकर), जो प्रत्येक घर से वसूल की जाती थी, के आधार पर तय की गई है। इसमें प्रत्येक घर मे साढे चार व्यक्तियो को आका गया है। १८वी शताब्दी के अन्त में राज्य का क्षेत्र बढ जाने के कारण जनसख्या मे कुछ और वृद्धि हुई होगी। पाउलेट ने अपने गजेटियर में १९वी शताब्दी के प्रथम भाग में प्रत्येक घर में पाच व्यक्तियों का जोड बिठाकर तीन लाख की जनसख्या अनुमानित की है। जेम्स टॉड ने १८वीं शताब्दी के अन्त मे प्रति घर पाँच व्यक्तियों की गणना के आधार पर ही लगभग पाच लाख उन्तालीस हजार की जनसख्या बतलाई है। यह अनुमान उस काल की विषय से सम्बन्धित अभिलेखीय सामग्री के आधार पर सही प्रतीत नही होता है—धुआँ रोकड बही, स० १७५०/१६९३ ई०, न० ८८, बीकानेर बहियात, रा० रा० अ० बी०, क० जेम्स टाड एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ राजस्थान, भाग २, पृ० ११६४, आक्सफोर्ड, १९२० ई०, पाउलेट गजेटियर आफ दी बीकानेर स्टेट, पृ० ८६, बीकानेर १९३५

३ समकालीन अभिलेखीय सामग्री से यह निष्कर्ष निकलता है कि १८वी शताब्दी के अन्तिम दशक से पूर्व राज्य में गावों की सख्या लगभग १५०० थी। गावो की सख्या में वृद्धि १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शनै शनै महाराजा गजसिंह तथा सूरतसिंह के राज्यकाल में क्षेत्रीय विस्तार के कारण सम्भव हुई थी—पट्टा बही, स० १७२५/१६६८ ई०, न० ३३/४, रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर बही खालसा रे गाँव री, स० १७२५/१६६८ ई०, बीकानेर बहियात, रा० रा० अ० बी०, बही न० २, स० १८७८/१८२१ ई०—भैय्या सग्रह, बीकानेर।

४ प्रकृति ने इस क्षेत्र पर किसी भी तरफ से अपनी कृपा नही दिखाई है। यह क्षेत्र भारत के विशाल थार मरुस्थल मे स्थित है। अधिकाश भाग बजर तथा सूखा है। स्थान

१२वी शताब्दी के अन्तिम चरण मे, राजपूताने में चौहानों की सत्ता के पराभव के साथ, विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र मे कई छोटी-छोटी स्वशासित इकाइया उभरने लगी,[1] जो आगे चलकर भोमीचारा तथा ग्रासिया कहलाई। इन प्रदेशो के दिल्ली के इतने निकट स्थित होने पर भी दिल्ली के सुल्तान चौहान-शक्ति के पतन का लाभ नही उठा सके।[2] उनकी अधिकाश गतिविधिया भटनेर के क्षेत्र तक ही सीमित रही।[3] परिणामस्वरूप केन्द्रीय सत्ता के हस्तक्षेप से मुक्त इस क्षेत्र की अनेक जातियाँ अवसर का लाभ उठाकर इसके अलग-अलग भागो पर अपना अधिकार जमाने मे जुट गयी।[4]

मरुप्रदेश के इस भूखण्ड पर अधिकार करने वालों मे जाट जाति मुख्य थी। प्रदेश के संपूर्ण मध्यवर्ती तथा पूर्वी भाग इनका अधिकृत क्षेत्र था। जाट जाति के प्रमुखतः सात भोमीचारे थे तथा उनके अतिरिक्त अनेक छोटे-बड़े ग्रासिये थे। मुख्य शाखाओं मे शेखसर के गोदारा, सूई के सिहाग, धाणसिया के सोहुआ, सीधमुख के कसवां, रायसलाणा के बेंणीवाल, भाडग के सारण और लुद्दी के पूनीया थे। इनके

छोड़ने वाले रेतीले टीबे जगह-जगह पर दृष्टिगत होते हैं। यहा नदी नहीं है, केवल वर्षा के मौसम मे राज्य के उत्तरी भाग में सूखी घग्गर नदी में पानी बहता है। यहां सिचाई के साधनों का अभाव है। वर्षा का औसत लगभग २० से० मी० है। वर्षा की अनिश्चितता भी बहुत है और साधारणतया यह काफी दूर-दूर तथा अस्थिर होती है। क्षेत्र की औसत पानी की गहराई १५० फुट से भी अधिक मानी जाती है। यहा कुछ स्थलों को छोड़कर वर्ष में एक ही फसल बोई जाती है—शब्दकल्पद्रुम, काण्ड २, पृ० ५२६; जौहर-तजकिर तुल वाकेआत (रिजवी से उद्धृत)—मुगलकालीन भारत, हुमायूं, भाग १, पृ० ६३५-३७, विलियम फ्रैंकलिन-मेमोयर्स आफ मि० जार्ज थामस (१८०२ ई०), पृ० १२१-७७; टाड, भाग २, पृ० ११४६-५२; पाउलेट गजेटियर, पृ० ८२-८४; फेगन सेटलमेण्ट रिपोर्ट, पृ० ६-७ बीकानेर, १८६३

१. समूचा बीकानेर सभाग अजमेर के चौहानों के अधीन था। पृथ्वीराज चौहान तृतीय की शहाबुद्दीन गौरी के हाथों पराजय के पश्चात् यहां केवल स्थानीय चौहान शासको की सत्ता रह गयी थी।—दशरथ शर्मा, राजस्थान थ्रू दी एजेज, भाग १, पृ० ३००-१, बीकानेर, १९६६

२. इस क्षेत्र पर मुगलों से पूर्व किसी भी दिल्ली के सुल्तान के आक्रमण का उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है। केवल सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सिक्के अवश्य बीकानेर संभाग के पूर्व क्षेत्र में स्थित फोगा गाव मे मिले हैं।—मरुभारती, वर्ष १६, अंक ३, राजस्थान थ्रू दी एजेज (पूर्व), पृ० ६८५-८६

३. जफरनामा, भाग २, रिजवी, तुगलककालीन भारत, भाग २, पृ० २४४-४६, अलीगढ़, १९५७

४. कर्मचन्द्र (पूर्व), पृ० २६; दयालदास सिढायच-दयालदास री ख्यात (प्रकाशित), भाग २, पृ० ७-१०, सम्पादक-दशरथ शर्मा शार्दूल, ओरियण्टल सीरीज, अ० सं० पु० बी०, १९४८

अतिरिक्त भादू, मूकर, जासड, कलहेर, नैण इत्यादि अन्य छोटी शाखाएं भी थी।[१]

जाट क्षेत्र के उत्तर तथा उत्तर-पश्चिम भाग पर जोहिया जाति का नियन्त्रण था। ये प्राचीन यौद्धेय जाति के वशज थे और इनमें अधिकांश ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। ये कबीलों के रूप में कई शाखाओ में बटे हुए थे। भट्टी व राठ मुसलमान इन्हीं के गांवों के आसपास बसे हुए थे।[२] *राज्य का सपूर्ण पश्चिमोत्तर प्रदेश, जो जैसलमेर राज्य की सीमा से भटिण्डा तक फैला हुआ था, भाटी राजपूतो* के नियन्त्रण मे था। उत्तर-पश्चिम भाग मे बसने वाले भाटी मुसलमान हो गये थे तथा भट्टी कहलाने लगे थे। इनका मुख्य केन्द्र भटनेर था। दक्षिण मे बसने वाले भाटी राजपूत ही बने रहे। शक्ति व सख्या की दृष्टि से इनकी स्थिति भट्टियो से अधिक व्यापक थी। इनका मुख्य ठिकाना पूगल था।[३] दक्षिण भाग मे सांखला (परमार) राजपूत बसे हुए थे तथा जागलू इनका मुख्य केन्द्र था।[४] दक्षिण-पूर्वी भाग में चौहानों की शाखा मोहिल शासन करती थी। इनका क्षेत्र छापर-द्रोणपुर *के नाम से प्रसिद्ध था। यह मोहिलवाडी भी कहलाता था। चौहानों के अन्य प्रमुख* केन्द्र रीणी, द्रदेवा इत्यादि थे।[५]

इन जातियों के शासक राणा, राव, मुखिया तथा चौधरी कहलाते थे। चौहानों के शासक राणा, भाटियो के राव तथा जाटों व जोहियो मे चौधरी या मुखिया की पदवी थी।[६] चौहानों और भाटियो का राज्य शासक के परिवार का सामूहिक उत्तरदायित्व समझा जाता था। इनके गाव परिवार के सदस्यो के बीच बटे हुए थे। इनकी सेना मूलत परिवार के सदस्यो की टुकडियो पर ही गठित की जाती

---

१ जाट राज्यों के सम्बन्ध मे एक कहावत प्रचलित है, 'सात पट्टी, सत्तावन मंझरा' अर्थात्, उनके सात बड़े और सत्तावन छोटे राज्य थे—दयालदास री ख्यात (प्र०), भाग २, पृ० ७ १०, टाड (पूर्व), पृ० ११२४ २८

२ दयालदास री ख्यात (प्र०), २ पृ० ८, १६, टाड, पृ० ११३०-३१, राजस्थान थ्रू दी एजेज, भाग १, पृ० ५१ ५४

३ कर्मचन्द्र (पूर्व), पृ० २८-२६, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ४-५, टाड, भाग २, पृ० ११६५-६६

४ रासीसर शिलालेख—अमावस जेठ, वि० स० १२८८/१२३१ ई०, रासीसर गाव बीकानेर शहर के दक्षिण पूर्व मे नोखा सडक पर स्थित है, नैणसी री ख्यात (स० बद्रीप्रसाद साकरिया), भाग १, पृ० १६५ ६६, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० २-३

५ क्यामखा रासौ (स० डा० दशरथ शर्मा, अगरचन्द नाहटा), पृ० ७६, राजस्थान पुरातत्त्व ग्रन्थमाला जोधपुर नैणसी री ख्यात भाग ३ (स० बद्रीप्रसाद साकरिया), पृ० १५३, १५८ १६०, १६७, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० १२, १३, डा० दशरथ शर्मा—अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ० २२ दिल्ली १६५०

६ नैणसी री ख्यात, भाग ३, पृ० १५८, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० २, ३, ७,८

थी। इन जातीय राज्यो मे प्रशासकीय एकता का अभाव था। इनके भोमिये व प्रासिये स्वतन्त्र रूप से अपने-अपने क्षेत्र का आन्तरिक प्रशासन चलाते थे।[1] जाटो की प्रशासकीय व्यवस्था भी इससे भिन्न नही थी। जाटो की प्रत्येक शाखा के पास अनेक गाव थे तथा उनका मुखिया प्रासिया व चौधरी कहलाता था। एक शाखा के सभी प्रासिये मिलकर अपने चौधरी का निर्वाचन करते थे। यह चौधरी उनकी एकता का प्रतीक था। जाट जाति के प्रासियो के पास अपने क्षेत्र मे प्रशासन के असीमित अधिकार थे। जोहिया भी अनेक कबीलो मे बटे हुए थे। उन कबीलो के मुखिया मिलकर अपने जाति-नेता का चुनाव करते थे।[2]

इस प्रकार राठौड़ो के आक्रमण से पूर्व जागल देश म राजनैतिक विशृंखलता व प्रशासनिक अव्यवस्था विद्यमान थी। इस क्षेत्र मे निवास करने वाली समस्त जातिया तीन तरह के सघर्षों मे उलझी हुई थीं (१) एक जाति की विभिन्न शाखाओ मे जातिप्रमुखता तथा नेता पद के लिए सघर्ष, (२) इस क्षेत्र मे राजनैतिक तथा सैनिक सर्वोच्चता को पाने के लिए विभिन्न जातियो मे पारस्परिक सघर्ष तथा (३) इस क्षेत्र पर होने वाले बाह्य आक्रमणो के विरुद्ध सघर्ष।

जागल देश पर राठौड जाति के अलावा भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश के बलूचियो की भी ललचाई दृष्टि थी। यहा की जातिया भी इन दोनो जातियो या कबीलो की विस्तारवादी महत्वाकाक्षाओ के प्रति शकित थी। भाटी तथा जोहियो ने इस क्षेत्र पर मुलतान तथा सिंध से होने वाले आक्रमणो को पूरी तरह रोके रखा था।[3] उन्होने भगोड़े राव जोधा के इस क्षेत्र म निर्वासित जीवन को स्थायी राज्य की स्थापना मे भी परिवर्तित नही होने दिया था।[4] क्षेत्र के पूर्वी भाग मे बसे मोहिल चौहान भी मारवाड के राठौडो के विस्तार को रोकने के लिए प्रतिबद्ध थे।[5] परन्तु ये सभी प्रयास आपसी जातिगत संघर्ष तथा कलह के कारण धीरे-धीरे प्रभावहीन हो गये थे।

---

१ श्यामधां रासो (पूव(पृ० ६-१०, कर्मचन्द्र (पूव), पृ० ७५, बीकानेर रै राठौड़ा री ख्यात सीहैजी सु, पृ० ३४-३६, न० १६२/१४, अ० स० पु० बी०, दयालदास री ख्यात (प्र०), पृ० २,३

२ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ७ १०, १३-१४, देशराज, जाट इतिहास, पृ० ६१२ २०

३ नैणसी री ख्यात, भाग ३, पृ० १३, ३६, टाड, भाग २, पृ० १२२२

४ नैणसी री ख्यात, भाग ३, पृ० ५ रेऊ, मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० ८४, जोधपुर, १६३८ ई०

५ छन्द राव जैतसी रो बीठू सूजै रो केयो, छन्द न ८, अ० सं० पु० बी०, नैणसी री ख्यात भाग ३, पृ० १६०, रेऊ, मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० ६७-६६

भाटी-साम्वला, भाटी-जोहिया, भाटी-जाट, जोहिया-जाट तथा चौहान-जाट के पारस्परिक वैमनस्य ने इस क्षेत्र की राजनैतिक अस्थिरता को ही बढ़ावा नहीं दिया अपितु, पड़ोसी शक्तियों के लिए आक्रमण की अनुकूल परिस्थितियाँ भी उत्पन्न की।[1] भाटियों की संयुक्त शक्ति के सम्मुख मुलतान व सिन्ध के आक्रमण तो सफल नही हुए;[2] परन्तु सांखलों की सहायता से मारवाड़ के राठौड़ों को इस मरु भूमि पर अपने पैर जमाने का अवसर अवश्य मिल गया।

जोधपुर का शासक राव जोधा अपने बढ़ते हुए परिवार मे पारस्परिक कलह की सभावना को रोकने के लिए नई भूमि की खोज मे चिन्तित था।[3] ऐसी दशा मे जागलू के नापा सांखला द्वारा राठौड़ों को जागल देश मे आक्रमण का निमंत्रण उनकी सत्ता के विस्तार के लिए मन मागी मुराद को पूरा करने वाला कार्य बन गया।[4] इससे पूर्व राठौड़ो के जागल देश पर आक्रमण स्थायी रूप से सफल नही हुए थे। नापा सांखला भी अपने गावो के ऊपर बलूचियो व भाटियो के निरन्तर होने वाले आक्रमणो के विरुद्ध अपने अस्तित्व को राठौड़ शक्ति के संरक्षण मे सुरक्षित रखने की योजनाए बना रहा था। अब राव जोधा ने स्थानीय शक्ति के सहयोग से प्रोत्साहित होकर अश्विन शुक्ला १० वि० सं० १५२२ (३० सितम्बर,

---

१ नैणसी री ख्यात, भाग ३, पृ० १५६ ६२, नापा सांखला री बात, पृ० १०१-१२, फुटकर बाता, न० २०६।२–अ० सं० पु० बी०
दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ३-१२, टाड, भाग ३, पृ० ११२५ ३०

२ नैणसी री ख्यात भाग ३, पृ० ३१-३७

३ राव जोधा का अपनी हाडी रानी जसमादे पर अधिक स्नेह था। उसके पुत्र नीबा की मृत्यु हो जाने पर, उसके दूसरे छोटे पुत्र सातल को गद्दी देने के लिए, साखली रानी नोरगदे के पुत्र बीका को किसी अन्य क्षेत्र में बसाकर वह जोधपुर राज्य को उत्तराधिकार की समस्याओं से बचाना चाहता था। 'कर्मचन्द्र वंशोत्कीर्तनकं' काव्य में लिखा है "तब राजा (राव जोधा) ने पत्नी (जसमादे) के कपट से मोहित होकर अपने बेटे विक्रम को जागल देश मे निकाल देने की इच्छा से अपने पास बुलाकर कहा, हे पुत्र! बाप के राज्य को बेटा भोगे इसमे कोई अचरज की बात नहीं, परन्तु जो नया राज्य प्राप्त करे वही बेटो में मुख्य गिना जाता है। पृथ्वी पर कठिनता से वश में आने वाला जागल नामक एक देश है साहसी है तू इसलिए मैंने तुम इस कार्य के लिए नियुक्त किया है।'" कर्मचन्द्र, (जी०एच० ओझा), पृ० २५

'नापा सांखला री ख्यात' में घटना का विवरण इस प्रकार है कि रानी नोरगदे ने अपने पुत्र की जीविका के लिए जागीर हेतु अपने भाई नापा सांखला को राव जोधा के पास निवेदन हेतु भेजा। नापा सांखला जब रावजी के रुख से आश्वस्त नहीं हुए तब उन्होने अपने भाजो की जागीर हेतु जांगल देश पर आक्रमण की योजना बनाई थी।—नापा सांखला री बात, पृ० १०१ ११

४ नैणसी री ख्यात, भाग ३, पृ० १९, नापा सांखला री बात, पृ० १०१ १२, दयालदास री ख्यात (प्र०) २ पृ० १२

१४६५ ई०) के दिन अपने पुत्र राव बीका को अपने योग्य भाइयो के सरक्षण मे नापा सांखला के साथ जागल देश की ओर रवाना किया।[1] प्रारम्भ मे राव बीका ने साखलो के क्षेत्र मे टिककर राठौडो की स्थिति को दृढ किया। लेकिन भाटियो के विरोध के कारण उनकी सफलता संदिग्ध थी। कालान्तर मे भाटियो पर मुलतान के आक्रमण ने राठौडों को यह अवसर दिया कि वे सकट मे भाटियो की सहायता करके उनकी तटस्थता व सहानुभूति प्राप्त कर ले। राव बीका के भाटियो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने के उपरान्त इस क्षेत्र मे उसकी स्थिति दृढ हो गई।[2] बीका ने १४८८ ई० मे रातीघाटी नाम के स्थान पर अपने नव स्थापित राज्य की राजधानी की नीव डाली।[3] अब वह निश्चिन्त होकर अपनी क्षेत्रीय विस्तार की आकाक्षा को पूरा कर सकता था।

इसके उपरान्त राव बीका ने मरु प्रदेश के मध्यवर्ती तथा पूर्वी क्षेत्र की ओर दृष्टि डाली, जहा जाटो की आपसी फूट राठौडो को अपनी सत्ता-विस्तार के लिए स्वर्णिम अवसर प्रदान कर रही थी। गोदारा जाटो ने तथा फिर शनै -शनैः एक-

---

१ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ३-४

२. वही, पृ० ४-७

३ राजधानी बनाने के स्थान के प्रश्न को लेकर राठौडों व भाटियो के मध्य फिर सघर्ष छिडा था। भाटी किसी भी कीमत पर अपनी सीमा के समीप राठौडों की राजधानी बनने देना नहीं चाहते थे। राव बीका को उनके विरोध के कारण ही कोडमदेसर स्थान का चुनाव छोडना पड़ा। तब उन्होंने रातीघाटी स्थल का चयन किया जो उस समय मुलतान-फलोधी तथा मुलतान-नागौर के मार्ग पर स्थित था। दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ५

राजधानी के गढ की स्थापना के सम्बन्ध में इस क्षेत्र में एक प्रचलित दोहा है :

पनरे से पैंतालिवे, सुद बैसाख सुमेर।
थावर बीज थरपीया, बीके बीकानेर ॥

अर्थात् १२, अप्रैल, १४८८ ई० को बीकानेर शहर की नींव डाली गई थी। जी० एच० ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास भाग १, पृ० ९६। जगदीशसिंह गहलोत इसे १३ अप्रैल मानते हैं (जगदीशसिंह गहलोत कृत बीकानेर राज्य का इतिहास, अप्रकाशित)। कुछ लेखकों का विचार है कि जहां बीकानेर नगर बसाया गया वहां पहले से आबादी थी। संभवतः इसी बस्ती को विशेष आबाद करके राव बीका ने बीकानेर बसाया हो। तेस्सितोरी १४८५ ई० में नगर की नींव रखना मानते हैं। अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में सप्तपदार्थी वस्तु प्रकाशिनी वृत्ति की एक प्रति है, जिसके पुष्पिका लेख से भी यह बात प्रमाणित होती है कि बीकानेर नगर १४८८ ई० से पूर्व बस गया था।

"छन्द राव जैतसी रो" (तेस्सितोरी), भूमिका पृ० ३, बिब्लोथिका इण्डिका, ए० एस० बी० सीरीज नं० १४१३, कलकत्ता, गोविन्द अग्रवाल, चूरू मण्डल का इतिहास, पृ० १४९, चूरू, १९७४

एक करके सभी जाट जातियो ने राठौडो की शक्ति व कूटनीति के आगे समर्पण कर दिया।[1] राव बीका ने जोहियो को पराजित करके तथा उन्हे अधीनस्थ बनाकर जाट क्षेत्रों को सुरक्षा भी प्रदान की।[2] फिर, उसने अपनी शक्ति-वृद्धि का लाभ उठाकर भाटियो को भी अपने नियन्त्रण मे ले लिया तथा उत्तर व उत्तर-पूर्व के चौहानो का भी दमन किया।[3]

मोहिलवाडी के क्षेत्र को, जिसे राव जोधा ने मोहिल चौहानो से छीनकर अपने छोटे पुत्र बीदा को प्रदान किया था[4], मोहिलों व हिसार के फौजदार सारगखा के सयुक्त आक्रमण से सुरक्षित करके उसने वहा अपनी विजय पताका फहराई।[5] चाचा रावत काधल की मृत्यु का बदला लेने के लिए सारगखा को युद्ध मे पराजित करके मार डाला गया।[6] इससे राज्य के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र को दिल्ली के सुल्तानो के आक्रमण से सुरक्षा व स्थिरता प्राप्त हुई।[7] बीका की समस्त विजयो का परिणाम यह निकला कि उसके नव स्थापित राज्य की सीमाए, दक्षिण मे जैसलमेर, मारवाड व नागोर राज्य की सीमाओ तथा पश्चिम म मुलतान व सिन्ध के क्षेत्र की सीमाओ तथा पूर्व म आमेर व शेखावाटी के क्षेत्र की सीमाओ को छूने लगी।

राव बीका की इन विजयों का आधार राठौडो का सयुक्त प्रयास था जो नव स्थापित राज्य जोधपुर से आये राठौडो के सामूहिक उत्तरदायित्व के रूप मे था, जिसमे राव बीका की स्थिति उनके मुखिया अथवा टिकायत के रूप मे थी।[8] राठौडो की सफलताए चमत्कारिक थी, जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र मे प्रथम बार राजनैतिक तथा प्रशासनिक एकता स्थापित हुई। पर यह एकता, राज्य मे सतही तौर पर ही दृष्टिगत होती है, क्योंकि विभिन्न राठौड कुल मुखिया अपने कुलपति का सम्मान अवश्य करते थे, परतु उसकी आज्ञा मानने के लिए बाध्य नही थे।[9] अधीनस्थ

---

१ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ४ ५
२ वही, पृ० ७ १०
३ वही, पृ० ११-१६
४ राठौडा री वशावली नै पीढियां नै फुटकर वाता, न० २३३/६ अ० स० पु० बी०, नैणसी री ख्यात, भाग ३, पृ० १६६
५ राठोडा री वशावली नै पीढियाँ नै फुटकर वाता, न० २३३/६, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० १५-१७
६ वही, पृ० १८ १६
७ वही, पृ० १८-१६
८. राठौडा री वशावली तथा पीढ़िया, पृ० २१-२३, न० २३२/५ अ० स० पु० बी०, राठौडा री वशावली नै पीढिया नै फुटकर वाता, २३३/६, बीकानेर रै राठौडा री ख्यात सीहैजी सू, न० १६२/१४ अ० स० पु० बी०
६ वही, बीदावत कल्याणमल ने शासक राव लूणकरण व जैतसी की आज्ञा के विरुद्ध कार्यवाही की थी तथा नागौर के हाजीखान पठान से बीकानेर के विरुद्ध साठ-गाठ की थी।

स्थानीय जातियो की निष्ठा भी विवादास्पद थी।[1] इस प्रकार राठौड राज्य की स्थापना एक कमजोर संघ के रूप मे हुई, जो किसी भी विशेष विपत्ति के समय अनगिनत समस्याओं को उत्पन्न कर सकता था।

ख्यातो के अनुसार, राव बीका ने अपनी साहसिक विजयो के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र के लगभग ३००० गावो पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।[2] यह सख्या आगामी वर्षों मे मिले आकडो के आधार पर अतिशयोक्तिपूर्ण नजर आती है। मुगल साम्राज्य मे बीकानेर वतन जागीर का जो क्षेत्र निर्धारित हुआ था, उसमे कम से कम १२०० तथा अधिक से अधिक १५०० गावो की सख्या थी।[3] अठारहवी शताब्दी मे राज्य की सीमाओ मे विस्तार होने पर भी, जिसकी सीमाए निःसदेह राव बीका के अधिकृत क्षेत्र से अधिक थी, यह सख्या बढकर १७०० के लगभग पहुच गयी थी।[4] क्षेत्रफल की दृष्टि से भी राव बीका के काल मे गावो की सख्या उचित नही जान पड़ती है।[5]

राव बीका के उत्तराधिकारियो ने अपने पूर्वजो की विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया। अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों म राव लूणकरण (१५०५-१५२६ ई०) व जैतसी (१५२६-१५४२ ई०), विद्रोही कुल-मुखियो (सामन्त) व अधीनस्थ शक्तियो को नियन्त्रित करने मे ही उलझे रहे।[6] परन्तु, अवसर पाते ही राव लूणकरण ने उत्तरी सीमा की ओर चायलवाडा को जीत कर भटनेर तक अपनी सीमा बढा ली।[7] उत्तर की ओर अधिक उपजाऊ भूमि पर अधिकार करने

---

१ राव लूणकरण व राव जैतसी की अपने शत्रुओं के विरुद्ध पराजय व मृत्यु के लिए एक कारण जोइयों व भाटियों का युद्धक्षेत्र से चला जाना था। दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ३६ ५६

२ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ११-१२, टॉड, भाग २, पृ० ११४६, पाउलेट गजेटियर, आफ बीकानेर, पृ० ४। राज्य मे एक कहावत प्रचलित थी—'बीकानेर रा धणी सताइसेरा, (२७०० गांवों का भूमालिक)

३ पट्टा बही वि० स० १७२५/१६६८ ई० (पूर्व), बही खालसा रै गांवा री, वि० स० १७२५/१६६८ ई० (पूर्व)

४ दयालदास सिंढायच आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० बीकानेर रै ठिकाणा री पीढियों नै पट्टा री विगत नं० १८०/२ (घ) अ० स० पु० बी०, पाउलेट ने भी गांवों की सख्या १८१४ दी है। पाउलेट गजेटियर, पृ० ८६

५ ख्यातों में राव बीका के काल में केवल जाट-जनपदों की सख्या दो हजार से ऊपर बतलाई जाती है, जब कि सम्पूर्ण जाट जाति के गाव चार हजार वर्गमील के क्षेत्र में बसे हुए थे, जिसे देखकर इतनी अधिक गावों की सख्या असम्भव जान पड़ती है। विशेष अध्ययन के लिए देखिए—चूरू मण्डल का इतिहास, पृ० १०८ ६०

६ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० २७-२६, ३८ ३६

७ वही, पृ० २९

एक करके सभी जाट जातियो ने राठौडो की शक्ति व कूटनीति के आगे समर्पण कर दिया।[१] राव बीका ने जोहियो को पराजित करके तथा उन्हे अधीनस्थ बनाकर जाट क्षेत्रों को सुरक्षा भी प्रदान की।[२] फिर, उसने अपनी शक्ति-वृद्धि का लाभ उठाकर भाटियो को भी अपने नियन्त्रण मे ले लिया तथा उत्तर व उत्तर-पूर्व के चौहानो का भी दमन किया।[३]

मोहिलवाडी के क्षेत्र को, जिसे राव जोधा ने मोहिल चौहानो से छीनकर अपने छोटे पुत्र बीदा को प्रदान किया था[४], मोहिलो व हिसार के फौजदार सारगखा के सयुक्त आक्रमण से सुरक्षित करके उसने वहा अपनी विजय पताका फहराई।[५] चाचा रावत काधल की मृत्यु का बदला लेने के लिए सारगखा को युद्ध मे पराजित करके मार डाला गया।[६] इससे राज्य के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र को दिल्ली के सुल्तानो के आक्रमण से सुरक्षा व स्थिरता प्राप्त हुई।[७] बीका की समस्त विजयो का परिणाम यह निकला कि उसके नव स्थापित राज्य की सीमाए, दक्षिण मे जैसलमेर, मारवाड व नागौर राज्य की सीमाओ तथा पश्चिम मे मुलतान व सिन्ध के क्षेत्र की सीमाओ तथा पूर्व मे आमेर व शेखावाटी के क्षेत्र की सीमाओ को छूने लगी।

राव बीका की इन विजयों का आधार राठौडो का सयुक्त प्रयास था जो नव स्थापित राज्य जोधपुर से आये राठौडो के सामूहिक उत्तरदायित्व के रूप मे था, जिसम राव बीका की स्थिति उनके मुखिया अथवा टिकायत के रूप मे थी।[८] राठौडो की सफलताए चमत्कारिक थी, जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र मे प्रथम बार राजनैतिक तथा प्रशासनिक एकता स्थापित हुई। पर यह एकता, राज्य मे सतही तौर पर ही दृष्टिगत होती है, क्योकि विभिन्न राठौड कुल मुखिया अपने कुलपति का सम्मान अवश्य करते थे, परतु उसकी आज्ञा मानने के लिए बाध्य नही थे।[९] अधीनस्थ

---

१ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ४-५

२ वही, पृ० ७-१०

३ वही, पृ० ११-१६

४ राठौडा री वशावली नै पीढिया नै फुटकर वाता, न० २३३/६ अ० स० पु० बी०, नैणसी री ख्यात भाग ३, पृ० १६६

५ राठौडा री वशावली नै पीढियाँ नै फुटकर वाता, न० २३३/६, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० १५-१७

६ वही, पृ० १८ १६

७ वही, पृ० १८-१६

८. राठौडा री वशावली तथा पीढियाँ, पृ० २१-२३, न० २३२/५ अ० स० पु० बी०, राठौडा री वशावली नै पीढिया नै फुटकर वाता, २३३/६, बीकानेर रै राठौडा री ख्यात सीहैजी सू, न० १६२/१४ अ० स० पु० बी०

६ वही, बीदावत कल्याणमल ने शासक राव लूणकरण व जैतसी की आज्ञा के विरुद्ध कार्यवाही की थी तथा नागौर के हाजीखान पठान से बीकानेर के विरुद्ध साठ-गांठ की थी।

स्थानीय जातियो की निष्ठा भी विवादास्पद थी।[1] इस प्रकार राठौड राज्य की स्थापना एक कमजोर संघ के रूप मे हुई, जो किसी भी विशेष विपत्ति के समय अनगिनत समस्याओ को उत्पन्न कर सकता था।

ख्यातो के अनुसार, राव बीका ने अपनी साहसिक विजयो के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र के लगभग ३००० गावो पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।[2] यह संख्या आगामी वर्षों मे मिले आंकडो के आधार पर अतिशयोक्तिपूर्ण नजर आती है। मुगल साम्राज्य मे बीकानेर वतन जागीर का जो क्षेत्र निर्धारित हुआ था, उसमे कम से कम १२०० तथा अधिक से अधिक १५०० गावो की सख्या थी।[3] अठारहवी शताब्दी मे राज्य की सीमाओ मे विस्तार होने पर भी, जिसकी सीमाए निःसदेह राव बीका के अधिकृत क्षेत्र से अधिक थी, यह सख्या बढकर १७०० के लगभग पहुच गयी थी।[4] क्षेत्रफल की दृष्टि से भी राव बीका के काल मे गांवो की सख्या उचित नही जान पडती है।[5]

राव बीका के उत्तराधिकारियो ने अपने पूर्वजो की विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया। अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों मे राव लूणकरण (१५०५-१५२६ ई०) व जैतसी (१५२६-१५४२ ई०), विद्रोही कुल-मुखियो (सामन्त) व अधीनस्थ शक्तियो को नियन्त्रित करने मे ही उलझे रहे।[6] परन्तु, अवसर पाते ही राव लूणकरण ने उत्तरी सीमा की ओर चायलवाडा को जीत कर भटनेर तक अपनी सीमा बढा ली।[7] उत्तर की ओर अधिक उपजाऊ भूमि पर अधिकार करने

---

१ राव लूणकरण व राव जैतसी की अपने शत्रुओं के विरुद्ध पराजय व मृत्यु के लिए एक कारण जोहियों व भाटियों का युद्धक्षेत्र से चला जाना था। दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ३६ ५६

२ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ११-१२, टॉड, भाग २, पृ० ११४६, पाउलेट गजेटियर, आफ बीकानेर, पृ० ४। राज्य मे एक कहावत प्रचलित थी—'बीकानेर रा धणी सत्ताइसेरा, (२७०० गावों का भूमालिक)

३ पट्टा बही वि० सं० १७२५/१६६८ ई० (पूर्व), बही खालसा रै गांवा री, वि० सं० १७२५/१६६८ ई० (पूर्व)

४ दयालदास सिंढायच आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० बीकानेर रै ठिकाणा री पीढ़ियों नै पट्टा री विगत नं० १८०/२ (च) अ० सं० पु० बी०, पाउलेट ने भी गावों की सख्या १८१४ दी है। पाउलेट गजेटियर, पृ० ८६

५ ख्यातों में राव बीका के काल में केवल जाट-जनपदों की सख्या दो हजार से ऊपर बतलाई जाती है, जब कि सम्पूर्ण जाट जाति के गांव चार हजार वर्गमील के क्षेत्र में बसे हुए थे, जिसे देखकर इतनी अधिक गावों की सख्या असम्भव जान पड़ती है। विशेष अध्ययन के लिए देखिए—चूरू मण्डल का इतिहास, पृ० १०८ १०

६ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० २७-२६, ३८ ३६

७ वही, पृ० २८

की लालसा ने उसे नारनोल के फौजदारके साथ सघर्ष म मृत्यु का वरण कराया।[1] राव जैतसी भी इस दिशा मे उत्साहित था, परन्तु मुगल व मारवाड के आक्रमणो के कारण वह विशेष प्रगति नही कर सका। मिर्जा कामरान ने उससे भटनेर छीन लिया[2] तथा राव मालदेव की सेनाओ ने उसे मारकर राजधानी पर अधिकार कर लिया।[3] राव जैतसी के पुत्र कल्याणमल (१५४२-१५७१ ई०) के प्रारम्भिक वर्ष राजगद्दी को प्राप्त करने मे ही लग गये।[4] कांधलोत ठाकुरसी ने भारत से मुगलो के पलायन का लाभ उठाकर भटनेर पर पुन अधिकार कर लिया[5] तथा शनै-शनै राव जैतसी के काल का सम्पूर्ण क्षेत्र पुन उसके पुत्र के अधिकार मे आ गया। केवल पश्चिमी क्षेत्र के भाटियो व जोहियो के उत्पातो को नियन्त्रित नही किया जा सका था।[6]

सन् १५७० ई० म राव कल्याणमल द्वारा मुगलो से सधि करने के पश्चात् ही राज्य को शक्ति व स्थिरता प्राप्त हुई।[7] मुगल सरक्षण के आश्वासन पर राव कल्याणमल व उसके उत्तराधिकारी राजा रायसिंह ने विद्रोही सामता को कुचलने मे कोई कसर नही उठा रखी।[8] परन्तु राज्य के चारो ओर मुगल सत्ता के प्रसार के कारण राठौडो की विस्तारवादी महत्वाकाक्षाओ के लिए कोई स्थान नही बचा। राज्य की उत्तरी सीमा पर स्थित भटनेर, पूनीया जाटो का क्षेत्र व हिसार के कुछ भाग स्थायी रूप से मुगल साम्राज्य के अग बन गए।[9] बीकानेर राज्य भी यहा के शासको को मुगल सम्राट् द्वारा दिए गए मनसब के विरुद्ध वेतन के रूप मे वतन जागीर के नाम से गठित किया, जिसमे परगना बीकमपुर, बरसलपुर, बीकानेर, पुगल, द्रोणपुर, भाडग व सीधमुख के परगने सम्मिलित थे।[10] परगना भटनेर, पूनिया व हिसार इन्हे सदैव मुगल जागीर के रूप म प्राप्त होते रहे थे।[11] परगना

---

१ वही, पृ० ३४-३५
२ यद्यपि राव जैतसी ने मुगलो को खदेडकर राजधानी को बचा लिया था पर भटनेर राठौडों के हाथ से निकल गया था।—छन्द राव जैतसी रो (पूर्व), छ द न० ३७५-८५, दयालदास री ख्यात (प्र०) २ पृ० ५४ ५६
३ वही, पृ० ५८
४ वही पृ० ६४ ७०
५ वही, पृ० ८३ ८४
६ टॉड, भाग २ पृ० ११३० ३१
७ दलपत विलास, पृ० १४ १५ (स०) रावत सारस्वत शार्दूल, राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर, १९६०, दयालदास री ख्यात, (प्र०) २, पृ० ६५
८ टॉड, भाग २, पृ० ११३० ३३
९ आइने अकबरी भाग २, पृ० २६३ (अनु० जेरेट), कलकत्ता, १८९१ ई०
१० राजा सूरजसिंघ रै जागीर री विगत पृ० ८८-९०, महाराजा अनूपसिंघ जी रै मनसब नै तलब री विगत, पृ० ८८ ९०, फुटकर बाता, न० २०६/२, अ० स० पु० बी०
११ वही, पृ० ८९ ९०

फलौधी व सरकार नागौर के कई परगने भी राजा रायसिंह (१५७४-१६१२ ई०) के पास थे, परन्तु राजा सूरसिंह के समय (१६१३-१६३१) में फलौधी व कर्णसिंह के समय (१६३१-१६६६ ई०) नागौर इनसे छीनकर मारवाड़ के राठौड़ों सुपुर्द कर दिए गए थे।[१] महाराजा अनूपसिंह के समय (१६६६-१६९८ ई०) जोहियों व भट्टियों के उत्पात से हिसार व भटनेर के क्षेत्र भी इनके हाथ से निकल गए।[२] उस काल में मुगल सत्ता भी सम्राट औरंगजेब के लम्बे दक्षिण प्रवास तथा उत्तरी भारत में हो रहे अनेक विद्रोहों के कारण प्रभावहीन हो रही थी। महाराजा सुजानसिंह के समय (१७००-१७३५ ई०) में उत्तर मुगल कालीन सम्राटों से सम्बन्ध टूट गया था,[३] परन्तु राज्य में हो रहे आंतरिक, षडयंत्रों, विद्रोहों तथा मारवाड़ के आक्रमणों के कारण वह तथा उसका उत्तराधिकारी महाराजा जोरावर सिंह (१७३५-१७४६ ई०) सीमा-विस्तार का दायित्व नहीं निभा पाये।[४] सन् १७३६ ई० में भटनेर पर कुछ समय के लिए अधिकार स्थापित हो गया था।[५] महाराजा गजसिंह (१७४६-१७८७ ई०) ने पूनोया परगना स्थायी रूप से राज्य में मिला लिया था।[६] इससे पूर्व यह परगना महाराजा अनूपसिंह के छोटे पुत्र महाराज आनन्दसिंह की जागीर में था।[७] कुछ समय के लिए हिसार पर भी बीकानेरी सत्ता स्थापित हो गई थी तथा राठौड़ी सेनाएँ सिरसा तक पहुँच गई थी।[८] उत्तर दिशा में अधिकतर क्षेत्रों पर इसलिए स्थायी अधिकार नहीं रह सका, क्योंकि बीकानेर की सेना मारवाड़ के शासक महाराजा विजयसिंह के सहायार्थ मराठों के विरुद्ध लड़ रही थी।[९]

महाराजा सूरतसिंह के काल (१७८७-१८२८ ई०) में बीकानेर की विस्तार-वादी नीति को एक नयी स्फूर्ति मिली। राज्य का विस्तार इस काल में चारों ओर

---

१ वही, ८९-९०

२ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० २१६

३ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सू महाराजा गजसिंघजी ताई नै दुजी फुटकर बातां, पृ० २, न० १८१/११, दयालदास सिंढायच-बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात (अप्रकाशित), भाग २, पृ० २६२, न० १८८/१ व० —अ० स० पु० बी०

४ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाण सिंघजी सु महाराजा गजसिंघजी ताई (पूर्व), पृ० ५-७, मोहता भीमसिंह द्वारा मारवाड़ के महाराजा अभयसिंह द्वारा बीकानेर घेरे का वर्णन—मोहता रिकार्ड्स, माइक्रो फिल्म, रील न० ८, रा० रा० अ० बी०

५ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० २६७

६ वही, पृ० २८४

७ परवाना बही, वि० सं० १७४९/१६९२ ई० न० १, रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर, रा० रा० अ० बी०, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० २६३

८ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० २८५

९ वही, पृ०, २८८

हुआ। महाराजा ने जाहियो व भट्टियों की शक्ति को कुचलकर सूरतगढ़ व फतह-गढ़ का निर्माण किया।[1] सन् १८०५ ई० में भटनेर स्थायी रूप से राज्य में मिलाकर उसका नाम हनुमानगढ़ रखा गया।[2] राज्य की पश्चिमी दिशा में महाराजा की गतिविधियाँ और चमत्कारिक थी। सन् १८०१ ई० में अनूपगढ़ की दिशा से मुलतान की ओर दाऊद पुत्रों से मीरगढ़, जामगढ़, मारोठ व मौजगढ़ छीन लिया गया।[3] सन् १८०२ ई० में निचले सिन्ध प्रांत की ओर सेनाएँ भेजी गई व खानगढ़ पर अधिकार कर लिया गया।[4] सन् १८०७ ई० में मारवाड़ के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर धौकलसिंह का पक्ष लेकर फलौधी अधिकृत कर लिया गया[5], परन्तु वे विजए स्थायी रूप से महाराजा के पास नहीं रही। इस सक्रिय नीति का यह परिणाम अवश्य हुआ कि उत्तरी व उत्तरी-पश्चिमी सीमा को स्थिरता प्राप्त हो गयी। सन् १८१८ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ संधि करते समय राज्य की यही सीमाएं थी तथा इसी क्षेत्र ने आगे चलकर आधुनिक बीकानेर राज्य का रूप धारण किया।

---

१. दयालदास री ख्यात (अ०) २, पृ० ३११
२. वही, पृ० ३१४-१५
३. वही, पृ० ३१५
४. वही, पृ० ३१६-१७
५. वही, पृ० ३१८-२०, टॉड, २, पृ० ११४२-४३

द्वितीय अध्याय

राजपद

राजपद का स्वरूप

१३ अप्रैल, १४८८ ई० को राव बीका द्वारा बीकानेर राज्य की स्थापना के उपरांत यहां का सम्पूर्ण प्रशासकीय ढांचा नृपतंत्र के आधार पर खड़ा किया गया था। राज्य की सर्वोच्च सत्ता राजा के पद में केन्द्रित थी। राजपद राव बीका के राठौड़ परिवार का विशेषाधिकार था, जो बीका राठौड़ खांप के नाम से विख्यात था।[1] राजपद आनुवंशिक था और साधारणतया अधिकारी बीका खांप की मुख्य पंक्ति में से ही नियुक्त होते थे। यहां के शासक स्वयं को प्रभुतासम्पन्न समझते थे। उन्हें अपने वंश गौरव का गर्व था और राजपूतों में सूर्यवंशी का दावा करके वे अपनी श्रेष्ठता प्रस्थापित करते थे।[2] उनके समक्ष प्राचीन भारत के हिन्दू नृपतंत्र आदर्श थे। राज्य की प्रजा में उनकी इतनी प्रतिष्ठा व मान था कि वे ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में पूजे जाते थे।[3] राजपत्रों में यहां के शासकों को 'श्री जी हुजूर' और 'माई-बाप' के नाम से सम्बोधित किया जाता था।[4] वे अपने राज्य की कुलदेवी करणीजी तथा कुलदेवता श्री लक्ष्मीनारायणजी की कृपा का फल मानते थे और उन्हीं के प्रतिनिधि के रूप में 'दीवान' के नाम से शासन करते थे। राजसनदी पत्रों में सबसे ऊपर 'श्रीजी दीवान वचनात' लिखा होता था।[5]

---

१ छंद राव जैतसी रो छंद नं० १०१ १२, कर्मचंद्र, पृ० ३, गुरुवंशीन प्रशस्ति पुस्तक, बीकानेर, पंक्ति नं० ६८

२ बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात, २२६/२ "अथ सूर्यवंश प्रसूत राठौड़ां वंशावतंस महाराज"

३ कागदों की बही, वि० सं० १८५७/१८०० ई०, नं० ११, पृ० १०१ राजपूरिया रिकार्ड्स, रा० रा० अ० बी०

४ 'दी हाउस ऑफ बीकानेर', पृ० १, बीकानेर, १९३३

५ "श्री दीवान वचनात मारै म्हारी धणी रै थांरै देशो० इणरा गोवा भीण्डा चोधरीया रईयत रम्मुतां सम्मुख आयां तथा था सांप कोनी फोज हुई तेरी नेड़ खरच रा मुकाड़ा १ (अ० २) रा देण मारै ही मैं पाया हूं सु मुकाड़ो री भीणती कराय मुकाड़ो खरच महाय मुकाड़ो (अ० २), रा भुगताय देजो। ना० ३४, भैरवां सम्मु—सम्मत मा[ ]सा सुद १२ वि० सं० १८६० । २६ अगस्त, १८०३ ई०, बीकानेर।

राजस्थान के इस उत्तर-पश्चिमी मरु प्रदेश मे स्वतंत्र राजसत्ता का इतिहास, राठौडो के आगमन के उपरान्त ही प्रारम्भ होता है। इससे ठीक पूर्व, यह क्षेत्र कई स्वतन्त्र व अर्ध स्वतन्त्र राजनैतिक इकाइयो मे बटा हुआ था। राव बीका ने एक-एक करके इन सबको जीतकर, न केवल एक नये राज्य की नींव डाली, अपितु राजपद को प्रतिष्ठित भी किया। अनेक भौमियों के स्थान पर इस क्षेत्र मे एक शासक के नेतृत्व मे नई राजनैतिक एकता स्थापित की गयी।[1]

अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे, राजपद का स्वरूप, अनिश्चित व अस्थिर था। राव बीका ने अपने जीते हुए क्षेत्र की सीमाओ को गठित करने के लिए, राजपूत कुल-परम्पराओ को ही अपनाया था।[2] उसके समक्ष राव जोधा द्वारा मारवाड राज्य मे अपने भाइयों व रिश्तेदारो के बीच हुए क्षेत्रीय बटवारे का उदाहरण प्रस्तुत था।[3] फिर, परिस्थितिया भी ऐसी नही थी कि वह व्यवस्था मे कुछ परिवर्तन ला सकता। राव बीका अपने जीवनकाल मे जागल प्रदेश तथा आसपास की विभिन्न शक्तियो से लडता ही रहा।[4] इन युद्धो व भाइयो के साथ सम्बन्धो ने उसे सदैव इस स्थिति में रखा कि वह कोई ऐसा कार्य न करे, जिससे राठौडो की एकता भग होती हो। वह इस तथ्य से भली-भाति परिचित था कि सबके सहयोग से ही सत्ता सुदृढ की जा सकती है। अत उसने राठौड कुलीय भाई बन्धु भावनाओ का सम्मान किया तथा अपने रिश्तेदारो द्वारा दी गई सेवाओं को मान्यता प्रदान की।[5] फलस्वरूप नवस्थापित राज्य, राठौडो की खाप मे, अलग-अलग इकाई के रूप मे बट गया। राव बीका इस अवस्था से सतुष्ट था तथा स्वयम् को राठौडो का नेता ही समझता रहा।[6]

---

१ कर्मचन्द, पृ० ३१

२ बीकानेर रे धणीया री याद नै बीजी फुटकर वाता, पृ० १२-१३, न० २२५/१, अ० स० पु० बी०, बीकानेर री ख्यात सोहैजी मु, पृ० ८४-८६

३ हकीकत बही जोधपुर, पृ० ७६-७८, न० ५२, हकीकत खाता बही, पृ० ६०, न० २, रा० रा० अ० बी०, राव रणमल के २४ पुत्रो तथा राव जोधा के १४ पुत्रों के बीच क्षेत्रीय बटवारा किया गया था—नैणासी री ख्यात भाग १, पृ० १६५, विजित क्षेत्र को अपने परिवार के सदस्यों के बीच बांट देना राजपूत युग की एक सामान्य प्रथा थी, जो सल्तनत काल से पूर्व भी विद्यमान थी। डा० बी० पी० मजुमदार साशियो इकानोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, प्रथम अध्याय, कलकत्ता, १९६०

४ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ३-२८

५ उसने अपने सभी नातेदारों को जागीरें दीं व जिन्होंने राज्य की स्थापना के साथ जागीरें बना ली थीं, उनको मान्यता प्रदान की। आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ०-३८-४३, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० २०-२५

६ राव बीका ने कभी भी कुल मुखियो के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं किया था, आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ०, ४०-४४

राव बीका के उत्तराधिकारी इस स्थिति से सन्तुष्ट नही हुए। राव लूणकरण ने कुलीय भाई बन्धु पर आधारित व्यवस्था को शासक की शक्तियों के लिए हानिकारक पाया। वह नवस्थापित राज्य की एकता तथा समृद्धि के लिए सशक्त राजतन्त्र के सिद्धात म विश्वास रखता था,[1] परतु इस दिशा म विभिन्न कुल मुखियो के प्रबल विरोध के कारण कोई प्रगति सम्भव नही थी। उलट उसकी इच्छा के कारण अनेक कठिनाइयाँ उठ खडी हुई। राव लूणकरण व उसके पुत्र राव जैतसी ने कुलीय सामन्तवादी ढाचे को कमजोर बनाकर राजा की सत्ता के विस्तार की योजना बनाई थी, परन्तु उसकी कीमत उन्हें प्राण गवाकर चुकानी पडी। दोनो ही शासक राज्य के बाह्य शत्रुआ से लडते समय अपने प्रमुख सामन्तो के असहयोग के शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त हुए थे।[2] राव जैतसी की मृत्यु के साथ ही बीकानेर पर जोधपुर के राव मालदेव की सेनाओ का अधिकार स्थापित हो गया। इन परिस्थितियो म राव जैतसी के उत्तराधिकारी राव कल्याणमल ने यही श्रेयस्कर समझा कि कुलीय परम्पराओ से समझौता करके खोये हुए राज्य को पुन प्राप्त करके जागल प्रदेश मे बीका राजवश को बचायें। उसे अपने उद्देश्य को पूरा करने मे दिल्ली के अफगान सुल्तान शेरशाह स भी सहायता मिली, जा राव मालदेव का शत्रु था।[3] ठाकुरों के सहयोग मे राव कल्याणमल ने पुन प्राप्त राज्य को स्थिरता प्रदान की।[4] यहा, अफगान शक्ति के सहयोग ने क्षेत्रीय राजनीति मे यह तत्त्व और उभार दिया कि साम्राज्यवादी सत्ता के सरक्षण मे स्थानीय सामन्तवादी शक्तिया सुरक्षा पा सकती है। इसी तथ्य ने आगे चलकर बीकानेर के राठौडो को मुगलो से सन्धि करने के लिए प्रेरित किया।

राजपद का स्वरूप सन् १५७० ई० के उपरात एक नये परिवेश मे विकसित हुआ। मुगल सम्राट अकबर की सन् १५७० ई० म नागौर यात्रा के समय राव कल्याणमल ने, उससे वहा जाकर भेंट की तथा मुगल अधीनता स्वीकार कर ली।[5] तत्पश्चात् धीरे-धीरे दोनो राज परिवारो के सम्बन्ध दृढ होते चले गये एव बीकानेर शासक मुगल सम्राट के विश्वसनीय अमीर व मुगल साम्राज्य के स्थायी स्तम्भ बन गये।[6] इन सम्बन्धो से मुग़ल सम्राटो की स्वेच्छाचारिता का प्रभाव बीकानेर

---

१ सिंढायच दयालदास, देश दर्पण पृ० ५, ११, न० १८६/८ अ० स० पु० बीकानेर

२ दयालदास री ख्यात (प्रकाशित) भाग २, पृ० २८, १४, ३५

३ दयालदास री ख्यात (प्र०), भाग २, पृ० ६४, ६७, ८३, ८४, कानूनगो, शेरशाह और उसका समय, पृ० ४२५, ग्वालियर १९६६

४ दयालदास री ख्यात (प्र०), भाग २, पृ० ८० ८१

५ दलपत विलास, पृ० १५, अबुल फजल—आईने अकबरी (अनु० ब्लोकमैन) प्रथम भाग पृ० ३२६ १८७३ ई०

६ दलपत विलास, पृष्ठ २३, ३५, डा० करणीसिंह, दी रिलेशन्स आफ दी हाउस आफ बीकानेर विद् दी सेंट्रल पावर्स, पृ० ११५, दिल्ली, १९७४

राज्य के राजनैतिक संगठन पर पड़ना स्वाभाविक था। मुगल दरबार के निरकुश वातावरण ने यहा के शासको को प्रेरणा दी की वे भी अपनी वतन जागीर के क्षेत्र मे एकाधिकारिक ढग से सत्ता का प्रयोग करें। यद्यपि राजपद मे स्वेच्छाचारिता भारत मे मुगलो की देन नही है[1] और न ही बीकानेर के शासक इस तथ्य से अपरिचित थे,[2] तथापि राठौडो की कुल परम्पराओ ने राज्य के इस स्वरूप को स्वीकार नही किया था। कुल-मुखिया राज्य की शक्तियो मे अधिक भागीदार होने से सत्ता के विकेन्द्रीकरण की माग करते रहे।[3] अब मुगल सत्ता के प्रभाव ने राजपूतो के राजनैतिक व प्रशासनिक संगठन मे नई दिशाए खोल दीं। मुगलो के साथ सन्धि के फलस्वरूप यहा के शासको को बाह्य आक्रमण का भय नहीं रहा। इतना ही नही, किसी गम्भीर आन्तरिक विद्रोह को कुचलने के लिए, मुगल सैनिक शक्ति की सुविधा उनके लिए पर्याप्त थी।[4] परिणामस्वरूप मुगल सरक्षण मे, उनकी व्यवस्था से प्रभावित यहा के शासको ने प्राचीन हिन्दू नरेशो को अपना आदर्श मानकर राज्य म सशक्त राजतन्त्र की स्थापना की। वे प्राचीन हिन्दू नरेश की तरह यज्ञ, अनुष्ठान, तुलादान, राज्याभिषेक महोत्सव व अन्य पुनीत कार्य सम्पन्न करके, स्वयम् को धर्मरक्षक घोषित करके और गौ ब्राह्मण प्रतिपालक जैसी पदवियाँ धारण करके आदर्श हिन्दू शासक का यश प्राप्त करना चाहते थे।[5] राजा रायसिंह ने, प्रथम बार, अपने दुर्ग के निर्माण कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् सूरज पोल (द्वार) पर प्रशस्ति लगाकर यह बताया कि राठौडो का सीधा सम्बन्ध हिन्दू देवता राजा रामचन्द्रजी के कुल स है।[6] इस प्रकार राजा रायसिंह न मुगल-काल म राठौडो को गौरवमयी व सम्मानजनक दैवीय स्थिति प्रदान करने का प्रयास किया।

मुगलो के प्रभाव से राजपद को एक अन्य दिशा व शक्ति भी प्रदान हुई। राजा रायसिंह न अपने पिता राव कल्याणमल की भाति स्वय को कुल-प्रधान की

---

१ डा० आर० पी० त्रिपाठी, सम आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन पृ० १५५, इलाहाबाद १९६४, डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर महान, भाग २ (हिन्दी) पृ० १,१० १८ आगरा, १९७२

२ सूरजपोल प्रशस्ति (पूर्व), पक्ति न० ६६-६७

३ राठोडा री वशावली नै पीढ़ियाँ नै फुटकर वाता, पृ० ६१ न० २३१/६, अ० स० पु० बी०

४ कर्मचन्द, पृ० ३८ ५६, दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ६१, १२८ ३०, १६५, डा० करणीसिंह (पूर्व), पृ० ४१।

५ महादेव, रायसिंह सुधासिन्धु पृ० ४, न० ४,८३, रायसिंह प्रशस्ति, गीत गोविन्द टीका, पृ० १२-१४, क० न० २६/२६, हाथिगढ़ंग कर्णावतम, पृ० ६, न० २६८१, बीकानेर रै राठोडों री ख्यात महाराजा सुजाणसिंहजी सू महाराजा गजसिंहजी ताई, पृ० ३०८, ८ २०, न० १८६। ११ अ० स० पु० बी०

स्थिति तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु सम्राट अकबर की भांति राजमुकुट को एक पृथक् व विस्तृत आधार देने के प्रयास किये। 'उसने कठोरता से राज्य के कुल-मुखियों व कबीलों के मुखियों का दमन किया और शक्तिशाली नृपतन्त्र के अधीन, इस क्षेत्र में राजनैतिक एकता को स्थापित किया।[1] जैसे-जैसे कुलीय व्यवस्था का प्रभाव घटता गया, वैसे-वैसे राजा स्वतः शक्तिशाली बनता गया। इस अर्थ में रायसिंह राज्य का प्रथम वास्तविक राजा था। प्रजा के मस्तिष्क पर वह ही पहली बार यह प्रभाव डालने में सफल हुआ कि केवल बीका की सन्तान ही उन पर शासन करने की वास्तविक अधिकारी है।[1]

उसने व उसके उत्तराधिकारियों ने पुरानी दरबारी व्यवस्था में परिवर्तन करके, उसे मुगल सांचे में ढाला। आगे चलकर इस व्यवस्था ने एक निश्चित रूप ग्रहण कर लिया। दरबार में सामन्तों की बैठकें निश्चित नियमों पर निर्धारित की गई। शासक की दाहिनी ओर पंक्ति, उन सामन्तों के लिए सुरक्षित रखी गयी जो रावत कांधल व राव बीदा के वंशज थे। बायीं ओर की बैठक पंक्ति राव बीका के वंशजों के लिए निश्चित की गई।[4] राजा के निजी सेवकों (जिन्हें हजूरी कहा गया था) में खुवास,[5] पासवान,[6] बडारण[7] आदि पदों का निर्माण किया गया। शासक की तलवार व ढाल रखने का कार्य परिहार राजपूतों को सौंपा गया। चवर, मोरछाल, पंखा, और खास निशान रखने से सम्बन्धित कार्यों का उत्तरदायित्व भाटी व सोनगरा राजपूतों की विभिन्न खापों को सौंपा गया। राजा के अन्य निजी कार्य भी, इसी प्रकार राजपूतों की विभिन्न जातियों की खापों में वितरित किये गये। महाराजा अनूपसिंह (१६६९-१६९८ ई०) ने शासक के पीछे हाथी की सवारी के समय बैठने का कार्य खुवास उदैराम अहीर को सौंपा।[8] इन सारे

---

१. डा० आर० पी०, त्रिपाठी सम यास्पेक्ट्स आफ दी मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन, पृ० १२६, १४१

२. दलपत विलास, पृ० ५४, ५६, ६२ ६४, दयालदास री ख्यात (प्रकाशित), भाग २, पृ० १२१, टाड–२, पृ० ११३३

३ कर्णावतंस (पूर्व), पृ० ६-८

४ दरबार में सामन्तों की बैठक की पूर्ण व्यवस्था महाराजा सूरतसिंह के काल में स्थापित हुई, परन्तु राजा रायसिंह के समय से ही यह प्रणाली प्रारम्भ हो गई थी।—बीकानेर गांव रे पट्टा री विगत राजा करणसिंघ जी रै समै री बीठु पनो मोहपल रो लेखो नं० २२६/२, अ० सं० पु० बी०, मैय्या संग्रह-बही दरबार री मैय्या नथमल रे समेरी, १८५७/१८०० ई०, उदयपुर री ख्यात नै फुटकर कवित्त—बीकावत तथा बीदावत रे गांवों रे गांवों री विगत, नं० १८२/४, अ० सं० पु० बी०

५. विश्वसनीय सेवक

६ सम्मानित उपपत्नी, सदा पास रहने वाला सेवक, मरजीदान

७ जनानी ड्योढ़ी की मुख्य प्रशासकीय अधिकारी

८ देशदर्पण (पूर्व), पृ० १४७-५२

नियमो से राजपद के गौरव और प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई।

१८वी सदी मे मुगलो के पतन के साथ राजपद की स्वेच्छाचारिता के सिद्धात को भी धक्का लगा। अब यहाँ के शासक किसी भी सकट की वेला मे केन्द्रीय शक्ति का सरक्षण प्राप्त नही कर सकते थे। उनकी शक्ति का स्रोत फिर कुलीय मुखिया बन गये[1] जिन्होने परिस्थितियो से लाभ उठाकर पुन राजपद को कुलीय तन्त्र पर आधारित करने का प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप शासक की सत्ता के विरुद्ध स्थान-स्थान पर विद्रोह होने लगे।[2] सन् १८१८ ई० मे राज्य की ईस्ट इण्डिया क० से सधि से पूर्व तक इस प्रश्न पर निरन्तर राज्य मे आन्तरिक सघर्ष चलते रहे कि राजपद सर्वाधिकारी या परमपूर्ण हो अथवा कुलीय भाई-बन्धु परम्परा पर आधारित हो। सन् १८१८ ई० की सधि ने पुन राजतत्र को केन्द्रीय सुरक्षा प्रदान की और वह निरकुशता की ओर अग्रसर होने लगा।[3] इस प्रकार भ्रातृत्व सिद्धात पर आधारित राजपद बाह्य सार्वभौमिकता को स्वीकार करने पर ही सर्वशक्तिमान हुआ। अन्यथा राजव्यवस्था राजा और सामन्तो के बीच साझेदारी पर ही चलती रही।

उपाधियाँ एवम् सम्मान

बीकानेर के प्रथम चार शासको की पदवी 'राव' थी।[4] अगले शासक कल्याणमल ने अपनी राजनैतिक विवशताओ के कारण मुगलो से सन्धि कर ली थी तथा उसकी पदवी 'राव' ही बनी रही।[5] उसका पुत्र रायसिंह, जो राज्य का छठा

---

१. मोहता भीमसिंह का जोधपुर महाराजा अभयसिंह द्वारा बीकानेर घरे का वर्णन, पृ० १७ २२, माइक्रो रील, न० ८, रा० रा० अ० बी०

२ दयालदास री ख्यात (अप्रकाशित), भाग २, पृ० १६६, १८१, २२५, ३१, २२

३ बीकानेर राज्य और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बीच हुई सधि, सन् १८१८ ई० की सधि हुई थी, उसकी सातवीं धारा इसी समस्या के हल से सम्बधित थी। 'महाराजा की याचना पर अग्रेज सरकार महाराजा से विद्रोह करने एव उनकी सत्ता को न मानने वाले ठाकुर तथा राज्य के अन्य पुरुषों को उनके अधीन करेगी। ऐसी दशा में सारा सैन्य खर्च महाराजा को देना होगा। परन्तु, उस दशा मे जबकि उनके पास खर्चा चुकाने के साधन उपस्थित न होंगे, उन्हें अपने राज्य का कुछ भाग अग्रेज सरकार को सुपुर्द कर देना होगा, जो उस खर्च की पूर्ति हो जाने पर उन्हें वापस मिल जायेगा।'

—एचिसन ट्रीटीज इगेजमेंटस् एण्ड सनदज, भाग ३, पृ० २८८ ६०, दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ ३३७ ३८

४ राज्य के प्रथम चार शासक राव बीका, नरा, लूणकरण, जैतसी थे। राव जैतसी रो छन्द, छन्द न० ११, ६३-६४, दयालदास री ख्यात (प्रकाशित) १, पृष्ठ २४, २६-२७, ३७

५ दयालदास री ख्यात (प्रकाशित) २, पृष्ठ ६४, कमचन्द्र मे कल्याणमल की पदवी राजा दी गई है। पृष्ठ ५७

शासक था, मुगल सम्राट् अकबर द्वारा 'राजा' की पदवी से सम्मानित हुआ।[1] उसके पश्चात् मुगल सम्राट् सदैव बीकानेर शासको के वंशानुगत अधिकारो व उनकी उपाधियों को मान्यता देते रहे। सम्राट् जहाँगीर द्वारा राजा रायसिंह के पुत्र सूरसिंह को भेजे गये विभिन्न फरमानों में से अनेक में उसे 'राजा' की पदवी से सम्मानित किया गया था।[2] सम्राज्ञी नूरजहाँ ने भी सूरसिंह को 'राजा' कहकर सबोधित किया था।[3] राज्य का दसवा शासक राजा अनूपसिंह सम्राट् औरगजेब द्वारा 'महाराजा' की उपाधि से अलकृत हुआ।[4] यहाँ के शासकों की राजकीय उपाधियों में उस समय एक और महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई, जब कि सम्राट् शाह आलम द्वितीय ने राज्य के चौदहवें शासक गजसिंह को 'राजराजेश्वर महाराजाधिराज' की पदवी से विभूषित किया।[5]

मुगल सम्राट् द्वारा बीकानेर के शासकों को समय-समय पर भेजे गये फरमानों के अध्ययन से विदित होता है कि वे यहाँ के शासकों के लिए अनेक सम्मानित व आदरसूचक शब्दों की शैली अथवा सम्बोधनों का प्रयोग किया करते थे। उन्हें 'अमीरों का अमीर',[6] 'साम्राज्य के आधार स्तम्भ',[7] 'साम्राज्य के विश्वास

---

१ दयालदास री ख्यात (प्रकाशित), भाग २, पृष्ठ ६७ अलखधारी राजा रायसिंह, पृष्ठ ४०, बीकानेर, १९३४
राजा रायसिंह को यह पदवी ख्यात के अनुसार सन् १५७७ ई० मुगलो के अटक अभियान के पश्चात् सम्राट् द्वारा दी गयी। भलखधारी के अनुसार सन् १५७२ ई० के गुजरात अभियान के पश्चात् दी गयी थी।

२ सम्राट् जहाँगीर द्वारा राजा सूरसिंह को भेजा गया फरमान दिनाक २६ इस्फदारमुज इलाही १८ / फरवरी १६२३ ई०, न० ४७, रा० रा० अ० बी०

३ नूरजहाँ का निशान दि० १० अजर इलाही १२ / दिसम्बर १६१७, न० ३६, रा० रा० अ० बी०

४, मुगल फरमानों में यह पदवी प्राप्त नही होती है, परन्तु ख्यात में इसका विशद विवरण मिलता है। दयालदास के अनुसार अनूपसिंह को यह पदवी सम्राट् आलमगीर के मराठों के विरुद्ध विजय के फलस्वरूप प्राप्त हुई थी। पाउलेट ने इसे अनूपसिंह की औरगजेब के गोलकुण्डा अभियान की सेवाओं का परिणाम माना है।
—दयालदास री ख्यात (प्रकाशित), भाग २, पृष्ठ २०५, पाउलेट गजटियर आफ बीकानेर, पृष्ठ ३६

५ सम्राट् शाहआलम द्वितीय का महाराजा गजसिंह को फरमान, दि० २४ जमादि उससानी, ४ जुलाई, १७६२, न० ८०, रा० रा० अ० बी०

६ सम्राट् जहाँगीर का फरमान, न० ६७, रा०रा० अ० बी० (दिनांक लिखा हुआ नहीं है।)

७ शाहजादे सलीम का राजा रायसिंह को निशान, दिनाक २६ अजर, ४२ / नवम्बर, १५९७, न० ५, रा० रा० अ० बी०

पात्र"[१] 'समस्त शाही सम्मानों के योग्य"[२] आदि पदवियो से सम्बोधित किया जाता था। शाहजादा खुर्रम ने अपने निशान मे राजा सूरसिंह को **'उच्च कुल के राजाओं में सर्वश्रेष्ठ'** लिखा था।[३] सम्राट् जहाँगीर ने इसी राजा को अपने एक फरमान मे 'राम राम' भेजी थी।[४] सम्राट् शाहजहाँ ने भी राजा सूरसिंह को **'अपने बराबर वालों मे श्रेष्ठ'** कहकर सम्मानित किया था।[५] इन सम्मानजनक शब्दावलियो के साथ साथ यहाँ के शासको को सैनिक सम्मान भी प्राप्त हुए थे। शाहजादा सलीम व सम्राट् औरगजेब ने राजा रायसिंह व महाराजा अनूपसिंह को उच्च सैनिक स्तर की श्रेणी का सम्मान 'तोग' प्रदान किया था।[६] महाराजा अनूपसिंह और महाराजा गजसिंह को मुगल सम्राट् द्वारा राजसी सम्मान के निशान 'माही ओ मरातिब' प्राप्त हुए थे।[७]

प्रत्येक फरमान व निशान म इनके लिए राजा शब्द का प्रयोग नही किया गया है। अधिकतर म 'राव' अथवा 'राय' शब्द का ही पदवी के रूप मे प्रयोग मिलता है।[८] गजसिंह ही एकमात्र शासक थे, जिनके लिए प्रत्यक फ मान म

---

१ सम्राट शाह आलम द्वितीय का फरमान (पूब)

२ शाहजादे सलीम का निशान (पूब)

३ शाहजादे खुरम का सूरतसिंह (सूरसिंह) को निशान दिनांक १५ जिल्जहिज्ज (१०२६) ए १५ / दिसम्बर १६१७ ई० न० ३५

४ सम्राट् जहाँगीर का सूरसिंह को फरमान न० ६७

५ सम्राट शाहजहाँ का राव सूरतसिंह को फरमान दि० ११, खबरदाद ३ / मई १६३० ई०, न० ७५

६ तोग प्राय ऊँचे ओहदे वाले मनसबदारो को सम्मानित करने के लिए उन्हें प्रदान किया जाता था। कैंची के आकार के डंडों मे याक के बालों से बनी हुइ तीन पूछों से यह बना होता था, जो कि एक लम्बे डण्डे के सिरे से जुडा रहता था।
—शाहजादे सलीम का निशान (पूर्व) महाराजा अनूपसिंह जी रै मुनसब नै तलब री विगत, पृष्ठ ८८ ९० फुटकर बाता न० २०६ / २, अ० स० पु० बी०

७ माही ओ-मरातिब का अथ दा गेंदों तथा मछली के आकार के चिह्न से सम्मानित करना था। पाउलेट गजटियर पृ० १२३ दी हाउस ऑफ बीकानेर (पूव) पृ० २१ ओझा बीकानेर १ पृ० २८८ ८९। यद्यपि इस सम्मान को प्राप्त करने का विवरण हमे सम कालीन ग्रथों में नहीं प्राप्त होता है पर तु ये चिह्न फोट सग्रहालय बीकानेर में अभी भी देखे जा सकते हैं।

८ प्राप्त फरमानों मे रायसिंह क नाम क १९ फरमान व निशान मे राय' शब्द का ही प्रयोग किया गया है। सूरसिंह के ५६ फरमान व निशान में ४३ मे 'राव व १३ म राजा' पदवी का प्रयोग किया गया है। राव करण के २ व अनूपसिंह के ४ फरमान व निशान में भी केवल 'राव शब्द का प्रयोग किया गया है। बीकानेर शासकों के मिले फरमान व निशान की सूची—रा० रा० अ० बी०

'राजा' या 'महाराजाधिराज' की पदवी का प्रयोग किया गया है।[1] पर उस काल तक मुगलो का वैभव समाप्त हो चुका था और देश मे वे राजनैतिक सर्वोच्चता का दावा नही कर सकते थे। स्वय महाराजा गजसिंह ने उनके आदेशो की परवाह नही की थी।[2] उसने और उसके उत्तराधिकारियो ने, अपने राज्य-अभिलेखो मे प्रभुतासम्पन्न शासको की तरह गौरवमयी तरीकों से श्री राज, महाराजा, राजेश्वराधिराज, महाराजा शिरोमणि, महाराजा, श्री श्री १०८ श्री ·· ··आदि अनेक उपाधियो को एकसाथ धारण किया था।[3]

इसके अलावा यहाँ के शासको ने अपने निजी पत्रो मे सदैव 'महाराजाधिराज' लिखकर ही स्वयम् को सम्बोधित किया था।[4] विभिन्न शिलालेखो तथा प्रशस्तियो मे भी इन शासकों के नाम से पूर्व महाराजाधिराज से कम उपाधि नही प्राप्त होती है।[5] स्थानीय साहित्य मे वे प्राचीन हिन्दू नरेशो की भाँति महिपति, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर और राजेन्द्र पदवी से सम्मानित किये गए हैं।[6]

इतनी विशाल उपाधिया व शब्दावलियो से विभूषित बीकानेर शासक जब राज्य के स्वतन्त्र अधिपति थे, तब केवल राव ही कहलाते थे। प्राचीन हिन्दू नरेशो की तरह, उन्होने इतनी विशाल अर्थो वाली उपाधियाँ उस समय धारण की जब वे मुगल साम्राज्य के एक मनसबदार थे। समकालीन फारसी तवारीखो मे व मुगल शासको के फरमानो मे इसके लिए जमींदार शब्द का प्रयोग किया गया है।[7] इनकी राजनैतिक व सामाजिक स्थिति को देखते हुए यह सम्बोधन निराशाजनक कहा जा सकता है।

---

१ फरमान न० ८७ व ६१, रा० रा० अ० बी०

२ दयालदास री ख्यात (अप्रकाशित), भाग २, पृष्ठ २८८

३ कागदो की बही, वि० सं० १८२७/१७७० ई०, न० १, पृष्ठ १-२

४ महाराजा गजसिंह का जोधपुर नरेश विजयसिंह को लिखा पत्र, आश्विन बदी ८, वि० स० १८०६/३० सितम्बर, १७५२ ई०, खरीता सग्रह, बीकानेर, रा० रा० अ० बी०, दी हाउस आफ बीकानेर, पृ० १४४

५ सूरज पोल प्रशस्ति, पंक्ति नं० ६८, अनूपसिंह की छत्री शिलालेख, वि० सं० १७५५/१६६८ ई०, बीकानेर

६ दलपत विलास, पृष्ठ १२, जयसोम (पूर्व), पृ० ६६, रायसिंह सुधासिन्धु (पूर्व), पृ० १-२, कर्णाभरण (पूर्व), पृष्ठ १

७ सम्राट जहांगीर का राय सूरसिंह को फरमान न० ६५, सम्राट् अहमदशाह का राजा गजसिंह को फरमान, दि० २ महर्रम ७/२ अगस्त, १७५३, न० ८८, आईने अकबरी, प्रथम भाग (पूर्व), पृष्ठ ३५७, डा० इरफान हबीब, आर्टिकल 'दी जमींदार इन दी आईन, इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसिडिंग्स, १९५८, पृष्ठ ३२२, एस० नूरुल हसन, थाट्स आन एग्रेरियन रिलेशन्स इन मुगल इण्डिया, पृष्ठ ३१, दिल्ली १९७३

उत्तराधिकार समस्या

आनुवंशिक नृपतन्त्र मध्ययुगीन भारतीय इतिहास की एक मुख्य विशेषता थी। जैसा पहले लिखा जा चुका है, भूतपूर्व बीकानेर राज्य क्षेत्र में इसकी स्थापना १५वीं शताब्दी के अन्त तक बिखरे अनेक छोटे छोटे जातीय जनपदों की गणतन्त्रीय व्यवस्था को मारवाड के राठौडो के अनवरत आक्रमण द्वारा उखाड फेंकने व तदनन्तर राठौड राजतन्त्र सिद्धान्त के स्थापित होने के साथ हुई थी। राठौड आक्रमणकारियों में निर्वाचित नृपतन्त्र सिद्धांत के प्रति कोई मोह नहीं था।[1] यह अवश्य था कि उपयुक्त उत्तराधिकारी की खोज में कुलीय बन्धुओ व मंत्रियों के बीच विचार-विमर्श या मन्त्रणा होती रहती थी, लेकिन उनके विकल्प भाव केवल राज परिवार के सदस्यों तक ही सीमित रहते थे।[2] जब तक कुलीय व्यवस्था का जोर रहा, तब तक जाति के विभिन्न कुल-मुखियो के विचार ही उत्तराधिकारी के चुनाव में निर्णायक भूमिका निभाते रहे।[3]

साधारणतया उत्तराधिकार के प्रश्न में ज्येष्ठाधिकार के नियम को ही मान्यता प्राप्त थी, परन्तु व्यवहार में इस सिद्धांत की अवहेलना के उदाहरण भी मिलते हैं।[4] ज्येष्ठ पुत्र के अभाव में शासक का छोटा भाई राजगद्दी के अधिकारी

—मुगल फरमानों व समकालीन फारसी ग्रन्थो मे कई बार बीकानेर शासको को 'भुरटिया राव' कहकर सम्बोधित किया गया है। सम्भवत इस क्षेत्र की वनस्पति-सम्बन्धित विशेषताओं के कारण, इसका प्रयोग किया गया हो। रेगिस्तानी क्षेत्र की मुख्य घास 'भुरट' होती है तथा कई बार यहा की भूमि को 'भुरटी' भी कहा जाता है। इसी सदर्भ मे यहा के शासकों को भुरटिया राजा कहा गया है।

—शाहजादा खुर्रम का राव सूरजसिंह को निशान, दिनाक २२ खुरदाद इलाही / १२, मई, १६१७ ई०, आलमगीरनामा, पृष्ठ ५७१

—डा० जी० एन० शर्मा ने राजपूत राजाओं को जमींदार कहने पर आपत्ति उठाई है। उनके अनुसार 'ऐसा कहना अवैज्ञानिक है। उन्होने अपना विचार राजपूत राजाओं की स्थिति, उनके स्वशासित राज्य मुगलों द्वारा उन्हें दिये गये सम्मान के आधार पर प्रस्तुत किया है।—राजस्थान स्टडीज, पृष्ठ २०७ ११, आगरा, १९७०। सम्भवत इस शब्द का प्रयोग मुगल प्रशासनिक व्यवस्था में उनके भू-स्वत्व अधिकारो को लेकर किया गया हो।

१ कुलीय व्यवस्था में कुल के वंशानुगत अधिकारों को सम्मान देने की प्रथा थी।—बी०पी० मजुमदार (पूर्व), पृ ५७

२. दयालदास री ख्यात (भ०) २, पृष्ठ ३४ (अप्र०), पृ० २७६-७७

३ उपर्युक्त

४. देखिये, बीकानेर शासकों का वंशवृक्ष, परिशिष्ट १

को प्राप्त कर सकता था।[1] अल्पवयस्क शासक होने की दशा में दिवगत राजा का अनुज अथवा राजमाता राज प्रतिनिधि के रूप में शासनभार सभाल सकते थे।[2] कई बार उत्तराधिकार की समस्या शासक के जीवनकाल में ही उत्पन्न होकर उलझनें खडी कर देती थी। राजकुमारो की महत्त्वाकाक्षाए इस समस्या को अपरिपक्व अवस्था मे ही जटिल बना देती थी, जिससे प्रशासन भी प्रभावित हुए बिना नही रहता था।[3]

मुगलों से सधि के पश्चात, मुगल सम्राट् के पास यह परमाधिकार आ गया कि वह राज्य के प्रत्येक नये शासक को गद्दी पर बैठते समय मान्यता प्रदान करे।[4] मुगल सम्राटों ने अपनी इन निर्वाचन शक्तियो का प्रयोग इतनी स्वेच्छा से किया कि उन्होंने कई बार दिवगत राजा के कनिष्ठ पुत्रों को उत्तराधिकारी के रूप में चुना।[5] यहाँ तक कि उन्होंने कई राजाओं को उनके जीवनकाल में ही राजगद्दी से उतार दिया था। बीकानेर राज्य इतिहास में इस प्रकार के तीन उदाहरण हैं, जिनके समतुल्य उदाहरण इस काल में कही अन्य किसी राज्य मे प्राप्त नही होते।

---

१ बीकाने रै राठौडां री ख्यात (पूर्व), पृष्ठ १४, महाराजा स्वरूपसिंह की मृत्यु के पश्चात् पुत्र न होने की दशा में उसका छोटा भाई सुजानसिंह सन १७०० ई० मे गद्दी पर बैठा था।

२ महाराजा स्वरूपसिंह के बाल्यकाल व उनके दक्षिण प्रवासकाल में राजमाता सीसोदणीजी राजप्रतिनिधि के रूप में शासनकार्यों को देखती थी। सूरतसिंह ने अपने ज्येष्ठ भ्राता महाराजा राजसिंह की अस्वस्थता तथा भतीजे प्रतापसिंह के बाल्यकाल मे राजप्रतिनिधि के रूप में राज्यप्रशासन का सचालन किया था।—दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ २५७-५८, टाड २, पृष्ठ ११३९ ४१

३ राजकुमार दलपत व राजसिंह का अपने पिता राजा रायसिंह व महाराजा गजसिंह के विरुद्ध विद्रोह से राज्य में अशान्ति व असुरक्षा का वातावरण उत्पन्न हो गया था। (दयालदास री ख्यात) २ पृष्ठ १३०, (अप्र०) २, पृष्ठ ३०-३१

४ मान्यता का अर्थ यहाँ सम्राट् द्वारा नये शासक के अधिकारों को स्वीकृत करना था। इस अवसर पर दरबार में एक छोटा सा उत्सव होता था। सम्राट् अपने हाथ से नये शासक के ललाट पर टीका लगाता था तथा दिए गए मनसब के अनुसार उसको वतन जागीर व अन्य जागीरी क्षेत्रों को प्रदान करता था। शाहजहाँ के काल मे सम्राट् द्वारा टीका लगाने की प्रथा समाप्त हो गयी। उसके स्थान पर वजीर यह कार्य सम्पन्न करने लगा था, औरगजेब ने इस प्रथा को पूर्णतया ही मिटा दिया।

—*आइने अकबरी*, भाग १, पृष्ठ २५८ तुजुके जहाँगीरी, अनु० रोजर्स, स० एच बेवरिज, पृष्ठ २१७ १८, लन्दन १९०९ ई०, मासीरे आलमगीरी, पृष्ठ १७६

५ सम्राट् जहाँगीर ने राजा रायसिंह के उत्तराधिकारी दलपतसिंह को हटाकर, उसके कनिष्ठ भ्राता सूरसिंह को गद्दी प्रदान कर दी थी।—तुजुके जहाँगीरी (पूर्व), पृष्ठ २१७ १८ —दयालदास री ख्यात (प्र०), भाग २, पृष्ठ १४४

केवल सम्राट् शाहजहाँ को छोड़कर प्रत्येक महान मुगल सम्राट् ने अपनी इन असीमित शक्तियों का प्रयोग किया था। सम्राट् अकबर ने कुंअर दलपत के युद्ध व षड्यन्त्र द्वारा बीकानेर राज्य का सर्वेसर्वा बन जाने पर अपना समर्थन प्रदान किया।[1] सम्राट जहांगीर ने सूरसिंह का पक्ष लेकर राजा दलपतसिंह के विरुद्ध मुगल सेना भेजी थी व उसको गद्दी पर बिठाया था।[2] औरंगजेब ने राजा कर्णसिंह को मुगल विरोधी गतिविधियों के आरोप में गद्दी से हटाकर उसके पुत्र अनूपसिंह को राज्यप्रशासन का दायित्व सौंपा था।[3]

उत्तराधिकार के प्रश्न पर मुगलों के हस्तक्षेप से निर्णय अवश्य शीघ्रातिशीघ्र होने लगे, परन्तु इससे राज्य में षड्यन्त्रकारी गतिविधियाँ बढ़ने लगी। मुगल सम्राट की स्वेच्छाचारिता से राज परिवार की महत्त्वाकांक्षाओं को हवा मिलने लगी, जिससे प्रचलित ज्येष्ठाधिकार का नियम कमजोर पड़ने लगा।[4] अब सबकी आशाओं व आकर्षण का केन्द्र मुगल सम्राट बन गया। यद्यपि मुगलों ने भी जहाँ तहाँ परम्पराओं का सम्मान करने के यत्न किये थे परन्तु अधिकतर उन्होंने अपनी इच्छाओं को ही थोपा। उनकी निर्वाचन की असीमित शक्तियों ने राज्य के सम्मुख नयी उलझनें खड़ी कर दीं। राजा रायसिंह अपने विरुद्ध हो रहे षड्यन्त्रों का शिकार बना जिसके फलस्वरूप सम्राट् अकबर के साथ उसके सम्बन्ध एक अवस्था में बहुत बिगड़ गये थे।[5] दलपतसिंह व सूरसिंह की प्रतिद्वन्द्विता ने राज्य

---

१ आईने अकबरी भाग १ पृष्ठ ३५८ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृष्ठ १२६ ३० देशदपण पृष्ठ १४ वास्तव में यह घटना कब घटी इसकी सही सूचना प्राप्त नहीं है। ख्यातों में जो वर्णन दिया गया है वह सम्राट् अकबर के नाम से जहांगीर के काल का दे दिया गया है जो लगभग सन १६०८ १० ई० के पड़ता है। कुछ ख्यातों में इस घटना को छिपाकर भी लिखा गया है। सिर्फ कुंवर दलपत के विद्रोह व उसके द्वारा रायसिंह को हराने का विवरण दिया गया है। दशदपण में स्पष्टतः अकबर द्वारा रायसिंह को हटाकर दलपत को मनसब व जागीर देना लिखा है। सम्भवतः यह घटना सन् १५९९ व १६०० ई० के लगभग घटी थी, जब दलपत ने राज्य में आकर विद्रोह किया था। उस समय सम्राट अकबर रायसिंह से रुष्ट था।

२ तुजुके जहांगीरी (पूर्व) पृष्ठ २५८ ५९

३ सम्राट औरंगजेब का अनूपसिंह को फरमान दिनांक १६ रबी उल अव्वल १०/११ जनवरी, १६६७ ई० न ६१

४ महाराजा अनूपसिंह की मृत्यु के पश्चात उनके पुत्रों के बीच गद्दी प्राप्त करने के लिए उनके समर्थकों द्वारा षड्यन्त्र प्रारम्भ हो गए थे। सभी दलों ने सम्राट से अपने अपने पक्ष के प्रति निवेदन किया था।—बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सू गजसिंह जी ताईं पृष्ठ ५

५ अकबरनामा, अनु० एच० बेवरिज भाग ३, पृष्ठ १०६८ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृष्ठ १२६ ३०

भेदभाव को जन्म दिया व प्रशासनीय अस्थिरता के वातावरण को पनपाया।[1] वनमालीदास काड ने तो राज्य के अस्तित्व तक को खतरे मे डाल दिया था।[2] सन् १६९८ ई० मे महाराजा अनूपसिंह की मृत्यु के पश्चात् नाजर ललित के षड्-यन्त्रो ने राज्य के शत्रुओ को लाभ उठाने का अवसर प्रदान किया।[3] लेकिन यह हस्तक्षेप सम्राट् के निजी साम्राज्य के स्वार्थों के हित मे था। इस तरह की असीमित शक्तियो के प्रयोग से वह न केवल केन्द्रीय सरकार की स्थानीय शक्तियो पर नियन्त्रणकारी शक्तियों को दृढ करता था, अपितु राजा को उसके प्रति व्यक्तिगत आभार की भावना से भी जकड देता था।

१८वी शताब्दी मे मुगलो के पतन और उनकी सर्वोच्च सत्ता के लोप होने के साथ मान्यता के इस सिद्धात का प्रभाव भी समाप्त हो गया। बीकानेर के शासको ने अधीनता का जुआ हटा दिया। उत्तराधिकार के प्रश्न पर निर्णायक शक्ति पुन उनके हाथ मे आ गई। परन्तु शासको की अयोग्यता, राज्य मे हो रहे आतरिक विद्रोहो व बाह्य आक्रमणो ने उसे इस अधिकार का भली भाँति प्रयोग करने का अवसर नही दिया। इस काल मे, सामन्तो की शक्ति बढने तथा राज कर्मचारी वर्ग के सगठित होने से ठाकुरो व मुत्सद्दियो की इच्छा भी उत्तराधिकार के निर्णय मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगी।[4]

राज्य म उत्तराधिकार की समस्या ने उस समय सबसे अधिक बखेड़े किये जब सन् १७४५ ई० मे नि सतान महाराजा जोरावरसिंह की मृत्यु हो गई। उनके पीछे राज्य व गढ का प्रबन्ध मुत्सद्दी दीवान मोहता बख्तावरसिंह ने तथा शक्ति-शाली मुखरका के मुसाहिब ठाकुर कुशलसिंह ने अपने हाथो मे ले लिया।[5] अब

---

१ सूरसिंह ने दलपतसिंह के समर्थकों को बुरी तरह दण्डित किया था।—दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृष्ठ १५२-५३

२ सम्राट् औरगजेब ने राजा करण के बड़े पुत्र अनूपसिंह व वनमालीदास के बीच राज्य-विभाजन की योजना बनाई थी, जो अनूपसिंह की चतुराई से सफल नही हो सकी। दयाल-दास री ख्यात (प्र०) २, पृष्ठ २१७ २०

३ मारवाड के राजा अजीतसिंह ने राज्य की कमजोरी का लाभ उठाकर आक्रामक नीति अपनाई थी। जोहियों व भट्टियों के विद्रोह बढ गये थे।—बीकानेर री ख्यात, महाराजा सुजाणसिंघजी सू महाराजा गजसिंह ताइ, पृष्ठ ५-७

४ बीकानेर री ख्यात, महाराजा सुजाणसिंघ सूं महाराजा गजसिंघजी ताई, पृ० ५७, ३८, ७०

५ बीकानेर री ख्यात, महाराजा सुजाणसिंघ जी सूं गजसिंघजी ताईं, पृष्ठ ३८, ४०, महता ख्यात, पृष्ठ ९५ ९९, मोहता रिकार्ड्स, माइक्रो फिल्म, रील न १८, रा० रा० अ० बी०

वे ही उत्तराधिकारी के लिए वास्तविक चयनकर्ता थे। हालाँकि राज्य के मामलों की देख-रेख हेतु एक समिति भी गठित की गयी थी, जिसमें रायों के प्रभावशाली सरदार, मुत्सद्दी व हजूरी सम्मिलित थे।[1] लेकिन अंतिम निर्णय इन्हीं 'दो सहयोगियों' के हाथ में था।

इन 'दो सहयोगियों' के सम्मुख गद्दी के दो दावेदार थे, मृत महाराजा जोरावरसिंह के चचेरे भाई कुंअर अमरसिंह और कुंअर गजसिंह।[2] राज्य की प्रबन्धक समिति कुंअर गजसिंह के दावे के समर्थन में थी। उसके सदस्यों की दृष्टि में गजसिंह एक आदर्श नरेश, *कर्तव्यपालक सम्राट् व बुद्धिमान राजा हो सकता था।*[3] उसकी सैनिक योग्यताएं भी जोधपुर नरेश महाराजा अभयसिंह द्वारा बीकानेर के घेरे के समय भली भाँति परखी जा चुकी थी।[4] परन्तु इससे भी अधिक 'दो सहयोगियों' को झुकाने वाली बात यह थी कि कुंअर गजसिंह ने उन्हें यह वचन दिया था कि वह गद्दी पर बैठने के पश्चात् उनसे राजकोष का पिछला हिसाब नहीं मांगेगा।[5] फिर, कुंअर गजसिंह का बड़ा भाई कुंअर अमरसिंह अभिमानी प्रकृति तथा अनियंत्रित स्वभाव का था, जिसने दीवान व मुसाहिब को उसके प्रति शंकालु बना दिया।[6] राज्य में एक शक्तिशाली शासक तथा एक शक्तिशाली सामन्त या दीवान का एकसाथ कार्य करना कठिन था। अतः १७ जून, सन् १७४५ ई० को मध्य रात्रि में 'दो सहयोगियों' ने कुंवर गजसिंह को चुपके से गढ़ में प्रवेश करवाकर उसका राज्याभिषेक करा दिया।[7]

परवर्ती काल में राज्य में अनेक राजनीतिक संकटों को आमंत्रित करने वाली यही घटना थी, जिसने राज्य में न केवल अराजकता को जन्म दिया, बल्कि बाहरी आक्रमणों को भी आमंत्रित किया। कुंअर अमरसिंह ने मारवाड़ की सैनिक शक्ति के बल पर गद्दी पर अपना दावा प्रस्तुत किया, फिर असफल होने पर राज्य के

---

१ दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, २७६

२ उपर्युक्त

३ मोहता ख्यात (पूर्व), पृष्ठ ६६, मोहता रिकार्ड्स, दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ २७६

४ मोहता भीमसिंह द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंह के बीकानेर घेरे का वर्णन, पृ० १७ १६

५ मोहता ख्यात, पृ० ६७, दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, पृ० २७६

६ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सू गजसिंघजी ताई, पृ० ३८-३६, दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, पृ० २७६

७ उपर्युक्त

८ दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ २७७ ६०

६ वही, पृष्ठ ३१२ ४३

उत्तरी क्षेत्र में वह जीवनपर्यन्त आतंक फैलाये रहा।[1] जब महाराजा सूरतसिंह राजगद्दी पर बैठे तो उन्हें भी इन्हीं विपत्तियों से जूझना पड़ा। उनके विरुद्ध मारवाड़ के शासक ने उनके भाइयों को समर्थन दिया। महाराजा सूरतसिंह ने इस संकट को टालने के लिए महाराजा विजयसिंह के साथ समझौता कर लिया,[2] क्योंकि वे इस तथ्य से परिचित थे कि मारवाड़ के शासक बीकानेर की हर कमजोरी का लाभ उठाने को तत्पर रहते हैं। जोधपुर राज्य की ख्यातों में यह दावा प्रस्तुत किया गया है कि अपनी मान्यता के लिए महाराजा सूरतसिंह ने जोधपुर महाराजा विजयसिंह द्वारा भेजा गया टीका स्वीकार किया था।[3] इस दावे पर बीकानेरी स्रोत मौन हैं। सम्भवतः राज्य की आंतरिक कठिनाइयों व बाह्य आक्रमणों से अरक्षित स्थिति को देखकर महाराजा सूरतसिंह ने कुछ समय के लिए परिस्थितियों से समझौता कर लिया हो। इस संदर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि बीकानेर राज्य के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर जोधपुर राज्य के अलावा किसी अन्य राज्य की दखलन्दाजी का कोई उदाहरण नहीं प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उत्तराधिकार के प्रश्न को प्रभावित करने वाले कई तत्त्व परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार क्रमशः उभरते गये। १५७०-१७०७ ई० तक मुगल सम्राट् की सार्वभौमिकता निर्णायक तत्त्व रही। १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल शक्ति के पराभव के साथ राज्य के व्यावहारिक रूप में स्वतंत्र हो जाने से इसमें आंतरिक शक्तियों की दखलन्दाजी भी बढ़ने लगी। राजा की इच्छा के साथ-साथ सामन्त व मुत्सद्दी वर्ग की राय भी विचारणीय बन गई। राज्य की कमजोरी का लाभ उठाते हुए मारवाड़ की शक्ति ने भी अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए अपने पक्ष के व्यक्ति के चुनाव में रुचि दिखाई। इससे समस्या सुलझने के स्थान पर और जटिल हो गई।

राजा का क्षेत्राधिकार एवं उसकी शक्तियों का विकास

(अ) प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार

राज्य-संस्थापक राव बीका अपनी समस्त प्रजा का शासक नहीं कहा जा सकता। वह अधिक से अधिक राज्य के विभिन्न क्षेत्रों पर अधिकार करने वाले अपने सगोत्र कुलपतियों का मुखिया था। उसके ध्वज के नीचे तीन तरह की क्षेत्रीय

१　दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० २७७-८४

२　उपर्युक्त पृ० ३१२-१३

३　मारवाड़ री ख्यात, भाग २, पृ० २२६, म०सं०पु० बी०। भैय्या निजी संग्रह, बीकानेर के एक पत्र द्वारा ज्ञात होता है कि महाराजा सूरतसिंह ने बीकानेर राज्य की गद्दी पर अपनी मान्यता हेतु जयपुर नरेश से भी टीका मंगवाया था। जयपुर से [illegible] का भैय्या करणीदान, को पत्र, पौष बदी ५, १८५१/११ दिसम्बर, १७९४ ई०।

इकाइयां थीं। प्रथम क्षेत्रीय इकाई राजभूमि थी, जहाँ पर राजा प्रत्यक्ष रूप से शासन करता था। यही क्षेत्र आगे चलकर खालसा भूमि के नाम से विख्यात हुआ। यहाँ भी शासक ने रहने वाली विभिन्न स्थानीय जातियों के साथ समझौता किया था, जिसके अनुसार राजा के कर्मचारी निर्धारित कर को वसूल करने गाँवों में जाते थे। राज्य इन्हें आक्रमण व अव्यवस्था के विरुद्ध सुरक्षा का आश्वासन देता था। इसके अलावा, उनकी प्रचलित स्थानीय व्यवस्था में किसी तरह का कोई हस्तक्षेप नहीं होता था।[1] द्वितीय क्षेत्र विभिन्न ठाकुरों द्वारा शासित होता था। वे अपने क्षेत्र में राजा के प्रतिरूप थे तथा व्यावहारिक उद्देश्यों में पूर्णतया स्वतन्त्र थे। वे अपने कुल प्रधान को आवश्यकता पड़ने पर अथवा संकट के समय जो सैनिक सहायता देते थे वह सेवा के रूप में नहीं अपितु नैतिक व सामाजिक दायित्व के रूप में देते थे।[2] तीसरी तरह का क्षेत्र वह था जिसपर उन विभिन्न वंश, गोत्र की जातियों व कबीलों का आधिपत्य था, जिन्होंने केवल राठौड़ों की उच्च सैनिक शक्ति के आगे झुककर, नाममात्र की अधीनता स्वीकार करके सालाना पेशकशी (भेंट) देना स्वीकार किया था। ये भी अपने आंतरिक प्रशासन में पूर्णतया स्वतन्त्र थे तथा राजा द्वारा बुलावा आने पर सैनिक सहायता प्रदान करते थे।[3]

राव बीका के उत्तराधिकारी शासक वे सीमित क्षेत्राधिकारों से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने न केवल राज्य की स्वतन्त्रप्रिय जातियों व कबीलों के क्षेत्र में हस्तक्षेप किया अपितु ठकुराई क्षेत्रों पर भी अधिकार करने की भरसक कोशिश की थी। इससे रुष्ट होकर राज्य के ठाकुर, राज्य के शत्रुओं से मिल गये व राज्य को बहुत हानि पहुँचायी। राव लूणकरण व राव जैतसी को अपने प्राण देकर इस नीति की कीमत चुकानी पड़ी। राव कल्याणमल ने तो सीमित अधिकारों को बचाने में ही अपना कल्याण समझा।

(ब) शक्ति का विकास (१५७०-१७०७)

राव कल्याणमल ने भारत में मुगलों के द्वारा अफगान शक्ति के दमन के पश्चात् और राजपूताने में मुगलों की सक्रिय हस्तक्षेप की नीति को देखकर सन् १५७० ई० में उनसे समझौता कर लिया।[4] मारवाड़ की आक्रामक गतिविधियों व राज्य के सरदारों के विद्रोही रुख के सामने राज्य को एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता के आश्रय की (नितांत) आवश्यकता थी। परवर्ती शासक राजा रायसिंह के समय,

---

१ बीकानेर रै धणीया री याद, पृ० १०-४२, टाड २, पृ० ११२४
२ उपर्युक्त, पृ० ७ १२ बीकानेर रै राठौडा री ख्यात सीहैजी सूं, पृ० १०१ ४, राठोडा री वशावली नै पीढ़ियाँ नै फुटकर बाता, पृ० ६० ६१
३ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, प० ७-१२ टाड २, पृ० ११२६ २८
४ दलपत विलास, पृ० १५

राज्य के मुगलो के साथ सम्बन्ध और अधिक सुदृढ हुए। उसने सन् १५८६ ई० में अपनी पुत्री का विवाह शाहजादे सलीम के साथ किया।[1] विभिन्न मुगल अभियानो मे भाग लेकर व अनेक स्थानो पर प्रशासकीय सेवाए अर्पित करके उसने मुगल सम्राट् का विश्वास जीत लिया।[2] उसके उत्तराधिकारियों मे केवल राजा दलपतसिंह व राजा कर्णसिंह के अल्पकाल को छोडकर सभी बीकानेर के राजाओ के सम्बन्ध मुगलों से मैत्रीपूर्ण ही रहे।[3]

इस काल मे न केवल राज्य मे शासक की सत्ता का प्रसार हुआ अपितु सर्वत्र उसकी प्रतिष्ठा भी बढी। अब उन्हें किसी बाहरी हमले व आन्तरिक विद्रोहो का भय नही रहा था। राजा रायसिंह ने स्थानीय जातियो के राजनैतिक अधिकारो का दमन करके उन्हें साधारण नागरिक की स्थिति मे ला दिया था, परिणामस्वरूप कालान्तर मे खालसा भूमि विकसित हुई[4] और राज्य प्रशासन हर क्षेत्र मे लागू किया गया। इसी प्रकार कुलीय भाईचारे के सिद्धान्त को भी प्रभावहीन बना दिया गया। राज्य के सामन्त शासक के साझेदार नहीं रहे बल्कि राज्य के प्रति निश्चित दायित्वो के अन्तर्गत बन्ध कर उसकी सेवा करने वाले बन गये। उनपर पट्टा प्रणाली लागू की गई[5] जिसके अनुसार वे अपनी जागीर का पट्टा शासक को दी गई सेवाओ के बदले वेतन के रूप मे प्राप्त करने लगे।[6] अब कुल मुखिया राज चाकर बन गए। कुलीय राज्य के स्थान पर एक सम्पूर्ण सत्ता-सम्पन्न निश्चित क्षेत्रीय राजनैतिक इकाई ने जन्म लिया। राज्य के क्षेत्र को

---

१. आईने-अकबरी, भाग १, पृ० ३४७ भाग ३, पृ० ६४६, डा० ए० एल० श्रीवास्तव, अकबर महान, भाग १, पृ० १४६
२ आईने अकबरी, भाग १, पृ० ३५७ ५८, दलपत विलास, पृ० २१-२७
३ सम्राट् औरगजेब का अनूपसिंह को फरमान (पूर्व), न० ६१ तुजुके जहांगीरी (पूर्व), २५८ ५९ दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० १४५ ४६, १६४-६५
राजा दलपतसिंह स्वभाव से स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने शाही आदेशों की अवहेलना की तथा मुगल शक्ति के दबाव के आगे हथियार उठा लिये थे। वे युद्ध में बन्दी बनाए गए तथा अजमेर के समीप मारे गये। राव कर्ण को भी मुगल विरोधी आचरण के कारण उन्हें सिंहासन से हटाया गया। उनके पुत्र अनूपसिंह को युवराज की पदवी देकर बीकानेर वतन का शासनभार सौंपा गया। इन कार्यवाहियों से असन्तुष्ट होकर राव कर्ण ने औरंगाबाद व बुरहानपुर के क्षेत्र म बडा उत्पात मचाया था।
४. दलपत विलास, पृ० ६२, मोहता ख्यात, पृ० १७ टाड २, पृ० ११२६-३१
५. सभवत: राजा रायसिंह के शासन के अंतिम वर्षो मे पट्टा व्यवस्था लागू कर दी गई थी।—पट्टावही, वि० स० १६८२/१६२५ ई०, न० १, वि० स० १७२५/१६६८ ई०, नं० ५, वि० स० १७५३ / १६९६ ई०, नं० ७, रामपुरिया रिकार्ड्स बीकानेर
६. उपर्युक्त

चीरा (प्रशासनिक इकाइयो)[1] मे बाटकर खालसा व पट्टे के गाँवो को एक ही विधान के अन्तर्गत रख दिया गया। ठाकुरो की शक्ति को और कमजोर करने के लिए उनकी जागीर को उनके परिवार के सदस्यों मे विभाजित कर दिया गया और एक खाप के पट्टे के गावो के पास दूसरी खाप के सदस्यो को पट्टे मे गाव दिए गए।[2] एक खाप के सदस्यो को जहा तक सम्भव हुआ, एक क्षेत्र मे समूह के रूप मे एकत्रित नही होने दिया गया।[3] सरदारो के न्यायिक अधिकार छीन लिये गये। उन्हें शासक को सैनिक सेवा प्रदान करने के साथ-साथ अब निर्धारित कर भी चुकाने पडने लगे।[4]

उत्तर व उत्तर-पश्चिम क्षेत्र मे निवास करने वाली विभिन्न जातियाँ भी अपनी स्वतन्त्रता के सुख को अधिक नही भोग सकी। राजा रायसिह ने जोहियो का दमन किया।[5] भाटी राजपूत निष्ठाभाव से राज्य की सेवा करने लगे। राजा दलपतसिह ने भी इनके विरुद्ध कठोर नीति अपनाई।[6] राजा कर्ण ने भाटियों के शक्तिशाली ठिकाणे पूगल को राव शेखा के वशजो मे विभक्त करके उनकी एकता को भग कर दिया।[7] तत्पश्चात्, महाराजा अनूपसिह को विद्रोही भाटियो व जोहियो की सयुक्त शक्ति का सामना करना पडा, और सफलतापूर्वक उनका दमन करने के पश्चात्, उन्हें नियन्त्रित करने के लिए उसने पश्चिमी सीमा पर अनूपगढ दुर्ग का निर्माण करवाया।[8]

मुगल साम्राज्य मे स्थान

इसमे कोई सन्देह नही कि बीकानेर के शासको को मुगल मित्रता से प्राप्त उपाधियो की कीमत चुकानी पडी थी, लेकिन मुगलो से सन्धि व निरतर उनकी सेवा मे रहने के कारण जहा एक ओर आन्तरिक तोड फोड व बाह्य आक्रमणो की

---

१. चीरा राज्य की राजस्व प्रशासनिक इकाई का नाम था।—चीरा जसरासर रै लेखे री बही, वि० स० १७४८ / १६९१ ई०, न० २७ चीरा गुमाईसर रै लेखे री बही वि० स० १७४९ / १६९२ ई०, न० २६, बीकानेर बहियात, रा० रा० अ० बी०
२. परवाना बही, वि० स० १७४९ / १६९२ ई०, आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७-१९४, देशदर्पण, पृष्ठ ८७ ९२
३. देखिए पट्टेदारी क्षेत्र का मानचित्र
४ परवाना बही, वि० स० १७४९/ १६९२ ई०, पृष्ठ २२-२६, पट्टा बही, वि० स० १७५३/ १६९६ ई०, न० ७
५. दलपत विलास, पृष्ठ ४५-५६, टाड २, पृष्ठ ११३३
६. दयालदास री ख्यात (प्रकाशित) २, पृष्ठ १४२,
७ उपर्युक्त, पृष्ठ १९६
८. उपर्युक्त, पृष्ठ २१२ १३

दृष्टि से उनकी स्थिति सुदृढ़ हो गई वहा विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्र कार्यवाही करने का अपना अधिकार वे खो बैठे। वे अब प्रभुतासम्पन्न शासक नहीं रहे, बल्कि मुगल दरबार के एक अमीर बन गए, जो अपनी सुविधाओं, शक्ति, पदोन्नति, सम्मान आदि के लिए मुगल सम्राट् की ओर ताकने को विवश थे।[1] राज्य के वैदेशिक, बाह्य रक्षा व मुद्रा-सम्बन्धी अधिकार पूर्णतया मुगलों की केन्द्रीय सत्ता के नियन्त्रण में चले गए।[2] उन्होंने उत्तराधिकार के प्रश्न पर मुगलों की निर्वाचन शक्ति को स्वीकार कर लिया।[3] उन्हें बोध हो गया कि मुगल सम्राट् के प्रति पूर्ण राजभक्ति ही उनके राजा के पद पर बने रहने की स्थायी कड़ी है। समय-समय पर उनका सम्राट् के दरबार में उपस्थित होना आवश्यक हो गया। अपनी अनुपस्थिति में उन्हें अपने पुत्र या निकट नातेदार को भेजना पड़ता था,[4] जिसे सम्राट् से मिलने पर भेंट देनी पड़ती थी और जिसके लिए राज्य में पेशकसी वसूल की जाती थी।[5] औरंगजेब काल में जजिया कर भी उनसे उगाहा गया था।[6] उनकी वतन जागीर भी सम्राट् द्वारा दिये गये मनसब में वेतन का भाग थी।[7] मुगल सम्राट् कानून व व्यवस्था बनाये रखने के लिए शाही नियमों को इनके राज्य में क्रियान्वित करते थे और विद्रोहियों तथा अपराधियों को पकड़ने के आदेश जारी कर सकते थे।[8] इन आदेशों का पालन राज्य में स्वाभाविक रूप से किया जाता था।

इन कमियों व हानि के बाद भी यहाँ के शासकों को मुगल अधीनता से कई लाभ प्राप्त हुए थे। मुगलों की राजकीय सेवाएं उनकी शक्ति का स्रोत थी। नये

---

१. डा० अतहरअली—दी मुगल नोबिलिटी अण्डर औरंगजेब, पृ० ११, एशिया १९६६
२. दयालदास री ख्यात (प्र०) २, पृ० ६५, डा० आर० पी० त्रिपाठी—मुगल साम्राज्य का उत्थान व पतन (हिन्दी), पृष्ठ १७८, इलाहाबाद १९६६, डा० जी० एन० शर्मा, राजस्थान का इतिहास (पूर्व), पृष्ठ ४७५, डा० ए० आर० खान, पोजिशन आफ चीफ्स इन मुगल एम्पायर ड्यूरिंग दी रेन आफ अकबर, (अप्र०) शोध-प्रबन्ध, अलीगढ़, पृ० ३१३-१४
३. तुजुके जहांगीर (पूर्व), २१७-१८, सम्राट् औरंगजेब का अनूपसिंह को फरमान (पूर्व), नं० ६१
४. दलपत विलास, पृ० १५-७६, ८२, डा० ए० आर० खान (पूर्व), पृ० ३१३-१४
५ कामदारों व वकीलों रे रोजगारी री बही, वि० सं० १७५३ / १६९६ ई०, नं० २०६, बीकानेर बहियात
६ उपर्युक्त
७ राजा सूरतसिंह जी रे जागीर री विगत, पृष्ठ ६०-६१, महाराजा अनूपसिंह रे मुनसब नैं तनख री विगत, पृष्ठ ८८-९०, फुटकर वार्ता, २०६ / २, अ० सं० पु० बी०
८ सम्राट् अकबर का राय रायसिंह को फरमान, दि० ७ उर्दिबिहिश्त, ३७-१२ रजबउल मुरज्जब ९९०, ए० एच०/२५ अप्रैल, १५९२ ई०, नं० २, सम्राट् जहांगीर का राय सूरजसिंह को फरमान, दिनांक २ बहमन/८ जनवरी, १६१३ ई० नं० २३, रा० रा० अ० बी०

उत्तरदायित्वो क कारण उनकी सैनिक शक्ति म वृद्धि हुई, जिसके फलस्वरुप ही वे अपनी सत्ता को दृढता स स्थापित कर सके थे।[1] मुगल राठौड सन्धि के फलस्वरुप राठौड शासक अपन राज्य के आन्तरिक प्रशासन म पूण स्वतन्त्र था।[2] राज्य के न्यायिक व नागरिक प्रशासन मे उनकी शक्तिया अचुनौतीपूर्ण बनी रही।[3] मुगल सम्राट् से वैवाहिक सम्बन्ध व प्राप्त उच्च मनसब के कारण उनकी स्थिति मुगल दरबार मे अन्य मुगल अमीरा की तुलना मे ही नही, बल्कि उनके राज्य म भी ईर्ष्यालु व दृढ हो गयी।[4] उनके मामलो मे साधारणतया मुगल सूबेदार दखल नही दे सकते थ, क्योंकि उनका मुगल सम्राट् स सीधा सम्बन्ध था। सम्राट् अकबर राजपूत राज्यो को अधीनस्थ नही वरन् प्रतिष्ठित साझीदार मानकर उनके समर्थन व सहयोग को मुगल शासन को सघटित करन मे प्राप्त करने की आकाक्षा रखता था।[5] बीकानेर राज्य प्रत्येक शाही आदेश एवम कानूनो का क्षत्र भी नही था। बीकानेर शासको की राजस्व प्रशासन मे भी पूण स्वायत्तता थी।[6]

दूसरे, बीकानेर के राजाओ की मुगल दरबार मे सदैव सम्मानजनक स्थिति रही। किसी राजा का मनसब कभी भी डेढ हजारी से कम नही रहा। अधिकतम मनसब राजा रायसिंह का पाँचहजारी था।[7] वैसे भी मुगल दरबार म राजपूता की विभिन्न जातिया म सबसे अधिक मनसब और सख्या राठौडा के पास ही थी। सम्राट् अकबर के काल मे मनसब प्राप्ति ,मे कछवाहा अग्रणी रहे, परन्तु सम्राट जहागीर के शासन के दसवें वर्ष से राजपूत मनसबदारा म राठौडो की प्रमुखता स्थापित हो गयी। सन् १५९५ ई० म कछवाहो के पास कुल मनसब १२, ५५० का था, वहाँ राठौडो के पास कुल मनसब ५५०० ही था। जहागीर की मृत्यु के समय कछवाहो का कुल मनसब ९,५०० था, वहा राठौड़ो का मनसब १०,३०० था।[8]

---

१ डा० नूरुल हसन दी पोजिशन आफ दी जमीदार इन दी मुगल एम्पायर, शोधलेख इण्डियन इकोनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, भाग न० ४

२ कर्मचन्द्र (पूर्व), पृष्ठ ६५ ७२ डा० जी० एन० शर्मा, राजस्थान स्टडीज, पृ० २११

३ मोहता ख्यात, पृ० ३३ ३५

४ दलपत विलास पृ० २३

५ डा० जी० एन० शर्मा, राजस्थान स्टडीज, पृ० २०७ ११, डा० आर० पी० त्रिपाठी (पूव), पृ० १७८

६ सम्राट अकबर द्वारा साम्राज्य में करोडी व्यवस्था लागू करने पर जब करोडी बीकानेर आये तो उन्ह वापस भेज दिया गया। दलपत विलास पृ० ३२ ३३, विशेष अध्ययन के लिए देखिए पुस्तक का भू-राजस्व व्यवस्था अध्याय ।

७, दी हाउस आफ बीकानेर, पृ० १५ १६
देखिए सारणी न० १

८ आईने अकबरी (ब्लाकमैन), भाग १, तुजुके जहाँगीरी (बेवरीज व रोजर्स) भाग १-२,

सम्राट अकबर के काल म मुगल दरबार के राठौड मनसबदारो मे, बीकानेर के मनसबदारों की सर्वोच्चता थी। सन १५९५ ई० मे कुल राठौड मनसब ५,५०० में बीकानेर के राठौडों का ८५०० भाग था। सम्राट जहांगीर के शासन काल के प्रथम वर्ष म राठौडों के कुल ७००० मनसब में इनके पास ५,५०० मनसब था। राजा रायसिंह की सन् १६१२ ई० मृत्यु के पश्चात् मुगल-दरबार म बीकानेरी राठौडो की स्थिति, अन्य राठौडो की तुलना मे कमजोर पड गयी। राठौडो के कुल ६००० मनसब मे इनके पास २००० मनसब ही था। सम्राट जहांगीर की मृत्यु के वर्ष राठौडों के कुल मनसब १०,३०० मे बीकानेरी राठौडों के पास केवल ३००० हजार ही था, अर्थात् कुल राठौड मनसब का केवल २९ १ प्रतिशत था।[1] बीकानेर के मनसब मे इस गिरावट का कारण राजा रायसिंह के पश्चात् राव दलपत के स्वाभिमानी आचरण तथा मुगल शासको द्वारा बीकानेर की तुलना मे, मारवाड के राठौडो को प्रोत्साहन देना था। सम्राट जहांगीर के काल से मुगलो की राजपूताना नीति में भी परिवर्तन आया, क्योंकि उनके मारवाड के साथ सम्बन्ध सुधर चुके थे तथा शक्ति-सतुलन नीति के आधार पर अब मारवाड के विरुद्ध बीकानेर के राठौडों की सहायता की आवश्यकता नहीं रही थी। दूसरे, राजा सूरसिंह में अपने पिता की प्रतिभा का अभाव था। राव कर्ण दो हजारी मनसबदार था, परन्तु वह भी स्थिति मे सुधार नहीं कर पाया। औरगजेब के साथ उसके सम्बन्ध पूर्णतया बिगड गए थे। महाराजा अनूपसिंह के समय मारवाड के राठौड मुगल सत्ता के विरुद्ध थे, फिर भी बीकानेरी राठौडो को समर्थन नहीं मिला, क्योंकि औरगजेब राजपूतो की पदोन्नति पर विपरीत नीति पर चल रहा था।[2]

बीकानेर के शासको को प्राप्त मनसब के लिए, जो जागीरें प्रदान की गई, वे उनके पैतृक प्रदेश स कही अधिक विस्तृत व प्राकृतिक साधनो से युक्त थी। इनसे प्राप्त होने वाली आय साधारणतया उनके पैतृक राज्य की आय से अधिक ही रही। राजा सूरसिंह का सन् १६१८ ई० म १५०० जात व १२०० सवार

इकबालनामा ए जहांगीरी (बिबलियोथिका इण्डिका) खाफ्खा मुन्तखब उल लुबाब (बिबलियोथिका इण्डिका) मासिर-उल उमरा शाहनवाज खान (अनु० ब्रजरत्नदास), दयालदास ख्यात (अप्रकाशित) और वीर विनोद में राठौडों व कच्छवाहा मनसबदारो के दिये गये विवरण के आधार पर उपयुक्त अध्ययन किया गया है और अध्ययन के लिए देखिए कु० रफाकत अली खान—दी कछवाहा अण्डर अकबर एण्ड जहांगीर, पृ० २२१ ३०, दिल्ली, १९७६

१ उपर्युक्त

२ अबुल फजल मामूरी—तारीखे औरगजेब, पृ० १५६—दी मुगल नोबिलिटी अण्डर औरगजेब, डा० अतहर अली से उद्धृत, पृ० २४

सारणी नं० १

बीकानेर के राजाओं का मनसब

राजा का नाम	सन्	मनसब	संदर्भ[1]
१. कल्याणमल		२०००।	आईने० १ पृष्ठ ३५७
२. रायसिह		२०००।	फरमान न० ४ ६ १०, आईने० १ पृष्ठ ३५७, अक्बरनामा – ३ पृष्ठ ८३६, मासिर-१, पृष्ठ ३६०
	१५६५	४०००।	
	१६०६	५०००।५०००	
३ दलपतसिह	१६१२	१५००।५००	जहागीरनामा २८७ २६६, मासिर-१, ४५६ सूरजसिंघ री जागीर
	१६१२	२०००।१०००	
४. सूरसिह	१६१३	१५००।१०००	फरमान न० ४३, ६४, जहागीरनामा ३२०, पादशाहनामा-६, मासिर १–४५६; सूरजसिंघ री जागीर
	१६१३	१५००।१२००	
	१६१८	१५००।१२००	
	१६२६	३०००।२०००	
	१६२६	४०००।२५००	
	१६३१	४०००।३०००	
५. कर्णसिह	१६३१	२०००।१५००	फरमान न० ६१, मासिर-२ –२८७
	१६६६	३५००।२०००	
६ अनूपसिह	१६६७	२०००।१५००	फरमान न० ६१, अनूपसिघ रँ मुनसब री विगत, मा० आलमगीरी-१२४, मासिर २, २८६-६१
	१६६८	२०००।१८००	
	१६७४	२०००।२०००	
	१६७५	२५००।३००० २०० सवार पहले शर्त के थे।	
	१६८८	३५००।३५०० (५०० जात व सवार शर्ती)	
	१६६३	३५००।३५०० विना शर्ती	
	१६६५	३५००।४००० (१५०० दो अस्प-सिह अस्प)	
७ स्वरूपसिह अल्व व्यवस्था।	१७००	१५००।८००	मासिर–२; ६१

१ [illegible] न के लिए देखिये पुस्तक की सदर्भ ग्रन्थ-सूची।

का मनसब था, जिसके बदले तीन करोड़, छब्बीस लाख, बत्तीस हजार, आठ सौ दाम की जागीर प्रदान की गयी। इसमें बीकानेर दर-औ-बस्त की कुल आय केवल एक करोड़ उन्तालीस लाख दाम थी और बीकानेर परगने की आय एक करोड़ दाम थी।[1] सन् १६६७ ई० में, जब सम्राट औरंगजेब ने अनूपसिंह को बीकानेर का टीका दिया, उस वक्त उसे २००० जात व १५०० सवार का मनसब भी प्रदान किया गया था जिसके बदले उसका वेतन एक करोड़ सत्तावन लाख दाम निर्धारित हुआ था। उसमें उसे एक करोड़ उन्तालीस लाख पचास हजार दाम बीकानेर दर-औ-बस्त से प्राप्त होते थे। सत्रह लाख पचास हजार का पूनिया परगना, सरकार हिसार, सूबा दिल्ली का अलग से जागीर में दिया गया[2], लेकिन ज्यों-ज्यों उसके मनसब में वृद्धि होती चली गयी उसे बीकानेर जागीर के और आस-पास के क्षेत्र मिलने लगे। सन् १६६७ ई० में, जब उसका मनसब बढ़कर ३५०० जात व ४००० सवार (पन्द्रह सौ सवार दोह् अस्प सिह अस्प) हो गया तो बदले में उसे तीन करोड़ सत्तासी लाख दाम का वेतन, जागीर के रूप में प्राप्त हुआ। उसे दक्षिण में नियुक्ति के स्थान पर भी जागीरें प्रदान की गईं। इस प्रकार मनसब-वृद्धि के साथ उसकी आय के स्रोत भी विस्तृत हो गए। जो निःसन्देह वतन जागीर की आय से अधिक थे। आगे चलकर आदूणी का किला तो बीकानेर के शासकों, सरदारों व सैनिकों का दूसरा घर बन गया।[3]

मुगल सम्राट ने बीकानेर के शासकों को उनके मनसब के आधार पर निर्धारित वेतन के बदले, जो तनख्वाह जागीरें प्रदान की थीं, वे अपने स्वरूप में भिन्न-भिन्न थीं। उन्होंने बीकानेर के शासकों को जागीर देते समय उनके वतन जागीर के आनुवंशिक दावे के अतिरिक्त वतन जागीर के बाहर के क्षेत्रों में पैतृक अधिकारों, उनकी सत्ता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा प्रशासनिक व अन्य

---

१ राजा सूरजसिंघजी रै जागीर री विगत, पृ० ६० ६१, फुटकर बातां न० २०६/२ (पूर्व)
—राजा रायसिंह के काल में बीकानेर परगने की जमा पैंसठ लाख आंकी गई थी। महाराजा सूरसिंह के समय से यह एक करोड़ निर्धारित हुई थी। अकबर के समय के परगनों के समस्त आंकड़ों में यह परिवर्तन बाद के समय में आ गया था। बीकानेर परगनों की यह जमा औरंगजेब के काल तक स्थिर रही थी।
—अकबर का राजा रायसिंह को फरमान दि० ५ अर्दे बिहिश्त, ४१, अप्रेल १५९६ ई०, नं० ४, सम्राट औरंगजेब का अनूपसिंह को फरमान न० ६१ (पूर्व), परगना सरकार विगत—सिरकार, बीकानेर सूबा अजमेर न० २२७१ अ० पु० स० बी०

२ महाराजा अनूपसिंघ जी रै मनसब नै तलब री विगत, पृ० ८८-९०, फुटकर बातां (पूर्व) औरंगजेब के काल तक आते-आते मनसब के बदले मिलने वाले वेतन में 'माह वेतन मान' के कारण कमी आ गई थी।

३ महाराजा अनूपसिंघजी रै मनसब नै तलब री विगत, पृष्ठ ८८ ९०, फुटकर बातां (पूर्व), डा० अतहर अली (पूर्व), पृ० २५९, देखिये, जागीर सारणी

राजनैतिक व कूटनीतिक विचारो को अपने सम्मुख रखा था। परिणामस्वरूप मुगल दरबार के अमीरो के बीच बीकानेर शासको की विशेष सम्मानजनक स्थिति बन गयी थी। मुगल सम्राट ने इनकी क्षेत्रीय परम्पराओं का सम्मान करते हुए, जागीर-वितरण के समय जो सुविधाए प्रदान की गयी थी, उनसे राजपूताने मे बीकानेर के शासक प्रथम श्रेणी की शक्ति के रूप मे उभरकर सामने आये।

बीकानेर-शासको द्वारा मुगलो स प्राप्त जागीरो की, उनके स्वरूप को देखते हुए तीन श्रेणिया बनायी जा सकती हैं—

जागीरो की श्रेणिया

१. वतन जागीर या पैतृक राज्य।
२ सीमावर्ती क्षेत्रो की जागीर (ऐतिहासिक व पैतृक दावो का क्षेत्र)।
३ साधारण जागीर-क्षेत्र।

वतन जागीर

वतन जागीर मूलत तनख्वाह जागीर थी। इसकी अनुमानित आय मनसब के निर्धारित वेतन का एक भाग होती थी। वतन जागीर की आय को आधार बनाकर ही मनसब के वेतन की बाकी रकम को पूरा करने के लिए दूसरी जागीरें प्रदान की जाती थी। परन्तु, वतन जागीर व साधारण तनख्वाह जागीर मे आधारभूत अन्तर यह था कि वतन जागीर अन्य तनख्वाह जागीरो के समान स्थानान्तरित नही होती थी। वतन जागीर मे मुगल सम्राट द्वारा राव बीका के वशजो का इस क्षेत्र पर दावा माना गया था, जबकि अन्य जागीरो मे आनुवशिक अधिकारो को मान्यता नही दी गई थी। साधारण तनख्वाह जागीरें जहा पूर्णतया शाही नियमो से बधी हुई थी, वहा वतन जागीर का प्रशासन राज्य की परम्पराओ स भी चलता था। वतन जागीर के जमीदार' स्वायत्तशासी होते थे।[1]

बीकानेर वतन जागीर का निर्माण सूबा अजमेर के सरकार बीकानेर के परगना बीकमपुर बरसलपुर बीकानर और पोकल (पूगल) सरकार नागौर के परगना द्रोणपुर तथा सूबा दिल्ली क सरकार हिसार के परगने सीधमुख, भाड़ग, बेणीवाल के क्षत्र म मिलकर हुआ था। यही क्षेत्र बीकानेर दर ओ-बस्त कहा गया।[2]

---

१ राजा सूरजसिंघजी रै जागीर री विगत प० ९०-९१ फटकर बाता (पूव) डा० अतहर-अली, (पूव) पृ० ७८ ७९ डा० जी० एन० शर्मा—राजस्थान स्टडीज पृष्ठ २१०

२ आईने अकबरी भाग २ पृ० २७७ ७८ (पूव) महाराजा अनूपसिंघजी रै मुनसब नै तलब री विगत, पृष्ठ ८ ९०, फुटकर बाता (पूव) यह सही नही है कि सम्पूर्ण बीकानेर सरकार का क्षत्र बीकानेर राज्य था। डा० करणीसिंह (पूव) पृष्ठ ६१

इस प्रकार मुगलो ने राठौडो से सन्धि करने के बाद, बीकानेर राज्य के अधिकाश भाग पर उनके पैतृक अधिकारो को स्वीकार कर लिया था। राज्य के प्रत्येक नये शासक ने मुगल सम्राट से टीका लेने के पश्चात् अपनी अविभाजित वतन जागीर पर पैतृक अधिकारो का प्रयोग किया था। मुगल सम्राटो ने राठौड राजवश से उनकी वतन जागीर के एक बार निर्धारित होने के पश्चात्, किसी भाग को न तो छीना और न ही सीमित किया।[1] यहां यह उल्लेखनीय है कि दोनों राजवशों के बीच मनमुटाव व असन्तोष का प्रभाव भी वतन जागीर की सीमाओ पर नही पडा। बीकानेर के शासक, जैसे पहले लिखा जा चुका है, कभी भी डेढ-हजारी मनसबदार से कम नही रहे, जिसके बदले प्राप्त वेतन मे बीकानेर वतन की एक करोड दाम की आय, सदैव कम ही थी।[2] मुगल प्रशासन द्वारा पूरा वेतन चुकाने के लिए अन्य जागीरें देनी पडी।[3] अत प्रशासनिक कारणो से भी बीकानेर वतन की सीमाए कभी खण्डित नही हुई।

मुगल साम्राज्य मे वतन जागीर का अस्तित्व इस बात का द्योतक है कि निरकुश मुगल सम्राट, स्थानीय स्वायत्तता पर, प्रभावशाली केन्द्रीय नियत्रण की नीति पर चल रहे थे, तो दूसरी ओर बीकानेर का राजवश प्रशासन मे अपने परम्परागत अधिकारों के प्रति सचेत था। मुगल साम्राज्य मे चल रही इस प्रकार दो परस्पर विरोधी शैलियो के परिणामस्वरूप वतन जागीर के स्वरूप को लेकर मुगलों व राठौडो के बीच की उलझनें आती रहती थी पर इनका प्रभाव वतन-जागीर की स्थिति पर कभी बुरा नही पडा था।

सीमावर्ती जागीर

मुगल सम्राट मनसब के बदले प्राप्त वेतन को व्यवस्थित करने के लिए, वतन जागीर के साथ-साथ साधारण तनख्वाह जागीरें भी प्रदान करते थे। उन्होने ऐसा करते समय, बीकानेर राजवश की भावनाओ का सम्मान करते हुए,

---

१ देखिए, जागीर सारणी
—बीकानेर वतन का समस्त क्षेत्र प्रत्येक शासक को प्राप्त हुआ था। उसके किसी भी भाग पर मुगलों का प्रत्यक्ष शासन नहीं रहा था तथा न ही वह किसी अन्य जागीरदार की जागीर का भाग बना था।

२ सम्राट औरगजेब ने जब महाराजा अनूपसिंह को २००० जात, १५०० सवार का मनसब प्रदान किया था, तो उसका कुल वेतन एक करोड सत्तावन लाख निर्धारित हुआ था जिसमें एक करोड उन्तालीस लाख का बीकानेर-दरो-बस्त था। बाकी के लिए अन्य जागीरें प्रदान की गयी थीं।
—सम्राट औरगजेब का अनूपसिंह को फरमान न० ६१ (पूर्व), महाराजा अनूपसिंघजी रै मुनसब नै तलब री विगत, पृष्ठ ८५ ८८

३. वही

जागीर सारणी

मुगल सम्राट से बीकानेर शासकों को प्राप्त जागीर क्षेत्र व उसका वर्गीकरण[1]

शासक का नाम	वतन जागीर	सीमावर्ती क्षेत्र की जागीर	साधारण जागीर
१	२	३	४
१ कल्याणमल	बीकानेर राज्य	सिरसा	जोधपुर (३ वर्ष तक) सिरोही (कुछ समय के लिए) नागौर मारोट
२ रायसिंह	परगना बीकानेर बीकमपुर पूगल बरसलपुर दद्रवा (बीकानेर सरकार सूबा अजमेर) द्रोणपुर (सरकार नागौर सूबा अजमेर) सीधमुख भाडंग (सरकार हिसार सूबा दिल्ली बीकानेर दरा ब्रस्त	परगना भटनेर पूनिया हिसार, तोसोम वेणीवाल सिवराण, सिरसा (सरकार हिसार सूबा दिल्ली)	परगना फलोधी जोधपुर (सरकार जोधपुर सूबा अजमेर) मारोट (स मुलतान सूबा लाहौर) दीपालपुर लाखी (स० जालन्धर सूबा लाहौर) बहलोद दरीवाला वरवा अगरवा अतागढ (स० हिसार सूबा दिल्ली) कसूर करहार (सू० थट्टा), भटिण्डा तहरोह (स० सरहिन्द सू० दिल्ली)
३ दलपतसिंह		परगना भटनेर पूनिया सिरसा वेणीवाल सिवराण तोसोम (सरकार हिसार सूबा दिल्ली)	परगना फलोधी (सरकार जोधपुर सू० अजमेर) अगरवा (सरकार हिसार सूबा दिल्ली)

१ दलपत विलास प० २३ बीकानेर फरमान न० १० १३ १८ ६१ महाराजा सूरजसिंघजी री जागीर महाराजा अनूपसिंघजी रै मुनसब री तलब परगना रै जमा जोड री बही वि० स० १७२७/१६७० ई० वि० १७४७/१६९० ई० दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृ० ११२ १७, १४६ १५० ५६

१	२	३	४
४ सूरसिंह	,,	परगना भटनेर, वेणीवाल, सिवराण, तोसोम, सिरसा, हिसार (कुछ भाग) (स० हिसार सूबा दिल्ली)	परगना अगरवा (स० हिसार, सूबा दिल्ली), फलोधी (सरकार जोधपुर सूबा अजमेर), मारोट (सरकार मुलतान, सूबा लाहौर), भटिण्डा (सरकार सरहिन्द सूबा दिल्ली), पनावाड़ी (सूबा अहमद नगर) नागौर (स० नागौर, सूबा अजमेर)
५ कर्णसिंह	,,	परगना भटनेर, पूनिया, वेणीवाल, सिवराण, तोसोम, सिरसा (सरकार हिसार सूबा दिल्ली)	परगना अगरवा (सरकार हिसार, सूबा दिल्ली), नागौर [लेकर अमरसिंह राठोड़ जोधपुर] को दे दिया गया (सूबा अजमेर) दौलतावाद की किलेदारी
६ अनूपसिंह	,,	परगना भटनेर, पूनिया, वेणीवाल, सिरसा, तोसोम, सिवराण (स० हिसार सूबा दिल्ली)	परगना बांलसपुर, फतीयाबाद, भगवन्तगढ बूदोडेरा, अमरसरमन, ओगरवा, चरखी दादरी (स० हिसार सूबा दिल्ली) झुंझणू (स० नारनोल, सूबा आगरा), फलोधी (स० जोधपुर, सूबा अजमेर)
७ स्वरूपसिंह	,,	परगना पूनिया (स० हिसार, सूबा दिल्ली) छोटे भाई आनन्दसिंह को। वेणीवाल (स० हिसार, सूबा दिल्ली)	

उन्हें वे जागीरी क्षेत्र प्रदान किये जहां वे किसी न किसी रूप में अपने पैतृक अधिकारों का दावा करते थे। वे क्षेत्र कभी भी बीकानेर दर ओ-वस्त की सीमा मे स्वीकार नही किए गए थे। उनके ऐतिहासिक दावों को स्वीकार करने से मुगल साम्राज्य मे उनका महत्त्व साधारण मनसबदारो की पंक्ति मे अलग-सा हो गया था। इस तरह उनको प्राप्त हुए जागीरी क्षेत्र राज्य के उत्तरी व उत्तर-पूर्वी सीमा से जुड़े सरकार हिसार के परगने पूनिया, भटनेर व शिवराण इत्यादि मे स्थित थे। ये क्षेत्र राव बीका व रावत कांधल और उनके उत्तराधिकारियो ने जीते थे। लेकिन सन् १५२६ ई० से १५७० ई० के बीच राजनैतिक संकट के समय मे राज्य के हाथ से निकल गये थे।[1] मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद ये इलाके सरकार हिसार के परगने बना दिये गए[2] व इन्हें बीकानेर वतन जागीर मे सम्मिलित नही माना गया था, परन्तु जागीर के रूप मे ये इलाके साधारणतया बीकानेर-शासकों के पास ही रहे। ये सीमावर्ती जागीरें उनके पास मृत्यु-पर्यन्त रहती थी।[3] राजा के मरने के पश्चात् नये शासक को उसकी मनसब-वृद्धि के साथ प्राथमिकता के तौर पर उन्हें फिर प्राप्त हो जाती थी।[4] शासक के पास इस क्षेत्र के न आने पर मुगल सम्राट द्वारा राजपरिवार के किसी अन्य सदस्य को जागीर के रूप मे इसे प्रदान कर दिया जाता था।[5] इस प्रकार बीका राजवंश को लेकर प्राथमिकता देने से, इन जागीरो का अन्य मुगल जागीरो से स्वरूप भिन्न हो गया था। बीकानेर-शासकों ने इन जागीरो के क्षेत्र मे अपने स्वत्व अधिकार इस सीमा तक बढा दिये थे कि राज्य के पट्टायतो को उन्होंने इस क्षेत्र में वंशानुगत पट्टे भी प्रदान कर दिये थे।[6]

बीकानेर के शासकों को, इन क्षेत्रो को जागीर मे देने से मुगल प्रशासन को भी लाभ था। बीकानेर के शासक अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि स्थानीय लोगो से सम्पर्क व उनकी समस्याओ से परिचित होने के कारण एक कुशल प्रशासन देने की क्षमता रखते थे, जबकि कोई बाहरी मनसबदार अपरिचित होने के कारण अनेक कठिनाइयो मे उलझकर, शक्ति व धन दोनो को नष्ट

१ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृष्ठ ५८, ६४ ७०, ८३ ८४
२ आईने अकबरी भाग २ पृष्ठ २९३ ९४
३ राजा सूरजसिंघ रै जागीर री विगत, पृष्ठ ९० ९१ (पूव) महाराजा अनूपसिंघ रै मुनसब नै तलब री विगत, पृष्ठ ८८ ९० (पूव), देखिए जागीर सारणी
४ वही
५ सम्राट अकबर ने भटनेर का किला रामसिंह के चचेरे भाई बाघजी को दिया था। औरंगजेब ने महाराजा सुजाणसिंघ को बीकानेर की जागीर देते समय, उसके छोटे भाई आनन्दसिंघ को पूनिया परगना दिया था—परवाना बही, वि० स० १७४९/१६९२ ई० पृ० २२ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ८७
६ पट्टा बही, वि० स० १६९२/१६३५ ई० न० २, वि० स० १७५३/१६९६ ई०, न० ७

कर सकता था।

१८वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे ये क्षेत्र, व्यावहारिक रूप म, बीकानेर राज्य के स्थाई भाग बन गये। यद्यपि आमेर (जयपुर) राज्य की भाति बीकानेर राज्य का पूर्ण विकास मुगल जागीरो के हडपने से नही हुआ था, किन्तु उससे इसके आकार म वृद्धि अवश्य हुई थी।[1]

साधारण जागीर

बीकानेर-शासको के मनसब मे वृद्धि होने पर अथवा उनकी नियुक्ति के स्थान पर उन्हें साधारण तनख्वाह जागीरें प्रदान की जाती थी, जहा वे अन्य जागीरदारो की भाति कार्य करते थे व तीन चार वर्ष के पश्चात् उनका स्थानान्तर हो जाया करता था। इन जागीरो को देने व नई जागीर को लेते समय उनके वेतन के दावे पर कोई प्रभाव नही पडता था। अगर किसी जागीर मे इनका सेवाकाल अधिक हो जाता था, तो यह सम्राट की इच्छा या उस क्षेत्र की सैनिक स्थिति व उसके महत्त्व से ही सम्भव होता था। बीकानेर-शासको की उस क्षेत्र के लिए मुगल सम्राट से कोई विशेष माग नही होती थी।[2]

इस प्रकार मुगलों से प्राप्त अन्य जागीरो से न केवल राज्य की आय म ही वृद्धि हुई, अपितु मुगल सम्राट द्वारा इनके प्रति अपनाये गए रुख से उनका सम्मान व गौरव भी बढा। वतन जागीर व स्थायी जागीरो के कारण ये मुगल-दरबार के साधारण अमीर नहीं रहे, बल्कि एक विशिष्ट स्थिति मे आ गये। बदले में यहां के शासकों से भी मुगल साम्राज्य को सेवाए प्रदान करके अपनी निष्ठा दिखाई।

मुगल शक्ति के पतन-काल मे राज्य मे राजा की स्थिति व उसकी शक्तियो को बहुत हानि पहुची थी। एक दृढ केन्द्रीय सत्ता के सरक्षण के अभाव मे, राज्य की उपद्रवी शक्तिया फिर सिर उठाने लगीं और मुगल-शक्ति का अकुश मिट जाने से, राज्य बाह्य आक्रमण के आकर्षण का केन्द्र बन गया। अकेले मारवाड ने एक एक करके छ आक्रमण किये।[3] खतरो से निपटने के लिए राजा

---

१ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ २१२, २३, ३६, ४६, ८७, ३१८ २०, डा० करणीसिंह का यह मत है कि मुग़ल सम्राटों से प्राप्त जागीरों से बीकानेर का क्षेत्रीय विस्तार नहीं हुआ था।—डा० करणीसिंह पृष्ठ ११४ १२, आमेर की अवस्था लिए—डा० एस०० पी० गुप्ता—लेण्ड रेवेन्यू सिस्टम इन ईस्टर्न राजपूताना (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) अलीगढ़ अध्याय १

२. महाराजा अनूपसिंह रै मुनसब नै तलब री विगत, पृष्ठ ८८ ६० (पूर्व) डा० मनहर अली पृष्ठ ७८, देखिये, जागीर सारणी

३ दी हाउस ऑफ बीकानेर, पृ० ६८ ७०

को विवश होकर राज्य के शक्तिशाली सरदार के साथ समझौता करना पड़ा।[१] राज्य में पुन सामन्तवादी शक्तियां जोर पकड़ने लगी। शासकों की अयोग्यता ने सामन्तों को अपनी शक्ति दृढ़ करने का एक और अवसर प्रदान किया।[२] उन्होंने विद्रोह करके पट्टा-चाकरी सिद्धांत की खुली अवहेलना प्रारम्भ कर दी। सामन्त कुलीय-भाई चारे के सिद्धांत पर पुन शासक के साथ सम्बन्ध निर्धारित करने लगे।[३] मन्त्रियों व राजकर्मचारियों ने भी अवसर देखकर शक्ति का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया।[४] इससे शासक की लोकप्रियता को हानि पहुंची। उत्तराधिकार की जटिल समस्या व राजकुमारों के विद्रोही आचरण ने भी उसकी प्रतिष्ठा गिराने म कसर नहीं छोड़ी।[५] इस प्रकार शासक की स्थिति में अस्थिरता तथा दुर्बलता के लक्षण प्रकट होने लगे।

महाराजा गजसिंह (सन् १७४५-८७ ई०) एक योग्य शासक थे। उन्होंने अपने दीर्घशासनकाल म, शासक की शक्तियों को पुन गठित करने के भरसक प्रयत्न किये तथा राज्य म प्रशासकीय दृढ़ता लाने की चेष्टा की, परन्तु वे सभी प्रयास उनके जीवन की अन्तिम सांस के साथ समाप्त हो गए।[६] वस्तुत महाराजा गजसिंह एक लम्बे समय तक स्थिति को केवल नियन्त्रित ही कर सके थे शासन व राज्य के विरुद्ध पनपने वाली विनाशकारी शक्तियों को नष्ट करने में उन्हें सफलता नहीं मिली थी। परिणामस्वरूप उनके उत्तराधिकारियों को फिर उन्हीं समस्याओं से जूझना पड़ा।

महाराजा सूरतसिंह द्वारा राज्य पर बलात् अधिकार करने से विरोधियों को एक और अवसर मिल गया। महाराजा के घृणित कार्य के विरोध ने सामूहिक असन्तोष को जन्म दिया। राज्य के सामन्तों ने शासक की सत्ता को चुनौतियां देनी शुरू कर दी।[७] दूसरी ओर सूरतसिंह ने भी अपनी स्थिति को दृढ़ करने में शक्ति का पूर्ण प्रयोग किया। उसने विद्रोहियों का कठोरता से दमन किया।[८] लेकिन इससे मनोवांछित परिणाम नहीं निकले। निरंकुश नृप-

१ मोहता भीमसिंघ द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंघ के घेरे का वर्णन, पृ० १९-२५, दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ २५८, ६५, ७६, ३१५, २२

२ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सू महाराजा गजसिंघजी ताईं, पृष्ठ ५, ३८, मोहता भीमसिंघ द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंघ के घेरे का वर्णन, पृष्ठ ११, ४३, मोहता ख्यात, पृष्ठ ६१, ६५

३ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ २६५, ३१५-२२

४ मोहता ख्यात पृष्ठ ६१, ६५, मोहता भीमसिंघ द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंघ के घेरे का वर्णन, पृष्ठ ११, १५, १७

५ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ २६३, ३०६ १०

६ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघ सू महाराजा गजसिंघजी ताईं, पृ० ७० ७७

७. टॉड-२, पृष्ठ ११४०-४१

८. दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ ३१५-२२

तन्त्र व कुलीय-भाई-चारे के सिद्धान्त ने दोनों शक्तियों के बीच कोई समझौता नहीं होने दिया। अविश्वास, षड्यन्त्र व ईर्ष्या के वातावरण में कोई भी समझौता सम्भव नहीं था। अतः राज्य में अव्यवस्था व अराजकता की स्थिति ने जन्म ले लिया। सामन्तों ने अपने ठिकाणों को स्वतन्त्र घोषित करना प्रारम्भ कर दिया।[1] महाराजा सूरतसिंह के अडिग विश्वास व घोर परिश्रम के बाद भी असफलताएं बढ़ने लगीं।[2] विद्रोहियों ने बाहरी आक्रमणों को भी प्रोत्साहित किया।[3] अन्त में, निराश होकर महाराजा ने बीका-राजवंश को सुरक्षित रखने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सर्वोच्च सत्ता में शरण लेने का निश्चय किया।

राजा के सामान्य कार्य

हिन्दू शास्त्रों में राजधर्म को कर्तव्यों में सर्वोच्च व पवित्रतम माना है। बीकानेर के राजा भी पौराणिक आदर्श हिन्दू नरेश का पद प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे।[4] हिन्दू धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्रों में ही उन्होंने अपने आचरण का औचित्य ढूंढा तथा सम्पूर्ण प्रशासन को उन्हीं की मान्यताओं के अनुसार गठित करने का प्रयास किया।[5] पहले लिखा जा चुका है कि वे अपने राज्य को कुलदेवता "लक्ष्मीनारायण जी" और कुलदेवी "करणी जी" की कृपा का फल मानते थे। इन मान्यताओं के साथ, वे अन्य धार्मिक मतों व विश्वासों के प्रति पूर्ण सहिष्णुता बरतते थे। जाति व समुदाय के धार्मिक मामलों में उन्होंने कभी हस्तक्षेप नहीं किया। उनका कोष सभी धार्मिक संस्थानों के लिए खुला था। वे मुक्त रूप से, बिना किसी धार्मिक भेदभाव के, दान-पुण्य करते थे। मंदिरों के साथ साथ दरगाहों को भी नियमित रूप से आर्थिक सहायता भेजी जाती थी।[6] हिन्दू समाज की वर्ण व्यवस्था का उन्होंने पूर्ण आदर किया तथा अन्य

---

१. चूरू भादरा के ठाकुरों ने स्वतन्त्र आचरण करना प्रारम्भ कर दिया था।
—दयालदास (अप्र०) २. पृष्ठ २१८ २२, चूरू मण्डल का इतिहास, पृष्ठ २४४

२. वही।

३. अमीर खां पिण्डारी ने ठाकुरों के निमन्त्रण पर, राज्य पर आक्रमण किया था, परन्तु उसकी गतिविधियां चूरू व बीदावत सीमा-क्षेत्र से अधिक नहीं बढ़ी थीं।
—ओझा, प्रथम भाग, पृ० ३६६

४ कर्णावतंस, पृष्ठ ६-८

५ महादेव—रायसिंघ सुधासिन्धु, पृष्ठ ४, न० ४२८३, अ० स० पु० बी०, गीत गोविन्द टीका, पृष्ठ १२-१४ एवं, कर्णावतंस, पृष्ठ १५

६ निरखलान रै मेघ री बही वि० सं० १७००/१६४३ ई० नं० १८८—बीकानेर बहियात, समस्त गांवां री बही, वि० स० १७२७/१७४६, १६७०/१६६२ ई०, न० ७१

सामाजिक मान्यताओ मे अटूट विश्वास अभिव्यक्त किया ।[1]

उनके राजदरबार मे ब्राह्मणो व चारणो को उचित सम्मान दिया जाता था। राजा के लिए, 'गौ ब्राह्मण-प्रतिपालक' उपाधिया लगायी जाती थी। प्रत्येक राजा ने ब्राह्मणो व चारणो को अनुदान के रूप मे गाव व भूमि प्रदान किये थे।[2] राजा रायसिंह ने तो इन्हीं कार्यों से बहुत यश कमाया था।[3] महाराजा सूरतसिंह की भूमि व अन्य बहुमूल्य भेंट देने की प्रवृत्ति स ब्राह्मण बहुत लाभान्वित हुए।[4] महाराजा सूरतसिंह सदा ब्राह्मणो से घिरा रहता था। उसका यह विश्वास था कि ब्राह्मणो के आशीर्वाद से उसके पाप धुल जायेंगे।[5]

राजा समस्त राज्य-प्रशासन की मुख्य धुरी तथा समस्त सैनिक राजनैतिक, न्यायिक व प्रशासनिक शक्तियो का केन्द्रबिन्दु था। नि सन्देह मन्त्रियो की एक समिति उसकी सहायता व परामर्श के लिए बनी हुई थी पर तु अन्तिम निर्णय उस पर ही निर्भर था। प्रजा या उसके प्रतिनिधि, राज्य की युद्ध अथवा शान्तिकालीन नीतियो के निर्माण म प्रभावशाली भूमिका निभाने की स्थिति मे नही थे।[6]

कार्यकारिणी सम्बन्धी समस्त विषयो मे राजा की सर्वोच्च सत्ता थी। वह स्वय अपने मन्त्रियो, दूतो व राज्य के अन्य उच्चाधिकारियो की नियुक्ति करता था और उनके सहयोग से राज्य के प्रशासन को सँभालता था। वह व्यक्तिगत रूप से, मुत्सद्दियो, चिरायतो, हाकिमो व हवलदारो के कार्यों का निरीक्षण करता तथा उन्हे उचित निर्देश देता था। आर्थिक विषयो पर चिन्तन करके, जनता के प्रार्थना पत्रो को लेकर, सम्बन्धित अधिकारियो को सलाह देकर, वह राज्य की आय व्यय को सतुलित रखने का प्रयास करता था। गुप्तचर विभाग से उसका सीधा सम्पर्क था। अपराधियो को दण्डित करके वह राजाज्ञा का सम्मान बनाये रखता था।[7]

१ वही (पृष्ठ ४३ के अतिम सदर्भ अनुसार)
२ परवाना बही वि० स० १७४६/१६६२ ई०, पृ० २ ६
३ दयालदास ख्यात (प्रकाशित) २, पृ० १२६
४ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० २ १०, रामपुरिया रिकार्डस, रा० रा० अ० बी०
५ टॉड २, पृ० ११४३ ४४
६ कर्णावितस, पृ० १५ १७, दयालदास ख्यात (अप्रकाशित) भाग २, पृ० २६५ २७६
७ महाराजा अनूपसिंह रो आनन्द राम नाजर रै नाम परवानो, वि० स० १७४६/१६६२ ई०, न० १६७/१६ अ० स० पु० बी०, कामदारो व वकीलो के रोजगार की बही, वि० स० १७८३/१६६६ ई० न० २०६ श्री रावले लेख बही, वि० स० १७७५/१७१८ ई०, न० २१२ कागदो की बही वि० स० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृ० २६-२७ सनदी-पत्र, वि० स० १८३९/१७८२ ई०, न० ६, सनदी-पत्र, वि० स० १८६३, १८०४ ई० न० १४, सनदी-पत्र, हवाला पत्र।

मध्यकालीन भारत के अन्य शासकों की भांति, युद्ध-काल में अपनी सेनाओं का संचालन स्वयं करना, यहां के शासक अपना महत्त्वपूर्ण व गौरवशाली कर्त्तव्य समझते थे। लगभग सभी महत्त्वपूर्ण सैनिक अभियानों में राजा ने व्यक्तिगत रूप से भाग लिया था। प्रत्येक राजा वयस्क होने के पश्चात् मुगल-सेना के अन्तर्गत अथवा राज्यों के पारस्परिक युद्धों या विद्रोहियों का दमन करने के लिए सदा ही रत रहा था। इनमें से कुछ ने तो अपने प्राण भी शत्रु से लड़ते हुए ही त्यागे थे।[1] वह सभी सैनिक अधिकारियों की नियुक्ति का चयन करता था और उल्लेखनीय सामरिक सेवाओं के लिए अथवा बलिदान व त्याग के लिए पदवृद्धि व पट्टे देकर पुरस्कृत व अनुगृहीत करता था। वह अपने सहयोगियों से आक्रामक व प्रतिरक्षात्मक नीतियों पर विचार-विमर्श करता था; परन्तु अन्तिम निर्णय सदैव उसकी इच्छा या सम्मान पर ही निर्भर था।[2]

राजा राज्य का मुख्य न्यायाधीश भी था। दीवानी व फौजदारी मामलों के अन्तिम निर्णय उसी के हाथ में थे। सभी प्रकार के विवादों की सुनवाई उसके समक्ष ही हो सकती थी, जिनमें प्रचलित हिन्दू नियमों के आधार पर ही वह निर्णय देता था। निर्णय से पूर्व वह विषयों से सम्बन्धित जानकारी रखने-वाले पण्डितों, मन्त्रियों, यहां तक कि स्थानीय पंचों से भी सलाह लेता था। कई बार वह अपने न्यायिक अधिकार जाति-पंचों अथवा ग्रामीण पंचों के सुपुर्द भी कर देता था। पंचों के निर्णय भी समान रूप से बाध्यकारी थे। यहां उल्लेख-नीय है कि समस्त निर्णय राज्य के कुल-देवता के नाम पर ही किये जाते थे।[3]

राजा के क्षेत्राधिकार में जनानी ड्योढी व युवराज का स्थान

राज्य-प्रशासन अथवा नीति-निर्माण में जनानी ड्योढ़ी के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं; लेकिन कुछ रानियों ने शासन व नीति-निर्माण को अवश्य प्रभावित किया था। राजा रायसिंह की पत्नी गंगा का अपने पति व पुत्र, राजा सूरसिंह के शासनकाल में बड़ा मान था।[4] सम्राज्ञी नूरजहां

---

१ दयालदास ख्यात (प्रकाशित) भाग-२, पृ० २८, ४८, ६४ (अप्रकाशित), भाग २, पृ० २७६, दी हाउस ऑफ बीकानेर, पृ० ४५-४६

२ मोहता भीमसिंह द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंह के बीकानेर घेरे का वर्णन, पृ० १६-२२

३. कर्णविलास, पृ० ६, १८, ६६; कागदों की बहियां, वि० सं० १८११/१७५४ ई०, नं० १, वि० सं० १८११/१७५४ ई०, नं० ४, वि० सं० १८२४/१७६७ ई०, नं० १०, रोड़ के कागद

४. मोहता ख्यात, पृ० १३, मोहता भीमसिंह द्वारा जोधपुर महाराज अभयसिंह के घेरे का वर्णन, पृ० २०, बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सूं महाराजा गजसिंघजी तांई, पृ० १७

विवश किया था।[1] अत जनसख्या की कमी, तत्पश्चात् कर-वसूली की समस्या ने शासक को प्रजा के प्रति अत्याचारी होने से सदैव रोका। वित्तीय आवश्यकताए उसे प्रजा के साथ मिलकर चलने को विवश करती थी।[2]

इस प्रकार शासक परिस्थितियो से समझौता करके अपनी स्थिति सुरक्षित रख सकता था।

---

१ प्रत्येक अकाल व सूखे के वर्ष यहा के लोग पडोसी क्षेत्रों मे चले जाते थे। कागदो की बही, वि० स० १८५१ माघ सुदी ३, २३ जनवरी, १७७५ ई०, न० ६, वि० स० १८६६/१८०९ ई० न० १५, पृ० १२२-२६, वि० स० १८७२/१८१५ ई०, न० २१, पृ० ३० ४१

२ कागदों की बही—ज्येष्ठ सुदी ३, वि० स० १८५१/३१ मई, १७९४ ई०, न० ६। जी० एस० एल० देवड़ा—बीकानेर-निवासी और देशान्तर गमन प्रवृत्ति, राज० हिस्ट्री काग्रस, १९७६

तृतीय अध्याय

सामन्त-वर्ग एवं पट्टा-प्रणाली

सामन्त-प्रथा का उद्भव व विकास

बीकानेर राज्य मे सामन्त-व्यवस्था का उद्भव राजपूतो की कुलीय परम्परा मे हुआ। राज्य केवल शासक की ही सम्पत्ति नही था, अपितु मारवाड से आये हुए राठौडों की सामूहिक धरोहर थी। खालसा व ठकुराई क्षेत्र दोनो साथ विकसित हुए थे। राज्य के सामन्त शासक के सहयोगी के रूप मे राज्य के निर्माण-कार्य मे भागीदार थे। राठौड सेनापतियो की दृष्टि मे राजा राठौड-कुल का प्रधान था। वे स्वयं को राव बीका के अधीनस्थ नहीं, बल्कि सहयोगी के रूप मे मानते थे।[1] राव बीका के अधीनस्थ सामन्तों मे, स्थानीय शासक जाति के मुखिया—भाटी, साखला, वाघोड, चौहान इत्यादि आते थे।[2] यह सामन्त-व्यवस्था बीका के वशजो मे राव कल्याणमल तक चलती रही। राव लूणकरण व उसके पुत्र राव जैतसी ने इस स्थिति मे परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने राठौडो की कुलीय परम्परा को अधीनस्थ सामन्तवादी ढाचे मे ढालने के प्रयत्न किये, लेकिन सफलता हाथ नही लगी।[3]

राज्य के कुल क्षेत्र का लगभग ८० प्रतिशत से अधिक भाग विभिन्न कुल-मुखिया व अधीनस्थ सामन्तो के अधिकार मे था।[4] राज्य की अधिक उपजाऊ भूमि पर भी इन्ही का स्वामित्व था। इन उपर्युक्त दो तथ्यो ने आनेवाले वर्षों मे, शासक-सामन्त सम्बन्धो पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला था। शासक की महत्त्वाकांक्षाओ तथा राज्य के बढते हुए उत्तरदायित्वो के कारण जब शासको

---

१. बीकानेर र धणीयां रो याद नै बीजी फुटकर वातां, पृ० १०-१२; नैणसी री ख्यात, भाग २, (पूर्व) पृ० ३८, दयालदास ख्यात, (प्र०) २, पृ० ७-९

२ दयालदास ख्यात, (प्रकाशित) भाग २, पृ० ७-९

३ राठौडा री वशावली नै पीढ़िया नै फुटकर वातां (पूर्व) पृ० ५९-६१; दयालदास ख्यात, (प्रकाशित), भाग २, पृ० ३५-३६

४. महाराजा अनूपसिंह के काल में जाकर भी जहा सामन्तों के गावों की सख्या ११८८ थी, वहा खालसा गावो की सख्या केवल २९५ थी।
—पट्टा बही, वि० स० १७२५/१६६८ ई०, न० ४, ५ रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर, बही खालसा रे गावा री वि० स० १७२५/१६६८ ई०, न० ९१, बीकानेर बहियात

को लगभग भूमि को विस्तृत करने व उपजाऊ क्षेत्रों पर अधिकार करने के लिए विवश होना पड़ा तो उनके बीच एक स्थायी तनाव जन्म लेने लगा।[1] शासक व सामन्तों के बीच सम्बन्धों का क्या रूप हो, यह भी दोनों शक्तियों के मध्य तनाव का कारण था। यदि सामन्त राज्य में राठौड़-कुलीय व्यवस्था को बनाये रखने के पक्ष में थे तो शासक अपनी शक्तियों व प्रतिष्ठा को बढ़ाने के इच्छुक थे। वे शासकीय नेतृत्व के अधीन सामन्त-व्यवस्था को गठित करना चाहते थे।[2]

प्रारम्भ में, राठौड़-कुल के विभिन्न मुखिया, जो अपनी-अपनी खाप के 'पाटवी' थे,[3] अपने अधिकृत क्षेत्र में एक स्वतन्त्र शासक की तरह ही आचरण करते थे। वे केवल अपने कुलपति को राज्य व कुल का प्रथम व्यक्ति मानकर आवश्यकता पड़ने पर उसे सैनिक सहयोग देकर अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण हुआ समझते थे।[4] वे राव, रावत जैसी महत्त्वपूर्ण पदवियां धारण करते थे।[5] साधारणतया वे 'ठाकुर' कहलाते थे व उनका क्षेत्र 'ठकुराई-क्षेत्र' कहलाता था।[6] अपनी खाप के वे 'पाटवी' होते थे तथा वे अपने खाप के सदस्यों को जीवन निर्वाह के लिए 'ठकुराई क्षेत्र' में गांव प्रदान कर सकते थे। वे अपने अधिकृत क्षेत्र का बटवारा भी कर सकते थे एवं उनमें मनचाहा प्रशासनिक परिवर्तन भी ला सकते थे।[7] उनके उप-सामन्त, जो 'छुट-भाइयों' के नाम से

---

१ महाराजा जोरावरसिंह, गजसिंह व सूरतसिंह की नीति इस ओर विशेष थी। दयालदास ख्यात, (प्र०) २ पृ० २२६-२३०, २३१-३५, ३६३-६४

२ बीदावतों व बीदावतों ने महाराजा सूरतसिंह को इसी प्रश्न पर चुनौती दी थी—दयालदास ख्यात (प्र०), भाग २ पृ० ३६३-६७

३ मुखिया, जो साधारणतया खाप की प्रथम पंक्ति में सर्वाधिक होते थे। खांप का अर्थ यहां एक जाति के परिवार से है जो बाद में उपजाति का स्वरूप धारण कर लेता है।

४, बीकानेर रैं धणीया री याद नै बीजी फुटकर वार्ता पृ० ७-१०, बीकानेर रैं राठौड़ा री ख्यात सोहैजी सूं—पृ० १२३ २५, न० १९२/१४, दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृ० ७-१०, ३५-३८, ४२-४३

५ राठौड़ा री वंशावली नै पीढ़ियां नै फुटकर बातां न २३३/६ (पूर्व)

६ राज्य के सामन्तों को प्रारम्भ में 'ठाकुर' कहा जाता था। दलपत विलास व बाद की ख्यातों में इसी पदवी का प्रयोग किया गया है। महाराजा कर्णसिंह के समय की पट्टा बही व बाद की पट्टा बही व परवाना बहियों में सामन्तों को पट्टायत कहा गया है। —दलपत विलास पृ० १९ २७, बीकानेर रैं पट्टा रैं गावां री विगत राजा करणसिंघ जी रैं समै री, वि० स० १७१४/१६५७ ई०, पट्टा बही, वि० स० १७२५/१६६८ ई० न० ४ ५, परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई०, रामपुरिया रिकार्ड्स बीकानेर रा० रा० अ० बी, दयालदास ख्यात, (प्र०) २ पृ० ३८

७ राठौड़ा री वंशावली नै पीढ़िया नै फुटकर वार्ता पृ० ५८ ६३ न० २३३ ६ आर्या ख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७-८८

जाने जाते थे, अपनी 'खाप' के 'पाटवी' के प्रति निष्ठावान होते थ। 'ठिकाणे-
दार' की जमीयत[1] भी इन्हीं 'छुट भाइयो' की टुकडियो से बनती थी। 'खाप-
पाटवी' का राजा के साथ सघर्ष होने की अवस्था मे उप-सामन्त अपने 'पाटवी'
को समर्थन देते थे।[2] ये छुटभाई भी अपनी उप-इकाइयो का प्रशासन स्वतन्त्रता-
पूर्वक चलाते थे।[3] एक खाप के अगर दो-तीन स्वतन्त्र ठिकाणे' भी स्थापित
हो जाते अथवा खाप के 'पाटवी' का उन पर कोई नियन्त्रण भी न रहता, तो
भी वे अपनी खाप के 'पाटवी' को ही सम्मान देते थे। 'पाटवी' का ठिकाणा
ही खाप का मुख्य 'ठिकाणा' माना जाता था।[4] इस प्रकार उस समय राज्य
एक शिथिल सघ-व्यवस्था के रूप मे था, जो अनेक स्वतन्त्र आन्तरिक प्रशासन
इकाइयो म बटा हुआ था।

रावत काधल, राव बीदा मडला रूपा, नाथा राज्य के प्रथम ठिकाणेदार
थे। ये अपनी-अपनी खाप के जन्मदाता भी थे।[5] राव बीका के उत्तराधि-
कारियो ने भी अपने भाइयो व परिवार के अन्य सदस्यो के लिए स्वतन्त्र
'ठिकाणे' बाधे थे। उनके 'ठिकाणे भी अपने स्वरूप मे पुराने 'ठिकाणो' की
भांति ही थे।[6] उनकी भी अपनी अलग खापें चल पडी थी। इस प्रकार
प्रारम्भ से ही राज्य का सामन्त-वर्ग (दरबार) मुख्य रूप से तीन वर्गों मे बटा
हुआ था—प्रथम, राव बीका के वशज, द्वितीय, बीका के भाई व चाचा के
वशज, तथा तृतीय, स्थानीय जातियो के ठिकाणेदार व मुखिया थे।

शनै-शनै राज्य प्रशासन मे केन्द्रीकरण की शक्तियां दृढ होने लगी।
राजा रायसिंह ने अपने सामन्तो को सहयोगी समझने के स्थान पर अधीनस्थ
माना। पट्टा-प्रणाली प्रारम्भ करके सामन्तो के अधीनस्थ क्षेत्र का राज्य-सेवा मे
निश्चित दायित्वों के साथ सम्बन्ध जोडकर, सम्पूर्ण सामन्ती व्यवस्था को एक

---

१ बिरादरी की सेना
२ राठोडा री वशावली नै पीढिया नै फुटकर वाता, पृ० ५६-६३, न० २३३/६, मार्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७ ८८
३ बीकानेर रै पट्टे रै गावां री विगत, वि० स० १७१४/१६५७ ई०, देशदर्पण, पृ० ६४ से ६७
४. राठोडा री वशावली नै पीढ़ियां नै फुटकर वाता, पृ० ५६-६३, न० २३३/६
४ बीकानेर रै पट्टे रै गावा री विगत, वि० स० १७१४/१६५७ ई०, देशदर्पण पृ० ६४ से ६७
५ बीकानेर रै राठोड राजावां री नै बीजा लोकां री पीढियां, २२६/२, अ० स० पु० बी०, दयालदास ख्यात, (प्र०) २, पृ० ३ ६
६ राठोड़ां री पट्टावली मासप'ल सू बीकानेर रै सूरजसिंघजी ताई, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ३५-३७, ६७-६६, ८४ ८५

नया स्वरूप प्रदान कर दिया।[1] अब शासक प्रजा व सामन्त दोनो का अधिपति बन गया। अपनी-अपनी नीतियो का विरोध करनेवाले सभी बडे सामन्तों की शक्ति का उसने कठोरता से दमन किया तथा उन्हे निर्धारित शर्तों पर राज्य की सेवा करने के लिए बाध्य किया।[2] प्रत्येक सामन्त को शासक की कृपा पर आश्रित किया गया। दरबार मे बैठने के लिए उन्हे एक निश्चित स्थान प्रदान किया गया एव उन्हे अलग-अलग श्रेणियो के सम्मानजनक ढाचे ढालकर उनकी दरबारी स्थिति स्पष्ट की गई।[3] राजा रायसिंह के उत्तराधिकारी भी सदैव इन्ही नीतियो का सक्रिय पालन करते रहे, जिससे सामन्त अपना स्वतन्त्र वैभव खो बैठे और राज्य के चाकर बन गये। यहा यह उल्लेखनीय है कि इन परिवर्तनो के पश्चात् भी बीकानेर-दरबार अन्य राजपूत राज्यो के दरबारो की भाति अपनी कुल परम्पराओ पर ही गठित रहा। मुगल दरबार की भाति पद व दायित्व से जुडकर सामन्त की स्थिति राजपूत-दरबार मे बैठने की नही बनी। राजपूत-दरबार मे पद के आधार पर श्रेणिया नहीं बनी थी। विभिन्न राजपूत खापो की जो स्थिति राजपूत-समाज व राज्य मे थी तथा जिन्होने अमूल्य सेवाए सिंहासन को प्रदान करके स्वय के कुल को गौरवान्वित किया था, उसी का प्रतिरूप ही दरबार मे था। सामन्त अपने-अपने कुल की स्थिति-अनुसार श्रेणिया बनाकर दरबार मे बैठते थे। अन्य जातियो के प्रवेश के बाद भी मूलत दरबार इन्ही की जाति का रहा। केवल शासक की शक्तिया बढ जाने से उसकी स्थिति मे अन्तर आया था। मूल ढाचे मे परिवर्तन न होने के कारण ही सामन्त १८वी शताब्दी मे शासक की शक्तियो को चुनौती दे सके।

राज्य के मुख्य सामन्तो मे, काधल व बीदा के वशज थे, जो अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिये शासक की नई स्थिति को गम्भीर चुनौती दे सकते थे। राजा रायसिंह व उसके उत्तराधिकारियो ने उन्हे व अन्य प्रभावशाली सामन्तो को नियन्त्रित करने के लिए भिन्न-भिन्न नीति अपनायी। बीदावतो की शक्ति को तोडने के लिए उनकी क्षेत्रीय इकाइयों को उनके छुट-भाइयो मे बाट दिया और उनमे कई स्वतन्त्र 'ठिकाणो' को स्थापित किया।[4] हालाकि 'पाटवी टाकुर' का सम्मान बना रहा, लकिन छुटभाई अपनी स्थिति व सम्मान के लिए राजा

---

१ पट्टा वही, वि० स० १६८२/१६२५ ई० न० ३३/१ —रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर, बीकानेर रै पट्टा रै गावा री विगत

२ दलपत विलास पृ० ७०-७१, दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृ० ३८-४।

३. बीकानेर रै गावा रै पट्टा री विगत (पूर्व), वही दरबार री भैय्या नथमल रै समै री (पूव) १८५७/१८०० ई०

४ देखिये, बीदावत पट्टो की सूची—आर्याख्यान कल्पद्रुम

की कृपा पर आश्रित हो गये।[1] कांधलोतो के तीन-चार शक्तिशाली 'ठिकाणे' स्थापित हो चुके थे और उनका राज्य मे काफी प्रभाव था। उन्हे नियंत्रित करने के लिए एक दूसरा रास्ता अपनाया। कांधलोत के 'ठिकाणो' के पास बीका के वशजो को 'ठिकाणे' दिये गए, और इस प्रकार कांधलोतो के क्षेत्र मे शक्ति-सतुलन स्थापित किया गया।[2] इसके अलावा शासको ने जहा तक सम्भव हुआ, छुट-भाइयो को स्वतंत्र ठिकाणे' देकर, पुराने 'ठिकाणो' की एक-रूपता को समाप्त करने का प्रयत्न किया। जहा प्रारम्भ मे बीका और कांधलोतो के १-१ ठिकाणे थे, वे बढकर ३ ३ हुए[3] और फिर शासको की मुगल-अधीनता के पश्चात् १२ व १३ की सख्या मे स्वतंत्र 'ठिकाणो' के रूप मे बट गए।[4] शासकों ने बीका-ठिकाणो को भी अधिक शक्तिशाली नहीं होने दिया। वे छुट-भाइयों को जागीर देकर बीका ठिकाणो की सख्या बढाते रहे। सन् १८१८ ई० तक बीका राठौडो की विभिन्न शाखो के २६ ठिकाणे स्थापित हो चुके थे।[5] प्राय प्रत्येक शासक ने राज्य मे नये 'ठिकाणे' बाधे थे, लेकिन इस दिशा में राजा रायसिंह, सूरसिंह, महाराजा गजसिंह तथा सूरतसिंह अधिक सक्रिय रहे। अन्तिम दो शासको ने तो १६-१६ नये ठिकाणे बांधे थे।[6] इस सम्बन्ध मे ध्यान देने योग्य बात यह है कि नये 'ठिकाणो' की स्थापना से 'ठकुराई' क्षेत्र के गावो की सख्या मे कोई विशेष वृद्धि नही हुई थी, जबकि १८वी शताब्दी म राज्य की सीमाओं का विस्तार भी हुआ था। सन १६२५ ई० मे जहां पुराने सामन्तो (आसामीदार चाकर)[7] के कुल पट्टे के गावो की सख्या ११५४ थी वह १८१८ ई० तक केवल १२२६ तक पहुच पाई जबकि राज्य के कुल पट्टे के गावो की सख्या १२४२ से १६०८ तक पहुच गई थी। इन वर्षों मे राज्य के कुल पट्टे के गावा की सख्या म ४० ८०% की तुलना मे पुराने सामन्तो के गावा मे ६ २३% ही वृद्धि हुई थी। सन् १६५७ ई० मे इनके ६६६ गावों की तुलना मे यह अवश्य वृद्धि मानी जा सकती है, परन्तु शासक की साम ता के प्रति चौकस रहने की नीति को देखते हुए, यह घट-बढ कोई

१ परवाना बही वि० स० १७४६/१६९२ ई० पृ० ४४ ४८ न० १, रामपुरिया रिकार्ड्स
२ पट्टेदारो का मानचित्र
३ राठौडा री वशावली नैं पीढ़ियां नैं फुटकर बातां पृ० ६०
४ पट्टा बही वि० स० १६८२/१६२५ ई० न० १, बीकानेर रै पट्टे रै गांवा री विगत, पट्टा बही वि० स० १७२५/१६६८ ई०, न० ५, पट्टा बही, वि० स० १७५३/१६९६ ई० न० ७, देशदर्पण पृ० ८४ १४६, आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७ २०६, देखिये सूची चार्ट न० १
५ वही
६ वही, बांधा का तात्पर्य स्थापित करने से है।
७ ऐसे पट्टायत जिनके पट्टे वशानुगत व स्थायी थे।

पट्टा गांवों की संख्या[1]

वर्ष	आसामीदार चाकर पट्टो की सख्या	आसामियो की सख्या	प्रति पट्टायत औसत गाव (लगभग)	अन्य पट्टा गावो की सख्या	पट्टे के गावो की कुल सख्या
१६२५ ई०	११५४	—	—	८८	१२४२
१६५७ ई०	९६६	३१९	३	१९०	११५६
१६६८ ई०	१०७०	४०३	६	१०४	११७४
१८१८ ई०	१२२६	४३०	२ ८५	३८२	१६०८

विशेष महत्त्व की नही थी। आखिर, १६५७ ई० मे इनके गावो की सख्या, १६२५ ई० की ११५४ से घटकर ९६६ तक पहुची थी। फिर, राज्य के कुल पट्टे के गावो मे निरन्तर स्थिति गिरने से पुराने सामन्तो की स्थिति को भारी धक्का पहुचा था। १६२५ ई० मे सामन्तो के पट्टा की स्थिति, राज्य के कुल पट्टे के गावो मे ९२.९१% थी, वह क्रमश गिरते हुए १८१८ ई० मे ७६ २४% रह गई। इनके प्रति 'पट्टायत' औसत गाव की सख्या १६५७ ई० मे ३ गाव से घटकर १८१८ ई० मे २ ८५ हो गई। इस प्रकार वस्तुत पट्टा-क्षेत्र के गावों की सख्या बढने से पुराने व स्थायी सामन्तो को लाभ नही पहुचा था, बल्कि उनकी स्थिति मे गिरावट आई थी। नये विजित क्षेत्रो का लाभ भी इस कारण प्राप्त नही हुआ, क्योंकि शासको की नीति इन क्षेत्रों को

---

१ राज्य मे पट्टायतो व उनके गावो की स्थिति व सख्या के बारे में जानकारी देने हेतु, पट्टा बहियो मे सामग्री प्रचुर मात्रा में है। ये बहिया राजा सूरसिंह (सम्राट जहागीर) के काल से प्रारम्भ होकर १९वी शताब्दी तक चलती रही हैं। परन्तु, इनमें से बहुत-सी बहियो की सूचना पूर्ण नही है। इस कारण मैंने पट्टेदारो की स्थिति व उनके गावो की सख्या के अध्ययन के लिये चार बहिया को, जो विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं, को आधार बनाया है। प्रथम बही, राजा सूरसिह के काल मे, सन् १६२५ ई० की है—पट्टा बही वि० स० १६८२/१६२५, न० १, रामपुरिया रिकाड्र्स, बीकानेर। द्वितीय, बही राजा कर्णसिह के काल मे, सन् १६५७ ई० की है, —बीकानेर रै पट्टा रै गावा रो विगत राजा कर्णसिहजी रै समै री, वि० स० १७१४ १६५७ ई०, न० २२६/२, अनूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर। तृतीय बही फिर रामपुरिया रिकाड्र्स, बीकानेर की पट्टा बही, वि० स० १७२५/१६६८ ई०, न० ५ की, महाराजा अनूपसिहजी के काल की चुनी है। चतुर्थ बही भैंय्या-सग्रह (निजी सग्रह), बीकानेर की है जो महाराजा सूरतसिह के काल में वि० स० १८७५/१८१८ ई० का विवरण देती है।

"इस अध्याय मे पट्टायतो की जो सूचिया बनाई गई हैं उनसे उपर्युक्त नामांकित बहियों अर्थात् सन् १६२५, १६५७, १६६९ व १८१८ ई० की बहियो से आकडे लिये गये हैं। आगे के पृष्ठो मे इन वर्षों का उल्लेख इन्हीं बहियो के सदर्भ मे किया जायेगा। अलग से पाद-टिप्पणी नहीं दी गई है।

खालसा मे रखने की थी ।[१]

इस काल मे राज्य के पुराने सामन्तों के पट्टो के स्थान पर नये अस्थायी 'चाकरी' पट्टो 'परसगी'[२], 'चौंडड'[३], 'कामदार', 'हुजूरी', 'राजलोक'[४] तथा 'सामण'[५] के गावो की सख्या बढ रही थी । सन् १६२५ ई० मे जहा उनकी सख्या मात्र ८८ थी, वह १६५७ ई० मे बढकर १६० हो गई तथा थोडे-बहुत परिवर्तनो के साथ वह १८१८ ई० मे वह ३८२ गावों की सख्या तक पहुच गई । १६२५ ई० मे जहा इन पट्टे के गावो की स्थिति राज्य के कुल पट्टे के गावो मे ६ ०८% थी, वह १८१८ ई० मे २३ ७५% हो गई । १६२५ ई० के आधार पर १८१८ ई० तक ३३४ ०९% की वृद्धि हुई जो कि अपने आपमे महत्त्वपूर्ण थी, तथा शासको के राज्य के सामन्त-वर्ग के प्रति अपने परिवर्तित दृष्टिकोण को हर कोण से स्पष्ट करती है । शासको का इनकी वृद्धि के प्रति इतना उत्साह था कि खालसा गावो की कीमत पर इन्हे प्रसन्न किया गया था ।[६]

इस प्रकार एक ओर सामन्तो की शक्ति नियन्त्रित करने की नीति अपनाई गई तो दूसरी ओर शासको के द्वारा खालसा-भूमि को विस्तृत करने के प्रयत्न किये गये । पहले खालसा-भूमि राजधानी के आस-पास के क्षेत्र तक ही सीमित थी, पर धीरे-धीरे दूरस्थ क्षेत्रो को भी खालसा मे परिगणित किया जाने लगा ।[७] शासकों ने उत्तर-पूर्वी क्षेत्र की 'सूई'[८] जमीन को खालसा मे मिलाने मे विशेष रुचि दिखाई, ताकि राज्य की आय के साधन बढाये जा सकें । वह कांधलोतो का प्रभाव-क्षेत्र था । वहा शासकों ने बीका राठोडो के भी 'ठिकाणे' बांधे । परिणामस्वरूप एक ओर शासक व कांधलोतो के बीच तथा दूसरी ओर कांधलोतों व बीका खापो के 'ठिकाणेदारों' के बीच तनाव शुरू हो गया ।[९]

---

१ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३२३-२५, ३७०

२ ऐसे राजपूत पट्टायत, जिनसे शादी-ब्याह के सम्बन्ध तय किये जाते थे ।

३. निजी सैनिक

४ राजपरिवार के सदस्यो के पट्टे

५ पुण्यार्थ भूमि (धर्मदानित)

६ खालसा गावों की सख्या, १६६८ ई० में २५० थी, जो १८०० ई० मे इस नीति के कारण घटकर १५० के लगभग रह गई—बही खालसा रै गावा री, वि० स० १७२५/१६६८ ई०, न० ९९; खालसा रै गांवा री बही, वि० स० १८५७/१८०१ ई०, बस्ता न० १ बीकानेर रिकार्ड, रा० रा० अ० बी०

७ पट्टा बही—१६२५, १६५७, १६६८, १८१८ ई० (पूर्व)

८ सम भूमि

९. भादरा के कांधलोत व भूकरका के बीकावतो के बीच सदैव वैमनस्य बना रहा । वहा के शासको की भादरा के प्रति नीति भी इसी स्वार्थ से प्रेरित थी ।
—बीकानेर री ख्यात महाराज सुजाणसिंघजी सू महाराज गजसिंघजी ताई, पृ० ५-६; दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० २६३, ३३३-३५

सामन्तो की शक्तियो पर और अकुश लगाने तथा शासक की शक्ति बढाने के लिये 'ठकुराई'-क्षेत्र मे शासक द्वारा वसूल किये गये करो की सख्या भी बढने लगी। पहले वे केवल 'पेशकशी' व 'खेड खरच' दिया करते थे।[1] अब उन्हे नियमित रूप से कई नये करो का भार सहन करना पडा। धुआं भाछ'[2], 'हवूब', रूखवाली भाछ'[3] व 'घोडा रेख'[4] आदि कई कर उन्हे प्रतिवर्ष चुकाने पडे।[5] उनसे 'जगात'[6] आदि के अधिकार भी छीन लिये गये[7] तथा उनके भूमि व न्यायिक अधिकार भी सीमित कर दिये गये।[8] यहा तक कि प्रत्येक नया ठाकुर शासक से पट्टा प्राप्त करने के बाद ही अपने अधिकारो को सुरक्षित रख पाता था।

सामन्त-वर्ग की रचना

प्रारम्भ मे राज्य का सामन्त-वर्ग मुख्यत तीन श्रेणियो मे विभाजित था। प्रथम, वे कुलीय सामन्त तथा उनके वशज, जो राव बीका के साथ मारवाड से आये थे। द्वितीय, वे सामन्त, जो राव बीका के वशज थे तथा तृतीय, स्थानीय शासक जाति के मुखिया, जो अधीनस्थ सामन्त बन गये थे। इनके अलावा परदेशी सामन्त भी थे, जिन्हे शासक द्वारा समय-समय पर राज्य-सेवा मे सम्मिलित किया गया था। इन सामन्तो म सबसे अधिक सख्या स्वाभाविक तौर पर राठौडो की थी, जो अपनी अनेक शाखाओ (खापो) मे विभक्त थे। परदेशी सामन्तो मे राजपूतो की अन्य जातिया व उनकी खापें थी। राजपूतो के अलावा अन्य सैनिक जातियो को सामन्त-वर्ग मे सम्मिलित करने मे बहुत कम उत्साह दिखाया गया था।[9]

---

१ दलपत विलास, पृ० १४ १५

२ गृहकर

३ रक्षाकर

४ सैनिक दायित्व कर

५ चीरा जसरासर बीदाहद गुसाईसर रै लेख री बही वि० स० १७६६/१७४२ ई०, न० ३१, धुआ रोकड बही वि० स० १७५०/१६९३ ई० न० ८८ बीकानेर बहियात, हवूब बही, वि० स० १८१२/१७५५ ई० बस्ता न० १

६ सीमा व चुगी कर

७ परवाना बही, वि० स० १७४६/१६९२ ई० पृ० ४१ ४४। शासक ने अपनी विशेष कृपा से कुछ सामन्तो को इसकी वसूली के अधिकार प्रदान किये थे।

८ कागदो री वही वि० स० १८७३/१८१६ ई० न० २२, पृ० ४५

९ राज्य के पुराने सामन्तो मे जोहिया व भट्टी जाति के नेता सम्मिलित थे। बाद मे अस्थाई पट्टे अवश्य गैर राजपूतों को दिये गये थे। इनमे मुस्लिम, खत्री व सिक्खो की सख्या सबसे अधिक थी। —परवाना बही वि० स० १७४९/१६८२ ई०, पृ० ३२१, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ७९

राज्य के राठोड सामन्त अपनी निम्न शाखो मे विभक्त थे :

बीकावत—राज्य के सस्थापक राव बीका के वशज बीकावत राठोड कहलाते थे। साधारणतया पाटवी शाखा से राजगद्दी का उत्तराधिकारी चुना जाता था व अन्य वशजों के निर्वाह व सम्मान के लिये 'ठिकाणे' बांध दिये जाते थे। राज्य के सामन्तो मे सबसे अधिक सख्या इन्हीं की थी। बीका वश के होने के कारण दरबार मे इनका विशेष सम्मान भी था। राज्य के चार 'सिरायत ठाकुरों' मे दो बीका राठोड ही थे।[1] ये महाजन और भूकरका के ठाकुर थे। अपने भाई-सम्बन्धी होने के कारण प्रत्येक शासक ने बीका राठोडो को पट्टा देने मे पूर्ण उदारता दिखाई थी। महाराजा रायसिह, सूरसिह व सूरतसिह ने इन्हें सबसे अधिक पट्टे दिये थे। महाराजा सूरसिह ने तो अपने शासन-काल मे दिये ७ पट्टो मे ६ पट्टे बीका राठोडो को ही प्रदान किये थे।[2] साधारणतया ये शासक के प्रति अत्यन्त स्वामिभक्त होते थे, परन्तु महाराजा सूरतसिह के समय मे अवश्य कुछ प्रमुख 'ठिकाणेदारों' के सम्बन्ध शासक के साथ बिगड गये थे, जिसके फलस्वरूप कुछ समय के लिये उनके 'ठिकाणे' जब्त कर लिये गये थे। उनमे अजीतपुरा, सांखू व सीधमुख के ठिकाणे मुख्य थे।[3]

बीकावत पट्टों के गांवों की स्थिति[4]

वर्ष	कुल बीका पट्टों के गांव	वृद्धि (प्रतिशत मे)	राज्य के कुल पट्टा गावो मे स्थिति (प्रतिशत मे)	आसामीदार चाकर पट्टा गावो मे स्थिति (प्रतिशत मे)	पट्टायतो की सख्या	प्रति बीका पट्टायत के पास औसत गांव
१६२५	३२६	१००	२६.३२	२८ ३३	५४	६ ०५
१६५७	३०४	६२ ६६	२६.२६	३१.४६	६१	४.६६
१६६८	३८४	११७ ४३	३२ ६०	३५ ८८	६१	४ २१
१८१८	४६०	१४० ६७	२८ ६०	३७ १२	१३६	३.३८

१ सिरायत का अर्थ प्रथिम या मुख्य। राज्य मे चार प्रमुख ठिकाणेदार—महाजन (रतन सीत बीका), भूकरका (श्रृंगोत बीका), बीदासर (बीदावत) तथा रावतसर (कांध लोत) के थे—ख्यातख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७

२ ख्यातख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७-८८, देशदर्पण, पृ० ६६-१०१, शासक द्वारा प्रदत्त पट्टे की सूची—चार्ट न० १

३ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३२२

४ पूर्व उद्धृत

सामन्तो की शक्तियो पर और अकुश लगाने तथा शासक की शक्ति बढाने के लिये 'ठकुराई'-क्षेत्र मे शासक द्वारा वसूल किये गये करो की सख्या भी बढने लगी। पहले वे केवल 'पेशकशी' व 'खेड खरच' दिया करते थे।[1] अब उन्हें नियमित रूप से कई नये करो का भार सहन करना पडा। धुआँ भाछ'[2], 'हवूत्र', रूखवाली भाछ'[3] व 'घोडा रेख'[4] आदि कई कर उन्हे प्रतिवर्ष चुकाने पडे।[5] उनमे 'जगात'[6] आदि के अधिकार भी छीन लिये गये[7] तथा उनके भूमि व न्यायिक अधिकार भी सीमित कर दिये गये।[8] यहां तक कि प्रत्येक नया ठाकुर शासक से पट्टा प्राप्त करने के बाद ही अपने अधिकारो को सुरक्षित रख पाता था।

सामन्त-वर्ग की रचना

प्रारम्भ मे राज्य का सामन्त-वर्ग मुख्यत तीन श्रेणियो मे विभाजित था। प्रथम, वे कुलीय सामन्त तथा उनके वशज, जो राव बीका के साथ मारवाड से आये थे। द्वितीय, वे सामन्त, जो राव बीका के वशज थे तथा तृतीय, स्थानीय शासक जाति के मुखिया, जो अधीनस्थ सामन्त बन गये थे। इनके अलावा परदेशी सामन्त भी थे, जिन्हें शासक द्वारा समय-समय पर राज्य-सेवा मे सम्मिलित किया गया था। इन सामन्तो मे सबसे अधिक सख्या स्वाभाविक तौर पर राठौडो की थी, जो अपनी अनेक शाखाओ (खापो) मे विभक्त थे। परदेशी सामन्तो मे राजपूतो की अन्य जातिया व उनकी खापें थी। राजपूतो के अलावा अन्य सैनिक जातियो को सामन्त-वर्ग मे सम्मिलित करने मे बहुत कम उत्साह दिखाया गया था।[9]

---

१ दलपत विलास, पृ० १४-१५
२ गृहकर
३ रक्षाकर
४ सैनिक दायित्व कर
५ चीरा जसरासर, बीदाहद, गुसाईसर रै लेख री बही, वि० स० १७९९/१७४२ ई०, न० ३१, धुम्रा रोकड बही, वि० स० १७५०/१६९३ ई०, न० ८८, बीकानेर बहियात, हवूब बही, वि० स० १८१२/१७५५ ई०, बस्ता न० १
६ सीमा व चुगी कर
७ परवाना बही, वि० स० १७४६/१६९२ ई०, पृ० ४१-४४। शासक ने अपनी विशेष कृपा से कुछ सामन्तो को इसकी वसूली के अधिकार प्रदान किये थे।
८ कागदो री बही, वि० स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृ० ४५
९ राज्य के पुराने सामन्तो मे जोहिया व भट्टी जाति के नेता सम्मिलित थे। बाद में अस्थाई पट्टे अवश्य गैर राजपूतों को दिये गये थे। इनमे मुस्लिम, खत्री व सिक्खो की सख्या सबसे अधिक थी। —परवाना बही, वि० स० १७४६/१६८२ ई०, पृ० ३२१, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ७-९

राज्य के राठोड सामन्त अपनी निम्न खापो मे विभक्त थे :

बीकावत—राज्य के संस्थापक राव बीका के वंशज बीकावत राठोड कहलाते थे। साधारणतया पाटवी शाखा से राजगद्दी का उत्तराधिकारी चुना जाता था व अन्य वंशजों के निर्वाह व सम्मान के लिये 'ठिकाणे' बांध दिये जाते थे। राज्य के सामन्तो मे सबसे अधिक संख्या इन्ही की थी। बीका वंश के होने के कारण दरबार मे इनका विशेष सम्मान भी था। राज्य के चार 'सिरायत ठाकुरो' मे दो बीका राठोड ही थे।[1] ये महाजन और भूकरका के ठाकुर थे। अपने भाई-सम्बन्धी होने के कारण प्रत्येक शासक ने बीका राठोडो को पट्टा देने मे पूर्ण उदारता दिखाई थी। महाराजा रायसिह, सूरसिह व सूरतसिह ने इन्हे सबसे अधिक पट्टे दिये थे। महाराजा सूरसिह ने तो अपने शासन-काल मे दिये ७ पट्टो मे ६ पट्टे बीका राठोडो को ही प्रदान किये थे।[2] साधारणतया ये शासक के प्रति अत्यन्त स्वामिभक्त होते थे; परन्तु महाराजा सूरतसिह के समय मे अवश्य कुछ प्रमुख 'ठिकाणेदारो' के सम्बन्ध शासक के साथ बिगड गये थे, जिसके फलस्वरूप कुछ समय के लिये उनके 'ठिकाणे' जब्त कर लिये गये थे। उनमे अजीतपुरा, साखू व सीधमुख के ठिकाणे मुख्य थे।[3]

बीकावत पट्टों के गांवों की स्थिति[4]

वर्ष	कुल बीका पट्टों के गांव	वृद्धि (प्रतिशत मे)	राज्य के कुल पट्टा गांवों मे स्थिति (प्रतिशत मे)	आसामीदार चाकर पट्टा गांवो मे स्थिति (प्रतिशत मे)	पट्टायतो की संख्या	प्रति बीका पट्टायत के पास औसत गांव
१६२५	३२६	१००	२६ ३२	२८ ३३	५४	६ ०५
१६५७	३०४	९२ ९६	२६.२९	३१.४६	६१	४.९९
१६६८	३८४	११७ ४३	३२ ६०	३५ ८८	९१	४ २१
१८१८	४६०	१४०.६७	२८.६०	३७ ५२	१३६	३.३८

१ सिरायत का अर्थ अग्रिम या मुख्य। राज्य में चार प्रमुख ठिकाणेदार—महाजन (रतन सोत बीका), भूकरका (शृगोत बीका), बीदासर (बीदावत) तथा रावतसर (कान्ध सोत) के थे—आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७

२. आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७-८८; देशदर्पण, पृ० ९९-१०१, शासक द्वारा प्रदत्त पट्टे की सूची—चार्ट न० १

३ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३२२

४. पूर्व उद्धृत

पूर्वोक्त सारणी से विदित होता है कि बीका ठाकुरो की स्थिति सामन्त-वर्ग मे सबसे उत्तम थी। इनके बीका राजवश से सम्बन्धित रहने के कारण तथा इनके द्वारा सिंहासन को दी गई पूर्ण निष्ठा के फलस्वरूप राज्य मे इन्हे पट्टे के गावो की वृद्धि का पूरा लाभ मिला। १६२५ ई० से १८१८ ई० तक इनके पट्टे के गावो मे १३३ गावो अर्थात् ४० ६७ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो कि राज्य मे कुल पट्टे के गावो की वृद्धि—४० ८०% के लगभग समकक्ष है।[1] जबकि, इस काल मे 'आसामीदार चाकर', जिनके ये स्वय एक अग थे के पट्टे के गावो की वृद्धि मात्र ६ २३% हुई थी।[1] राज्य के कुल पट्टे के गाँवो के अन्दर इनकी स्थिति सुधरकर २६ ३२ से २८ ६० हो गई। यहा यह उल्लेखनीय है कि १६२५ ई० से १६५७ ई० मे जबकि इनके गावो की सख्या घटकर ३२७ से ३०४ हो गई थी, राज्य के कुल पट्टो म इनकी स्थिति मे परिवर्तन मात्र ०३% का आया था, जबकि इस काल म पट्टो की सख्या बहुत घटी थी। 'आसामीदार चाकर' पट्टो मे जो निरन्तर वृद्धि होती चली गई थी, जो कि १८१८ ई० मे १६२५ ई० की तुलना मे लगभग ६% थी। प्रति 'पट्टायत' औसत गाव मे भी इनकी स्थिति सतोषजनक थी, जबकि इनके 'पट्टायतो' की सख्या ५४ से बढकर १३६ हो गई थी। राज्य मे प्रति 'पट्टायत' औसत गाव की तुलना म ये बराबर या अधिक रहे।[3] १६२५ ई० मे प्रति 'पट्टायत' औसत गाव ६ ०५ की तुलना मे १८१८ ई० मे प्रति गाव ३ ३८ का हो जाना, इस बात का अवश्य सूचक है कि ठिकाणो का निरन्तर विभाजन होता जा रहा था।

बीका राठौड निम्नाकित कई शाखाओ मे विभाजित थे

रतनसोत

बीका रतन सोत, बीकावत ठाकुरो मे प्रमुख थे। ये राव लूणकरण के ज्येष्ठ पुत्र रतनसी के वशज थे।[4] इनका मुख्य 'ठिकाणा महाजन था। इनकी सख्या बीका राठौडो मे सबसे अधिक थी। सन् १६६८ ई० मे, कुल बीका पट्टे के गाव मे, इनकी सख्या बीका ३२ २१ प्रतिशत थी जो सन् १६८२ ई० मे ३६ ३६ प्रतिशत हो गई। *सन् १८१८ ई० मे अवश्य इनकी सख्या ३५ प्रतिशत* थी। इस प्रकार इनकी स्थिति मे धीरे-धीरे सुधार हुआ, जो कि कल बीकावत पट्टो मे २.२८ प्रतिशत वृद्धि के समान ही ३ प्रतिशत वृद्धि थी। राज्य मे गाव

१ देखिए सारणी—पट्टा गावो की सख्या
२ वही
३ वही
४. दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ३६

की सख्या भी सबसे अधिक इनकी थी। प्रति 'पट्टायत' इनके पास ४१ गांव थे। अकेले महाजन पट्टे में १३५ गाव थे। महाजन राज्य का सिरायत' ठिकाणा था।

शृगोत बीका

रतन सोत के बाद शृगोत बीका का नम्बर आता है। ये राव जैतसी के पुत्र, शृगाजी के वशज थे।[2] इनके मुख्य ठिकाणे' भूकरका, सीधमुख व अजीतपुरा थे। भूकरका राज्य का सिरायत ठिकाणा था। इन्होने राज्य सेवा म बहुत यश कमाया था। भूकरका म ठाकुर पृथ्वीराज व कुशलसिंह ने, महाराजा स्वरूपसिंह के समय व महाराजा जोरावरसिंह की मृत्यु के बाद, राज्य प्रशासन का सचालन किया था।[3] सन् १६६८ ई० म, कुल बीका पट्टों म इनकी सख्या १७ ६६ प्रतिशत थी, जो सन् १८१८ ई० म ३६ ७६ प्रतिशत हो गयी, अर्थात् रतन सोता से भी ४ ७६ प्रतिशत आग बढ गई। सन् १६६८ ई० म इनके पास प्रति पट्टायत ८ ५ प्रतिशत गाव थे जहा कुल बीका पट्टो के पास औसत ३ ३८ गाव थे। १६६८ ई० के आधार पर १८१८ ई० तक इनके गावो म वृद्धि १४३ ४७ प्रतिशत हुई जो कि कुल बीका पट्टा म वृद्धि से लगभग १०३% अधिक है।

भीमराजोत बीका

ये राव जैतसी के पुत्र, भीमराज के वशज थे।[4] राव कल्याणमल ने भीमराज को गई भूमि का बाहुड' की पदवी देकर सम्मानित किया था, क्योंकि मारवाड के आक्रमण के विरुद्ध भीमराज शेरशाह सूर को सहायता के लिए चढ़ा लाया था।[5] इनका ठिकाणा' राजपुरा मे था। बीका पट्टे मे ये सन् १६६८ ई० ३ ६५ प्रतिशत थे सन् १६८२ ई० मं ये ५ ५७ प्रतिशत व सन् १८१८ ई० मे इनकी स्थिति ४ ४७ प्रतिशत थी। सन् १६६८ ई० मे प्रति पट्टायत इनके पास ७ ५ गाव थे।

पृथ्वीराजोत बीका

ये राजा रायसिह के भाई कवि पृथ्वीराज के वशज थे। इनका ठिकाणा'

---

१ राज्य का प्रमुख ठिकाणा

२ शृगजी सम्राट अकबर द्वारा कश्मीर आक्रमण के समय मुगल सेना मे लडते हुए मारे गए थे—अकबरनामा भाग ३ पृ० ७६६—८ (पूर्व०)

३ बीकानेर रै राठौड़ां री ख्यात मे सुजाणसिहजी सू महाराजा गजसिहजी ताई (पूव) पृ० ३ ३८ ३६ दयालदास ख्यात (अप्र०) २ पृ० २५ २७५ ७६

४ बीका पट्टायतो की सारणी—चार्ट १

५ दयालदास ख्यात (अ०), भाग २ पृ० ७७

दबैवा था।[1] इनकी स्थिति बीका पट्टे मे सन् १८६८ ई० मे २.५० प्रतिशत थी, जो सन् १६८२ ई० मे घटकर एक प्रतिशत हो गयी और सन् १८१८ ई० मे यह १.६६ प्रतिशत थी। प्रति 'पट्टायत' इनके पास दो गाव थे, जो कि प्रति बीका पट्टा औसत से १.३८ सहस्रा कम थी।

वाघावत

ये, राव जैतसी के पौत्र, ठाकुरसी के पुत्र, बाघसिंह के वंशज थे।[2] इनके पास जागीर मे भटनेर, नौहर व सीधमुख रहे थे। राजा रायसिंह ने इनका मेघाणा 'ठिकाणा' बांधा था। कुल बीका पट्टे मे इनकी स्थिति ६.५१ प्रतिशत थी, जो सन् १८१८ ई० मे घटकर १.१६ प्रतिशत रह गयी थी, जबकि बीका पट्टो मे वृद्धि हो रही थी। प्रति 'पट्टायत' इनके पास सन् १६६८ ई० मे २७६ गाव थे, जो सन् १८१८ ई० मे घटकर एक गाव रह गये थे। इस प्रकार बाघावतो की स्थिति मे निरन्तर गिरावट आई थी तथा इनका महत्व घट गया था।

अमरावत

ये, राव कल्याणमल के पुत्र अमरसिंह के वशज थे। इनका 'ठिकाणा' राजा रायसिंह ने बांधा था।[3] ये हरदेसर के पट्टायत थे। सन् १६६८ ई० मे कुल बीका पट्टो मे इनकी स्थिति ८.७३ प्रतिशत थी, जो सन् १६८२ ई० मे ५.८६ प्रतिशत होने के बाद सन् १८१८ ई० मे घटकर २.३८ प्रतिशत रह गयी। इस प्रकार इनकी स्थिति बीका खाप की २.२८ प्रतिशत वृद्धि की तुलना में ६.३४ प्रतिशत गिरावट की थी। प्रति 'पट्टायत' इनके पास ३ गाव थे।

नारणोत

ये, राव लूणकरण के पौत्र, वैरसी के पुत्र, नारण के वशज थे।[4] इनके मुख्य

---

१ इन्हीं के बारे मे यह प्रचलित है कि उन्होंने महाराजा प्रताप को सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार करने की इच्छा रोकने के लिए पत्र लिखा था।— ओझा, भाग १, पृ० १४७-४८

२ बाघजी ने भटनेर का किला जीता था व राजा रायसिंहजी ने उनसे भटनेर लेकर, नौहर मे ठिकाणा बांधा था। अन्त में इनका ठिकाणा मेघाणा रहा। —दयालदास ख्यात, भाग २ (प्रकाशित) पृ० ८६

३ राठौड़ अमरसिंह, जो अमरा के नाम से विख्यात थे, ने सम्राट अकबर व महाराजा रायसिंह के विरुद्ध विद्रोही कार्यवाहियां की थी—दलपत विलास पृ० ५०, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ६०

४ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ३६

'ठिकाणे' मगरासर, मेगसर, तिहाणदेसर व कातर थे। कुल बीका पट्टो मे ये ४.६६ प्रतिशत थे, जो बढ़कर सन् १६८२ ई० मे ७ ६१ प्रतिशत हो गये व बाद मे सन् १८१८ ई० मे घटकर ० ६५ प्रतिशत ही रह गये। इनकी सख्या मे भी ६.६६ प्रतिशत की गिरावट आई। प्रति 'पट्टायत' इनके पास २.७७ गाव थे।

घडसीयोत

ये, राव बीका के पुत्र घडसी के वशज थे व राव लूणकरण ने अपने भाई का 'ठिकाणा' घडसीसर मे बाधा था।[1] इनका दूसरा मुख्य ठिकाणा गारबदेसर था। सन् १६८२ ई० मे बीका पट्टो मे इनकी स्थिति १३ ७८ प्रतिशत थी, जो सन् १६६६ ई० मे बढ़कर १६ प्रतिशत हो गयी, लेकिन १८१८ ई० मे घटकर ५ २३ प्रतिशत रह गयी। प्रति 'पट्टायत' इनके पास १२.५ गाव सन् १६८२ ई० मे थे, जो सन् १६६६ ई० मे बढकर १८ गाव पर आ गये, लेकिन सन् १८१८ ई० मे घटकर ११ गाव रह गये। इस प्रकार समय-परिवर्तन ने इनकी स्थिति पर विशेष प्रभाव नही डाला। बीका खाप मे रतनसोतो व शृगोतो के पश्चात् इन्ही की प्रभावशाली स्थिति थी।

किशनसिंघोत बीका

ये, राजा रायसिंह के पुत्र किशनसिंह के वशज थे व राजा सूरसिंह ने साखू मे इनका ठिकाणा' बाधा था। इनका दूसरा मुख्य 'ठिकाणा' नीबा था।[2] सन् १८१८ ई० मे इनकी स्थिति कुल बीका पट्टो मे १०.७८ प्रतिशत थी और प्रति पट्टेदार २२ गाव थे, जो कि रतनसोतो क बाद सबसे अधिक थे।

इसके अलावा समय-समय पर कई खांपों का अस्तित्व मिट गया था, जैसे—राजावत, रामावत, माधोदासोत, भगवानदासोत, नीबावत इत्यादि।

काधलोत[3]

रावत काधलजी, राव बीका के चाचा थे और इन्ही के सक्रिय सहयोग स राव बीका ने राज्य स्थापित करने का निश्चय किया था।[4] जब बीका का राज्य दृढता से स्थापित हो गया, तब रावत काधल ने गाव सहुआ, राजासर व

---

१ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृ० २६

२ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० १४०

३ काधलोतो की विभिन्न शाखाओं के पटटेदारो के वश के लिए देखिये—काधलोत खांप के पटटेदारो की सारणी—चार्ट न० १

४ नाना मालवा री बातां, २२६/२४, म० म० पू० बी०, दयालदास ख्यात (प्र०)२, पृ०

सेरडा मे अपना ठिकाणा' बाधा।[1] उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके तीन पुत्रो के बीच सारे ठिकाणे बट गये।[2] उनके वशज काधलोत राठौड कहलाये तथा उनकी गणना राज्य के प्रमुख सामन्तो मे की जाने लगी। उदाहरणत रावतसर का ठिकाणेदार राज्य का 'सिरायत' सामन्त था। प्रारम्भ में इनकी स्थिति बहुत सुदृढ थी, लेकिन धीरे-धीरे बीका राठौडो की सख्या के बढने से इनकी स्थिति द्वितीय स्तर की हो गयी। सन् १८१८ ई० तक इनके मुख्य ठिकाणो की संख्या ११ थी।

कांधलोत पट्टों के गांवों की स्थिति

वर्ष	कुल काधलोत पट्टो के गाव	वृद्धि (प्रतिशत मे)	राज्य के कुल पट्टो गावो मे स्थिति (प्रतिशत मे)	आसामीदार चाकर पट्टा गावो मे स्थिति (प्रतिशत मे)	पट्टायतो की स्थिति	प्रति काधलोत पट्टायत के पास औसत गाव
१६२५	२१७	१००%	१७.४७	१८ ८०	२५	८ ६८
१६५७	१४६	६७ २८	१२.६२	१५ ११	३३	४ ४२
१६६८	१७०	७८.३४	१४ ४८	१५ ८८	५६	३ ०३
१८१८	३०८	१४७.६३	१६.१५	२५.१२	७३	४ २१

उपर्युक्त सारणी मे विदित होता है कि राज्य के सामन्त-वर्ग मे काधलोतो की स्थिति सम्मानजनक थी। इनका नम्बर बीकावत पट्टायतो के पश्चात् आता था। सन् १६२५ ई० से १८१८ ई० तक इनके पट्टे के गावो मे ४७.६३ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, जबकि राज्य के कुल पट्टों के गावो मे ४० ८० प्रतिशत वृद्धि हुई थी। यह वृद्धि इनके लिये इस कारण भी उत्साहजनक थी, क्योकि इस काल मे 'आसामीदार चाकर' पट्टा गावो मे मात्र ६ २३ प्रतिशत वृद्धि हुई थी व यहा तक बीका-राजवश से सम्बन्धित बीकावत 'पट्टायत' भी

१ नैणसी ख्यात, २, पृ० २०५, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० १५

२ रावतसर, सोहवा व चाचावाद के तीन ठिकाणे स्थापित हुए थे।—दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० १८-२०

४० ६७ प्रतिशत वृद्धि का लाभ उठा पाये थे, अर्थात् इनके गावो मे राज्य के सर्वप्रमुख सामन्त वर्ग बीकावतो के गावों से भी ७०.२७ प्रतिशत की वृद्धि अधिक हुई थी। १६२५ ई० से १८१८ ई० के बीच थोडे-बहुत परिवर्तनो के साथ, राज्य के कुल पट्टा गावो म भी इनकी स्थिति १ ६८ प्रतिशत सुधरी थी। राज्य के कुल पट्टो मे बीकावतो के पश्चात् इनकी स्थिति सर्वोत्तम थी। 'आसामीदार चाकर' पट्टो म इनकी स्थिति १८ ८० प्रतिशत से बढकर १५ १२ हो गई, जो कि अपने-आपमे ६.३२ प्रतिशत वृद्धि थी। यहा, इस काल मे बीकावत पट्टो मे ९ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी।[1]

राज्य के पट्टा-क्षेत्र मे, काधलोतो की स्थिति को १६२५ ई० से १६५७ ई० के बीच भारी धक्का लगा था। इस काल मे बीकानेर के शासक राजा रायसिह की नीति अर्थात् पुराने सामन्तो को नियन्त्रित तथा बीकावतो को प्रोत्साहित करने की नीति पर कठोरता से चल रहे थे। वेसे, इस काल मे साधारणतया पट्टे के गावो मे भी कमी हुई थी, पर काधलोत बहुत अधिक प्रभावित हुए। इन वर्षों म, जहा कुल पट्टा के गावो मे ६ ९३ प्रतिशत की, 'आसामीदार चाकर' पट्टा गावों मे १६ ३० प्रतिशत की तथा बीकावत पट्टा-गावो मे ७ ०८ प्रतिशत की घटोतरी आई वहा काधलोत पट्टो के गावो मे ३२ ७२ प्रतिशत की भारी कमी आई। राज्य के कुल पट्टो के गावों मे इनकी स्थिति ४ ८५ प्रतिशत तथा 'आसामीदार चाकर' पट्टो के गावो मे ३ ६६ प्रतिशत घट गई, जबकि इनके निकट प्रतिद्वन्द्वी बीकावतो के कुल पट्टो मे मात्र ० ०३ प्रतिशत की कमी आई तथा 'आसामीदार चाकर' पट्टो मे तो उनकी ३ १३ प्रतिशत की वृद्धि हो गई। काधलोतो को प्रति पट्टायत' औसत गाव मे भी बहुत नुकसान हुआ। उनके पास ८ ६८ गाव से घटकर ४ ४२ गाव रह गये।[2]

१६५७ ई० के बाद का काल इनकी प्रगति का काल है। महाराजा अनूपसिह के काल म इन्होंने उल्लेखनीय सेवाए प्रदान की तथा १७वी शताब्दी मे चूरू व भादरा, रावतसर ठिकाणा का बहुत विकास हुआ। परगना पूनिया के राज्य मे स्थायी रूप से मिल जाने पर उस क्षेत्र के गावो म इनके स्थायित्व के अधिकार भी बढ गये। १६५७ ई० म १८१८ ई० तक इनके गावो मे ८०.६५ वृद्धि हुई जो कि राज्य मे 'आसामीदार चाकरो' मे सबसे अधिकतम वृद्धि थी। 'आसामीदार चाकर' पट्टो म इनका स्थान १५ ११ प्रतिशत से बढकर २५ १२ प्रतिशत हो गया। यह वृद्धि बीकावत पट्टायतो से लगभग ५ प्रतिशत अधिक थी। इस काल म, राज्य के कुल पट्टो म भी इनके गावो की वृद्धि ६ ८३

१ राज्य के कुल पट्टो आसामीदार चाकर पट्टो तथा बीकावत पट्टो के गाव तुलनात्मक अध्ययन के लिये देखिये—पट्टा गांवा तथा बीकावत पट्टा गांवों की सारणी

२ देखिये, पट्टा व बीकावत पट्टा गावो की सारणी

प्रतिशत थी जो कि बीकावत पट्टों से लगभग ८ प्रतिशत अधिक थी। इस प्रकार १६५७ से १८१८ ई० में बीक इन्हें बीकावतों से अधिक लाभ मिला, परन्तु उनकी संख्या महाराजा अनूपसिंह के काल तक दुगनी हो गई थी कि काधलोत उनकी प्रमुखता को भंग नहीं कर सके।[1]

प्रति 'पट्टायत' औसत गांव में भी, काधलोतों के १६५७ ई० के पश्चात् विशेष अन्तर नहीं आया। केवल ०.२१ का अन्तर था, जबकि बीकावतों में, इस काल में यह अन्तर १.६० का था। महाराजा जोरावरसिंह, गजसिंह व सूरतसिंह ने इन्हें सबसे अधिक गांव दिये थे तथा चूरू व भादरा 'ठिकाणा' गावों की संख्या ८४-८४ तक पहुंच गई थी। महाराजा सूरतसिंह के काल में जब भादरा व चूरू के 'ठिकाणेदारों' ने सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया तो उनके क्षेत्र को सदैव के लिये खालसा में मिला लिया गया।[2]

काधलोत भी राज्य में अपनी विभिन्न शाखाओं में बटे हुए थे, और उनके 'ठिकाणे' एक-दूसरे से स्वतन्त्र थे।

रावतोत

ये, काधल के बेटे रावत राजसिंह के वंशज थे। इनका मुख्य ठिकाणा रावतसर था, जो बीकानेर की चार 'सिरायतों' में से एक 'ठिकाणा' था। सन् १६६८ में काधलोत पट्टों में, इनके पट्टों की स्थिति २५.८ प्रतिशत थी, जो राज्य में रतनसोत बीकावतों के बाद सर्वोत्तम थी। लेकिन आर्याख्यान के अनुसार इनकी स्थिति १८१८ ई० में ५१.११ प्रतिशत रह गई।[3] प्रत्येक पट्टायत के पास सन् १६६८ ई० में १२ गांव थे। इनकी स्थिति सन् १६६८ ई० में काधलोतों की खांप में सबसे अधिक अच्छी थी, लेकिन धीरे-धीरे अन्य शाखाएं इनसे आगे निकल गयी। इनको केवल महाराजा गजसिंह और सूरतसिंह ने ही और पट्टे दिये थे।

साईंदासोत

ये, काधल के लड़के, अड़कमल के पौत्र, साईंदास के वंशज थे। इनके

---

१ वही, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० १८-२०

२ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ३२२-२५

३ पट्टा बहियों में जहां-जहां खांप की शाखाओं का वर्णन कम आया है, वहां तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दयालदास द्वारा रचित 'आर्याख्यान कल्पद्रुम' का सहारा लिया गया है, जिसकी रचना १९वीं सदी के मध्य में हुई थी। —आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृष्ठ १६१-६३

'ठिकाणे' में बहुत परिवर्तन हुआ।[1] अन्त मे महाराजा जोरावरसिंह ने भादरा मे इनका ठिकाणा बाधा, जोकि राज्य के प्रमुख 'ठिकाणो मे गिना जाने लगा। १८वी शताब्दी मे काधलोतों के गावों की संख्या बढने का एक मुख्य कारण, साईदासोतों के गावो मे वृद्धि होना था। बाद मे भादरा के ठाकुर लालसिह के बीकानेर शासकों के साथ सम्बन्ध निरन्तर सघर्षपूर्ण रहे थे।[2] इस कारण भादरा ठिकाणा कई बार खालसा मे मिलाया गया।[3] अन्त मे महाराजा सूरत सिंह के समय यह अन्तिम रूप से जब्त कर लिया गया।[4] भादरा पूर्वी क्षेत्र के चौरे नोहर का, मूई भूमि का उपजाऊ क्षेत्र था। आर्याख्यान ने, साई-दासोतो की स्थिति काधलोतो के पट्टे मे २६.८६ प्रतिशत बतलाई है जो कि काधलोतो मे वणीरोतों के बाद सबसे अधिक थी।

गोपालदासोत

ये भी, रावत राजसिंह के वशज थे और रावतसर की शाखा से निकले थे। इनका 'ठिकाणा' जैतपुर था, और ये अपने पूर्वज गोपालदास के कारण गोपाल-दासोत कहलाते थे।[5] सन् १६६८ ई० मे इनकी स्थिति काधलोत पट्टो मे सबसे कम १२.२६ प्रतिशत थी, लेकिन आर्याख्यान के अनुसार, ११.१३ प्रतिशत थी, जो रावतोतो से २ प्रतिशत अधिक थी। प्रति पट्टायत इनके पास सन् १६६८ ई० मे ३ गाव थे।

वणीरोत

ये, रावत काधल के ज्येष्ठ पुत्र बाघा के पुत्र, वणीर जी के वशज थे।

---

१. पहले इनके पास सोहुवा गांव था। अडकमल के पुत्र खेतसी ने भटनेर विजय की थी, फिर इनके पास पूनिया परगने के देईदासपुरो व करणपुरो रहे। महाराजा अनूपसिंह के पुत्र; महाराजा मानन्दसिंह ने लालसिंह को भादरा की जागीर दी थी जिसे बीकानेर के शासक जोरावरसिंह ने बाद में मान्यता प्रदान कर दी थी। छन्द राव जैतसी रो, पृ० ३८-४१; परवाना बही, वि० स० १७४६/१६८२ ई०, पृ० ११२-१४

२. ठाकुर लालसिंह ने महाराजा जोरावरसिंह को बहुत तग किया था। लालसिंह की सहा-यता से ही मारवाड नरेश अभयसिंह ने बीकानेर पर आक्रमण किये थे। अन्त मे जयपुर की सहायता से लालसिंह को बन्दी बनाकर नाहरगढ़ किले मे कैद रखा गया था। परवाना बही वि० स० १७४६, पृ० १११-१४, मोहता भीमसिंह द्वारा जोधपुर महाराजा अभय सिंह के बीकानेर घेरे का वर्णन, पृ० १८-२०, मोहता रिकार्ड्स, रा० रा० अ० बी०; दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३२२, देशदर्पण पृ० १२०-२२

३. उपर्युक्त—महाराजा जोरावरसिंह तथा गजसिंह ने इसे जब्त किया था।

४. दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३२२

५. देशदर्पण, पृ० १२०

इनका मुख्य ठिकाणा चूरू था, जिसे वणीरजी के पुत्र मालदव ने बसाया था।[1] इनके अन्य मुख्य ठिकाणे घाघू, देपालसर, लोसाणा, दूदवा, सात्यू व झारिया थे। प्रारम्भ मे इनकी सख्या व इनका प्रभाव कम था, लेकिन धीरे-धीरे चूरू के ठाकुर मालदेव, भीमसिंह, सग्रामसिंह, हरीसिंह के प्रभाव से इनके पट्ट के गावो की सख्या, काधलोतो म सबस अधिक हो गयी।[2] अकेले चूरू के पट्ट म ८४ गाव थे, जो काधलोतो की सख्या बढाने म बडे सहायक सिद्ध हुए।[3] सन् १६६८ ई० मे काधलोतो के पट्टा म इनकी स्थिति ४४ ७० प्रतिशत थी, जो सन् १६८५ ई० मे बढकर ४७ प्रतिशत तक पहुच गयी, लेकिन सन् १६६६ ई० मे घटकर वह ४४ २४ प्रतिशत ही रह गयी। एक खाप मे यह राज्य की सर्वाधिक ऊची स्थिति थी, क्योकि रतनसोत बीका भी, अपनी खाप मे अधिक स अधिक ३६ प्रतिशत स्थिति रखते थ। सन् १६६८ ई० म प्रति पट्टायत' इनके पास ३ गाव थे।

बीदावत

राव बीका के भाई रावबीदा के वशज बीदावत ठाकुर कहलाते थे। राव बीदा छापर, द्रोणपुर का स्वामी था। राव बीदा ने अपने क्षेत्र को अपने तीन पुत्रो

बीदावत पट्टो के गावो की स्थिति

वर्ष ई० सन	कुल बीदावत पट्टो के गाव	वृद्धि (प्रतिशत मे)	राज्य के कुल पट्टा गावो मे स्थिति (प्रतिशत म)	आसामीदार चाकर पट्टा गावो मे स्थिति (प्रतिशत म)	पट्टायतो की सख्या	प्रति पट्टायत औसत गाव
१६२५	१३८	१००%	११ ११	११ ६५	२६	५ ३०
१६५७	१७६	१२६ ०१	१५ ४८	१८ ५३	३३	५ ४२
१६६८	१७४	१२६ ०८	१४ ८२	१६ २६	४२	४ १४
१८१८	२२८	१६५ २१	१४ १७	१८ ५६	८५	२ ६८

१ आर्याख्यान कल्पद्रुम पृ० २०२

२ बीकानेर रै पट्टा री विगत पृ० २६ परवाना बही वि० स० १७४६/१६८२ ई० प० २४७ ४६

३ आर्याख्यान पृ० १६१ ६३

मे बाट दिया था, जो आगे चलकर और भी कई भागो मे विभक्त हो गया।[1] शासको ने भी विभाजन की नीति पर चलते हुए कई छुट भाईयो के स्वतत्र ठिकाणे स्थापित किये। इन प्रकार बीदावनो की कई शाखाओ न जन्म लिया। राज्य मे इनकी स्थिति घटती बढती रही, लेकिन अन्त मे सन् १८१८ ई० मे जाकर वह बढोत्तरी पर ही जा पहुची। प्रारम्भ मे इनके जो तीन ठिकाणे थे, वे बढकर १२ हो गये। इसके अलावा कई छुट भाईयो के ठिकाणे भी इनके साथ थे। महाराजा गजसिंह ने इन्हें सबसे अधिक, तीन पट्टे प्रदान किए थे।

राज्य की तीन प्रमुख खापो बीकावत, बीदावत व काधलोत मे बीदावतो की स्थिति अन्य दोनो की तुलना म कमजोर थी। वैसे इनकी स्थिति म थोडे-बहुत परिवर्तन के साथ, निरन्तर सुधार हुआ था, परन्तु प्रारम्भ से ही ये बीकावत व काधलोत के बाद ही श्रेणी मे आते थे। सन् १६२५ से १६५७ ई० के बीच इनकी स्थिति मे वृद्धि उल्लेखनीय है, क्योकि इस काल मे जहा राज्य की अन्य खापो की स्थिति मे गिरावट आई थी, वहा इनमे सुधार हुआ था। बीकावत व काधलोत पट्टो म गिरावट क्रमश ७ ०४ प्रतिशत व ३२ ६२ प्रतिशत हुई थी, वहा बीदावतो म ६ ६१ प्रतिशत की वृद्धि आई थी। तथापि ये सामन्त-वर्ग मे प्रमुख स्थिति म नही आ सके। १६५७ ई० मे राज्य मे कुल पट्टो की सख्या की स्थिति मे जहा बीकावत २८ २६ प्रतिशत तथा काधलोत १२ ६२ प्रतिशत थे वहा बीदावत १५ ४८ प्रतिशत थे। वैसे इनकी स्थिति काधलोता के लगभग समीप पहुच गई थी। १६२५ ई० म जहा काधलोतो की राज्य के कुल पट्टो मे स्थिति १७ ४७ थी तथा इनकी तुलना मे बीदावतो की ११ ११ प्रतिशत स्थिति थी वो १६५७ ई० मे क्रमश १२ ६२ प्रतिशत तथा १५ ४८ प्रतिशत हो गई। इस काल मे 'आसामीदार चाकर पट्टा' म भी इनकी वृद्धि आशाजनक थी जो ११ ६५ प्रतिशत से बढकर १८ ५३ प्रतिशत हो गई। तत्पश्चात् इनकी स्थिति मे कोई सुधार नही हुआ। यद्यपि इनके पट्टे के गावो की सख्या १६५७ ई० से १८१८ ई० तक बढकर १७६ से २२८ पहुँच गई थी, अर्थात ३५.६० प्रतिशत की वृद्धि हुई, परन्तु राज्य म पट्टो के गावो की वृद्धि को देखते हुए यह निराशाजनक थी। फिर, राज्य के कुल पट्टे के गावो मे इनकी स्थिति इस काल म १ ३१ प्रतिशत घट गई थी। केवल 'आसामीदार चाकर पट्टो' मे नाममात्र की ० ०६ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। प्रति 'पट्टायत' औसत गांव की सख्या भी १६२५ ई० को ५ ३० प्रतिशत से १८१८ ई० मे घटकर २ ६८ प्रतिशत रह गई, जो शासको द्वारा बीदावत पट्टो के निरन्तर हो रहे विभाजन की प्रक्रिया की ओर सकेत करती है।

---

१ राठौडा री वंशावली नै पीढ़ियां नै फुटकर बातां पृ० ५६, २३८/६, बीदावतों की ख्यात, पृ० २६

बीदावतो की विभिन्न खांपें निम्नाकित थी--

केसोदासोत—

ये, राव बीदा के पौत्र, सागा के पुत्र, गोपालदास के वशज थे। गोपालदास ने अपनी जागीर को अपने तीन पुत्रो मे बाट दिया था। छोटे पुत्र केशवदास को प टवी बनाकर बीदासर का पट्टा दिया था। उसी के वशज केसोदासोत कहलाये। बीदावतो म बीदासर इनका 'ठिकाणा' बना व इनकी शाखा अपनी खाप म प्रमुख शाखा कहलायी।[1] बीदासर का 'ठिकाणा राज्य के चार सिरायता म से एक था। सन् १६६८ ई० मे कुल बीदा पट्टा म इनकी स्थिति सबसे अधिक ४२ ५ प्रतिशत थी, जो कि एक खाप के अन्दर किसी परिवार मे सर्वोच्च थी। सन् १६८५ ई० म इनकी स्थिति बीदा पट्टा मे ४० ४८ प्रतिशत थी। १८ वी शताब्दी म इनकी स्थिति गिरने लगी। आर्याख्यान के अनुसार केसोदासोत केवल १७ ८२ ही थे।[2] महाराजा कर्णसिह से लेकर महाराजा सूरतसिह तक, जो बीदावतो को १० नय पट्टे दिये गये, उनम केसोदासोत को केवल एक ही पट्टा प्राप्त हुआ जो चारला का ठिकाणा था। महाराजा गजसिह व सूरतसिह ने छुट भाईयो की शाखाओ को अधिक प्रोत्साहित किया था। प्रति पट्टेदार इनके पास ४ ५ गाव थे।

खगारोत

ये, बीदा के पुत्र ससारचन्द्र के वशज खगारसिह की सतान थे। इनके मुख्य ठिकाणे' लोहा, खुडी व कनवाडी थे। महाराजा कर्णसिह ने इनके दो ठिकाणे, बाधे थे। सन् १६६८ ई० मे कुल बीदा पट्टो म, इनकी स्थिति २७ ०१ प्रतिशत थी, जो सन् १६८२ ई० मे घटकर २४ ८७ प्रतिशत हो गयी। आर्याख्यान के अनुसार १९वी शताब्दी के प्रारम्भ म इनकी स्थिति ३५ ७४ प्रतिशत बढ गयी थी,[3] जो कि बीदा पट्टो मे सबसे अधिक थी। महाराजा गजसिह व सूरतसिह के सरक्षण प्रदान करने से यह स्थिति सम्भव हुई थी। प्रति पट्टेदार ४ ७ गाव थे।

मदनावत

ये, बीदा के पुत्र ससारचन्द्र के दूसरे पुत्र, पाता के पुत्र मदनसिह के वशज थे। पहले इनके पास छापर गाव था, फिर अनूपसिह ने लाडवी दिया व अन्त म अनूपसिह द्वारा ही सोभासर का पट्टा प्रदान किया गया। सन् १६६८ ई० म कुल बीदा पट्टो मे इनकी स्थिति १७ ८१ प्रतिशत थी जो सन् १६८२ ई०

---

१ वही
२ आर्याख्यान कल्पद्रुम पृ० १९०
३ आर्याख्यान कल्पद्रुम पृ० १९०

में घटकर १२.६७ हो गयी थी। आर्याख्यान के अनुसार इनकी स्थिति ६.६३ प्रतिशत थी, जोकि बीदा पट्टों में सबसे कम शाखा की थी। प्रति पट्टेदार इनके पास ५.१६ गांव थे। यह अनुपात अवश्य बीदा पट्टों में सबसे अधिक था।

मनोहरदासोत

ये गोपाल दास के पुत्र, जसवतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र मनोहरदास के वंशज थे, जिनको राजा रायसिंह ने गांडवा की जागीर प्रदान की थी। इनके दूसरे 'ठिकाणे' पडिहारा व कक्कू थे।[१] सन् १६६८ ई० में इनकी स्थिति कुल बीदा पट्टों में ३.४४ प्रतिशत थी जो जो सन् १६८२ ई० में घटकर २.६२ प्रतिशत रह गयी। लेकिन आर्याख्यान के अनुसार १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यह बढ़कर २६.६३ हो गयी, जो कि खंगारोतों के बाद सबसे अधिक संख्या थी। प्रति पट्टेदार १.५ गांव थे।

पृथ्वीराजोत

ये, गोपालदास के पुत्र जसवतसिंह के दूसरे पुत्र, पृथ्वीराज के वंशज थे। इनके पास पहले भाडेला व अडसीसर गांव के पट्टे थे, बाद में महाराजा सुजान सिंह ने हरासर में इनका 'ठिकाणा' बांधा।[२] इनका दूसरा, ठिकाणा सारोठिया गांव था। सन् १६६८ ई० में इनकी स्थिति कुल बीदा पट्टों में १०.३४ प्रतिशत थी, जो सन् १६८२ ई० में बढ़कर १२.६७ प्रतिशत हो गयी। प्रति पट्टेदार इनके पास ३ गांव थे।

राव बीका के साथ मारवाड़ से आये, अन्य राठौड़ों में उनके चाचा मंडला, रूपा व नाथोजी मुख्य सामन्त थे। बीदा व कांधलजी की तुलना में इनकी खांपों का महत्त्व कम रहा था।[३]

मण्डलावत

ये, राव बीका के चाचा 'मण्डलाजी' के वंशज थे जिन्होंने राव बीका के साथ ही मारवाड़ से आकर, अपना 'ठिकाणा' स्थापित किया था।[५] इनका मुख्य 'ठिकाणा' सारुडा गांव था। राज्य के इतिहास में इनकी स्थिति सम्मानजनक अवश्य रही, परन्तु उन्होंने कोई विशेष सक्रिय भूमिका नहीं निभाई। सन् १६२५

१ आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० १००, देशदर्पण पृ० ११५

२. वही

३. देशदर्पण, पृ० ११५

४. दयालदास ख्यात (प्रकाशित) २, पृ० २

५. उपर्युक्त

ई० में कुल आसामीदार चाकरी पट्टो मे इनकी स्थिति १ ३६ प्रतिशत थी, सन् १६६८ ई० में यह १ ४६ प्रतिशत हो गई। फिर सन् १८१८ ई० में घटकर १ २२ रह गयी। कुल पट्टो में इनकी स्थिति सन् १६२५ ई० म १ ५४ प्रतिशत थी, जो घटकर १६६८ ई० में १ ११ प्रतिशत रह गयी। सन् १८२१ ई० में यह पुन घटकर १ ०८ प्रतिशत तक आ पहुची। प्रति पट्टेदार इनके पास, सन् १६२५ ई० में, ५ गाव थे, जो सन् १६६८ ई० में घटकर १ ६ गाव तक पहुच गये। सन् १८१८ ई० में भी यही स्थिति बनी रही।[1]

रूपावत

यह राव बीका के साथ 'मारवाड से आये', दूसरे चाचा रूपाजी के वशज थे।[2] इनका मुख्य 'ठिकाणा' भादला था। इनकी स्थिति भी विशेष अच्छी नही थी। पट्टो क अनुपात मे वह घटती-बढती रही थी। आसामीदार चाकरी पट्टो मे सन् १६२५ ई० में इनकी स्थिति १ ३६ प्रतिशत थी जो सन् १६६८ ई० म बढ कर २ २४ प्रतिशत हो गयी लेकिन सन १८१८ ई० म मात्र ० ७३ प्रतिशत रह गयी। कुल पट्टो मे इनकी स्थिति सन् १६२५ मे १ ५४ प्रतिशत थी, जो सन् १६६८ ई० मे थोडी बढकर १ ७८ प्रतिशत हो गयी, लेकिन सन् १८१८ ई० में घटकर मात्र ० ६१ प्रतिशत रह गयी। सन् १६२५ ई० में अवश्य प्रति पट्टेदार इनके पास ३ गाव थे, जो सन् १६६८ ई० में घटकर १ ८४ औसत रह गये और सन् १८१८ ई० में तो मात्र १ गाव ही रह गया।

नाथोत

यह भी राव बीका के चाचा नाथूजी के वशज थे और इनका ठिकाणा चानी था।[3] यह राज्य के महत्त्वहीन 'ठिकाणो' में से एक था। सन् १६२५ ई० में कुल आसामीदार चाकरी पट्टो में इनकी स्थिति ०.०६ प्रतिशत थी, जो सन् १६६८ मे बढकर १ १२ प्रतिशत हो गयी। कुल पट्टो में सन् १६२५ ई० में इनकी स्थिति ० ०८ प्रतिशत थी, जो सन् १६६८ ई० में बढकर १ ०२ प्रतिशत हो गयी। सन् १६२५ ई० में प्रति पट्टेदार इनके पास १ गाव था जो सन् १६६५ ई० में जाकर ४ की सख्या तक पहुच गया।

देशी-परदेशी

राठौडो की विभिन्न खापो के अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण ठिकाणे, विभिन्न

---

१ मण्डलावतो के इतिहास के अध्ययन के लिये देखिये—डा० सगतसिंह द्वारा रचित मण्डलवतो का इतिहास

२ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृ० २-५

३ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृ० २

राजपूतो की जाति के पट्टेदारो के थे, इन्हे देशी-परदेशी ठाकुर कहा जाता था। देशी ठाकुर पट्टेदारो में व राठौड राजपूत भी सम्मिलित थे, जो कि राज्य की स्थापना के बाद आकर यहा आ बसे थे। सांखला, वाघोड, भट्टी, जोहिया आदि राठौडों के आक्रमण से पूर्व यहा के शासक थे, इस कारण वे भी 'देशी ठाकुर पट्टायत' कहलाते थे। भाटी ठाकुर अपनी अधिक संख्या व प्रभाव के कारण अलग से भी एक गुट का निर्माण करते थे। इनके अलावा राज्य सेवा में सलग्न सामन्त 'परदेशी ठाकुर' व पट्टेदार कहे जाते थे। देशी-परदेशियों में राठौडो को छोडकर बाकी सभी ठाकुरो को 'परसगी' भी कहा जाता था।[1] क्योकि शासक व अन्य राठौड शाखाओं के सदस्यों के वैवाहिक सम्बन्ध इनके परिवारो में सम्पन्न होते थे। इनमें से बहुत से घराने तो बीकानेर नरेशो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध के कारण ही स्थापित हुए थे।[2] सामन्तवर्ग में शक्ति-सतुलन बनाते हुए शासको ने गैर राठौडो को पट्टा प्रदान करने में विशेष रुचि भी दिखाई थी। परदेशी ठाकुरो ने भी राज्य सेवा में पूर्ण उत्साह दिखाया था तथा समय-समय पर अपनी उल्लेखनीय सेवाएं प्रदान की थी। सन् १८१८ ई० तक भाटी 'ठिकाणो' के अलावा देशी-परदेशी सामन्तो के ९ 'ठिकाणे' स्थापित हो चुके थे।[3]

देशी-परदेशी पट्टायतो के गांवो की स्थिति[1]

वर्ष ई० सन्	कुल पट्टो के गाव	वृद्धि (प्रतिशत मे)	राज्य के कुल पट्टा गांवो मे स्थिति (प्रतिशत मे)	आसामीदार चाकर पट्टा गावो मे स्थिति (प्रतिशत मे)	पट्टायतो की सख्या	प्रति पट्टायत औसत गाव
१६२५	१२२	१००.	९ २६	१० ५७	१२	१० १६
१६५७	६६	५४ ०९	५ ७०	६ ८३	१५	४ ४८
१६६८	२७	२२ १३	२ २९	२ ५२	२६	१ ०३
१८१८	१०१	८२ ७८	६ २८	८ २३	५८	१ ७४

देशी-परदेशी ठाकुर राज्य के पुराने राठौड 'ठिकाणेदारों' की महत्त्वपूर्ण स्थिति मे कभी नही आ सके। बीकानेर राज्य राठौड राज्य ही बना रहा।

२ पट्टा बही वि० स० १७२५/१६६८ ई०, न० ४

३ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई० न० २२/२

१ ख्यात्यान कल्पद्रुम, पृ० २०३-०५

२. यह गणना भाटी राजपूत पट्टायता को छोड कर की गई है। भाटी राज्य के पुराने सामन्त थे तथा उनका अलग से महत्त्वपूर्ण गुट था

बीकावत, बीदावत व काधलोत पट्टायतों की तुलना मे इनकी स्थिति सदैव निराशाजनक रही। १६२५ ई० मे राज्य के कुल पट्टो मे जहा बीकावत, बीदावत व काधलोत पट्टा गाव क्रमश ३२७, १३८ व २१७ थे वहा देशी परदेशी पट्टा गाव १२२ थे। वैसे, १६२५ ई० में इनकी स्थिति अपने प्रभाव मे हर दृष्टि से उत्तम थी। इस वर्ष आसामीदार चाकर पट्टा गावो मे इनकी स्थिति १० ५७% थी जो बीदावतो के ११ ११% के समीप थी। तत्पश्चात् इनकी स्थिति ऐसी कभी नही रही। बीकानेर शासको के मनमद म घटोतरी तथा मुगल जागीरो की कमी से राठौड सामन्तो को सतुष्ट करने के लिये वतन क्षेत्र मे पट्टे अधिक देने के फलस्वरूप इनकी स्थिति पर बुरा प्रभाव पडा। १६६८ ई० मे इनके पास मात्र २७ गाव रह गये जो अपने आपमे ७७ ८७% की घटोतरी थी। राज्य के कुल पट्टो व 'आसामीदार चाकर पट्टो' मे इनकी स्थिति क्रमश २ २६% तथा २ ५२% रह गई। यह इनकी स्थिति का न्यूनतम विन्दु था। १८वी शताब्दी मे शासकों की असीमित सत्ता के विरुद्ध जब राठौड सामन्तो ने विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया तब शासको की विवशतावश' कृपा से इनकी स्थिति मे फिर सुधार होना प्रारम्भ हुआ। १८१८ ई० मे इनके गावो की सख्या १०१ हो गई तथा आसामीदार चाकर पट्टो' म इनकी स्थिति ८ २३ की सम्मानजनक हो गई। यद्यपि ये १६२५ ई० की स्थिति को प्राप्त नही कर सके। १६-५ ई० मे प्रति पट्टायत' औसत गाव की सख्या मे इनकी स्थिति राज्य भर म सर्वोत्तम थी। बाद मे १८१८ ई० तक घटकर १० १६ से १ ७४ हो गई। देशी परदेशी 'पट्टायत' अलग-अलग उप-जाति तथा खापो मे बटे रहने के कारण राज्य के सामन्त वर्ग मे कभी भी अपना प्रभावशाली गुट नही बना सके। अत इनकी स्थिति सदैव कमजोर बनी रही तथा य अपनी स्थिति व सम्मान के लिये राजा की कृपा पर ही आश्रित रह।

देशी परदेशी पट्टायतो मे निम्न उप-जाति व खापें मुख्य थी —

सांखला—ये नापा साखला के वशज थे तथा जागलू गाव के टिकाणेदार थे। नापा साखला के निमत्रण पर ही राठौडो ने यहा आकर राज्य स्थापित किया था। महाराजा सुजानसिंह (१७३३ ई०) के समय साखलो द्वारा नागौर के बख्तसिंह के साथ, षड्यन्त्र करके उसको गढ सुपुर्द करने के कारण राज्य मे इनकी स्थिति बिगड गयी थी।[१] हालांकि धीरे-धीरे इन्होने अपनी प्रतिष्ठा पुन स्थापित कर ली थी, लेकिन राज्य के उच्च पट्टायतो की श्रेणी मे नही आ सके थे। सन् १६२५ ई० म देशी-परदेशी पट्टा मे इनकी स्थिति २४ ५६ प्रतिशत थी जो सन् १६६८ ई० तक बढकर ८८ ८८ प्रतिशत हो गयी। इसके बाद

१ दयालदास ख्यात (प्रकाशित) भाग, २, पृष्ठ २६५

इनकी स्थिति गिरी और सन् १७४८ ई० मे यह केवल २ प्रतिशत रह गयी। सन् १८१८ ई० मे तो इनके नाम पर कोई पट्टा ही नही था। साखलो जैसा पतन राज्य मे किसी दूसरी पुरानी खाप का नही हुआ था।

निरवाण—इनकी कोई स्थायी 'ठिकाणा' नही था। इनकी स्थिति कुल देशी-परदेशी पट्टो मे ० ५ प्रतिशत थी। प्रति पट्टायत इनके पास एक गाव था। ये अधिकतर 'चाकर' पट्टायत ही बने रहे।

उदावत—देशी-परदेशी ठाकुरा मे इनकी स्थिति सम्मानजनक थी। सन् १६२५ ई० इनकी स्थिति देशी परदेशी पट्टा मे १० प्रतिशत थी जो सन् १६६८ ई० मे घटकर ८ ३४ प्रतिशत रह गयी। महाराजा कर्णसिंह के विद्रोही काल मे इनके साथ दक्षिण मे रहने के कारण इनकी स्थिति राज्य मे कमजोर पड गई थी। बाद मे महाराजा अनूपसिंह ने पुन राज्य-सेवा मे रख लिया था, परन्तु इनको विशेष सम्मान प्रदान नही कर सके। उदावत ही महाराजा अनूपसिंह के काल से चीवड कहलाये।[1] लेकिन महाराजा अनूपसिंह के बाद पुन इनकी स्थिति मे उन्नति हुई और सन् १८१८ ई० मे यह ८० प्रतिशत हो गयी, लेकिन प्रति पट्टायत इनके पास ० ६४ औसत गाव थे जो कि राज्य म सबसे कम सख्या थी।

राठौड—राव जोधा के वशज, जो बाद म आकर 'ठिकाणेदार' बने थे, वे देशी-परदेशी राठौड कहलाते थे। इनम जोधावत, करमसोत व मेडतिया प्रमुख थे।[2] सन् १८१८ ई० मे इनके पास कुल देशी-परदशी ठाकुरो मे ६ प्रतिशत गाव थे। प्रति पट्टायत इनके पास औसत १ ३३ गाव थे। इनमे मुख्य ठिकाणे भेसली पाखो, नोखो, रायसर आदि थे।[3]

सोनगरा—राठौडो के अलावा अन्य राजपूत सामन्ता म, सोनगरो की स्थिति सदैव उत्तम रही। इनके पास पहले वाय का ठिकाणा था। महाराजा अनूपसिंह के समय इनकी गणना राज्य के श्रेष्ठ सामन्ता मे की जाती थी। वनमालीदास को मारने के षडयन्त्र मे, लक्ष्मीदास सोनगरे का मुख्य हाथ था।[4] सन् १६२५ ई० मे जहा सोनगरो की स्थिति देशी-परदेशी पट्टा मे २० ४६ प्रतिशत थी, वह सन् १६६६ ई० तक ८० प्रतिशत हो गई। प्रति पट्टेदार इनके पास ४ गांव रहे, लेकिन १८वी शताब्दी म इनका महत्त्व घटता चला गया। यहा तक कि सन् १८१८ ई० मे इनके पास एक गाव भी नही रहा।

---

१ बही परवाना वि० स० १८००/१७४३ ई०, दशदर्पण, पृ० १५२-५३

२, आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृष्ठ २०३-४

३ उपर्युक्त

४ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सू महाराजा गजसिंघजी तांई, पृष्ठ ७, मोहता भीमसिंघ द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंह के बीकानेर घेरे का वर्णन पृ० १५, दयाल दास ख्यात (अप्रकाशित) भाग २, पृष्ठ २१७

चौहान—सोनगरो की भांति १७वी शताब्दी मे इनकी शक्ति का भी उत्थान हुआ, लेकिन १८वी शताब्दी मे इनका पतन हो गया। वैसे भी इनका कोई स्थायी 'ठिकाणा' नही था। सन् १६२५ ई० मे जहा ये देशी-परदेशी पट्टो मे ७ ३७ प्रतिशत की स्थिति रखते थे, वहा सन् १६६८ ई० मे ५१.८८ प्रतिशत बढ गये। सन् १८१८ ई० मे इनके पास एक भी पट्टा नही था। प्रतिपट्टेदार इनके पास १.५ गाव रहे। देशी परदेशी पट्टायतो की स्थिति किसी एक शासक की कृपा पर बढ जाती थी तो दूसरे के समय घट जाती या समाप्त हो जाती थी।

कछावा—महाराजा गजसिंह व सूरतसिंह के समय इनको राज्य मे ४ पट्टे मिले हुए थे। इनके मुख्य ठिकाणे, गजरूपदेसर, आमलसर, पुनलसर इत्यादि थे।[1] सन् १६२५ ई० मे देशी-परदेशी ठाकुरो मे इनकी स्थिति १ ६४ प्रतिशत थी, जो सन् १६६८ ई० मे ३७ ०३ प्रतिशत थी व सन् १८१८ ई० मे २६.७६ प्रतिशत बन गई।

तंवर—महाराजा कर्णसिंह के समय इन्हे विशेष प्रोत्साहन मिला था। लखासर इनका स्थायी 'ठिकाणा' था।[2] उनके काल मे इनकी स्थिति परदेशी ठाकुरो मे २५.३६ प्रतिशत हो गयी थी व गाव भी प्रति पट्टेदार १ ३३ हो गया था, जबकि उससे पूर्व देशी-परदेशी ठाकुरो मे उनकी स्थिति ४ ०६ प्रतिशत थी व बाद मे १ ६३ थी। इनके पास प्रति पट्टेदार गाव पहले ०.६ था और बाद मे ०.७ रहा।

सिसोदिया—इनका भी कोई स्थायी 'ठिकाणा' नही था। जोधासर व गजरूपदेसर महाराजा सूरतसिंह के समय इनको पट्टे म मिले हुए थे।[3] सन् १६२५ ई० मे ये देशी-विदेशी पट्टो मे ७ ३७ प्रतिशत की स्थिति रखते थे और महाराजा अनूपसिंह के अन्तिम वर्षो मे ये ६२ ६६ प्रतिशत की स्थिति तक पहुच गये थे। प्रति पट्टेदार उनके पास उस समय ८ गाव थे। सन् १८१८ ई० मे इनकी स्थिति १ ६८ प्रतिशत थी व प्रति पट्टेदार २ गाव थे।

इनके अलावा पवार, गोगलिये, रिणधीरोत, देवडा, सोढी, खीची, जैतमालोत, जैतुग आदि अन्य परदेशी ठाकुर थे, जिनकी स्थिति रिणधीरोतो को छोड कर कुल देशी-परदेशी पट्टो मे १.५ प्रतिशत से अधिक नही बढ पायी। रिणधीरोत खाप के पास अवश्य २१ पट्टे रहे थे। सन् १६२५ ई० मे इनकी स्थिति देशी-परदेशी पट्टो मे ५२ प्रतिशत तक थी। लेकिन यह खाप १८वी शताब्दी मे अपना अस्तित्व खो बैठी।[4]

१ ख्याख्यान कल्पद्रुम, पृष्ठ २०४-५
२. देशदर्पण, पृष्ठ १४५
३. देशदर्पण, पृष्ठ १४५-४६
४. परवाना बही, वि० स० १७४६/१६८२ ई०, पृ० ३००-२०

भाटी—राव बीका के जागल देश पर आक्रमण करने स पूर्व, यहा के पश्चिमी क्षेत्र पर भाटी राजपूतो का अधिकार था, जिनकी राजधानी पूगल थी।[1] पूगल के भाटी राज्य के पहले सामन्त बने थे। भाटी राजपूतो ने अपनी शक्ति को सचित करने के अनेक यत्न किये थे, लेकिन राठौडो की सयुक्त शक्ति के समक्ष वे 'सदैव' असफल रहे। धीरे-धीरे इन्होने अपना साहस छोड दिया व आज्ञाकारी सामन्त बन गये।[2] राव कर्ण ने पूगल के गावो का चार भागो मे बटवारा करके उनकी शक्ति को विभाजित व शिथिल बना दिया।[3] महाराजा अनूपसिह के समय, अनूपगढ के निर्माण के बाद, इनकी विरोधी शक्ति एकदम टूट गयी।[4] महाराजा सूरतसिह ने इन्हे ५ पट्टे प्रदान किये जो कि उनके द्वारा किसी खाप के दिये गये पट्टो मे सबसे अधिक थे। इनके पट्टो की कुल सख्या १५ के करीब थी, जिनमे मुख्य रूप स पूगल, बरसलपुर, सत्तासर, खीदासर, झझु, हाडला, परेवडो, हटियालो, खारबारा, राणेर, वेला, साहू बीठनोक जैमलसर इत्यादि थे।[5] इनकी सन् १६२५ ई० मे कुल आसामीदार चाकरी पट्टो' मे स्थिति ११ ३६% थी जो १६६८ ई० मे बढकर १२ ७१% हो गई। राज्य के कुल पट्टो मे इनकी स्थिति १६२५ ई० म १० ६३% थी जो १६६८ ई० म थोडी बढकर ११ ५८% पहुची, लेकिन १८१८ ई० मे घटकर ७ ६८% रह गई। इसी प्रकार 'आसामीदार चाकरी पट्टो' मे इनकी घटोतरी २.७% हुई, जबकि कुल पट्टो मे यह गिरावट २ ९५% थी। इस गिरावट का एक मुख्य कारण यह था कि इस अवधि मे कुल पट्टो मे राठोड पट्टा की सख्या बढ रही थी। इनके पास प्रति 'पट्टायत' १६२५ ई० मे २ ४२ गाव थे जो कि १६६८ ई० म घटकर १ ६२ रह गये। १८१८ ई० मे यह सख्या १ ४४ गाव ही थी। इस प्रकार भाटियो के प्रति पट्टायत' औसत गाव किसी भी प्रमुख राठौड खांप के औसत गाव की तुलना मे कम ही रहे। भाटिया मे केवल पूगलिया खाप ही ऐसी थी, जिनके पास प्रति 'पट्टायत' ३ १६ गाव थे। इस प्रकार बीकानेर राज्य के सामन्त-वर्ग मे राठौडो का ही बाहुल्य व प्रधानता थी। राज्य मे प्रमुख प्रशासक वे ही थे।

पट्टा-प्रणाली

राज्य मे पट्टा-प्रणाली किस समय लागू हुई, इसको निर्धारित करना कठिन

---

१ दयालदास ख्यात, (प्र०) २, पृष्ठ ४-६
२ वही, पृष्ठ ८
३ वही, पृष्ठ १६६
४ वही, पृष्ठ २१२-१३
५ मार्याख्यान कल्पद्रुम, पृष्ठ २०४-६

है। १८वी शताब्दी की ख्यातो मे इस प्रकार के विवरण अवश्य आते हैं कि राजा रायसिंह ने अपने ठाकुरो को पट्टे प्रदान किये थे।[1] राज्य की प्रथम प्राप्य पट्टा बही राजा सूरसिंह के काल की है, जिससे विदित होता है कि राज्य म पट्टा प्रणाली का प्रचलन १६२५ ई० से पूर्व हो चुका था।[2]

पट्टा प्रणाली राज्य की सामन्त-व्यवस्था मे एक विशेष परिवर्तन की ओर सकेत करती है। इससे राठौड-राजपूतो की कुलीय मान्यतायें, जो कि राजा को साझेदारी की भावना पर गठित करती थी, समाप्त हो गई तथा उसके स्थान पर शासक द्वारा प्रदत्त पट्टे मे उल्लिखित 'चाकरी' से निर्धारित दायित्वो पर जागीरी क्षेत्रो का उपभोग करने वाले सामन्त-वर्ग का निर्माण हुआ।[3] सामन्तो को अपनी वशानुगत क्षेत्रीय इकाइयों पर अधिकार बनाये रखने के लिये शासक की ओर से पट्टा प्राप्त करना आवश्यक हो गया।[4] जिसम उल्लिखित निर्धारित 'चाकरी'— सैनिक अथवा असैनिक का निर्वाह करना भी उतना हो आवश्यक हो गया।[4] पट्टे मे उसे प्रदान किये गये गावो की सख्या, कई बार उनकी आय तथा विभिन्न वसूली हेतु करो की सख्या व दर भी स्पष्ट लिखी होती थी। पट्टे मे यह निर्देश उल्लिखित होता था कि पट्टायत भू-राजस्व को निर्धारित दरो पर वसूल करेगा, गाव म आबादी बढायेगा तथा अन्य सहायक करो को वसूल करके राज्य का निर्धारित करो को चुकायेगा।[5] प्रत्येक नये पट्टायत को पट्टा प्राप्ति के अवसर पर शासक को एक निर्धारित रकम 'पेशकसी' के रूप मे चुकानी पडती थी।[5] प्रत्येक पट्टे के लिये यह राशि अलग-अलग थी।[6] 'पेशकसी'

१ पट्टा बही वि० स० १६८२/१६१५ ई०, न० १
२ परवाना बही वि० स० १७४६/१६८२ ई०, पृ० २३-२६, पट्टा बही वि० स० १६५२/१६८५ ई०, पृ० ६ ८
३ वही
४ श्री जी मेहरवानगी कर राठौड जालमसिंघ केसरीसिंघ सीव मीघोत जीवणदास प्रतापसघोत रो पोत रो खाप काधल बणीरोत नै पटो ईनायत कीयो तीण री विगत
गो० ४—लोभणा कसुवा गो० १ मेघसर
गो० ५ अखरै गाव ५ चाकरी असवार ५ अखरै असवार ५ सु मुहीम माहैकर सीग रै हाजरी पटै माहे भर लीजसी हामल हुसाबी लेसी रैयत आवादीन राखसी जथो वायरो किणी सु करण पावै नहीं मखध बदूक वरछी राखसी सीव सध धकीयो पटो साबक दसतूर बाहल राखीयो समत १८२८ मिती सावण बद ५ मुकाम पाव तखत श्री बीकानेर, कोट दाखल दको मुहतो राव बखतावर सघ
— भैय्या सग्रह परवाना पट्टा, सावण बद ५, वि० स० १८२८/३१ जुलाई १७७१ ई०
५ परवाना बही वि० स० १७४६/१६८२ ई०, पृष्ठ २२-२४
६ महाजन पट्टे स यह रकम बीस हजार के लगभग वसूल की जाती थी, लेकिन महाराजा अनूपसिंह ने उत्तराधिकारी चुनाव के समय ८०,००० रु० पेशकसी के रूप मे वसूल किये थे। ठिकाना सीधमुख से यह १६ ००० रु० में वसूल की गई थी। पट्टा बही वि० सं० १७५३/१६८५ ई०, पृष्ठ ७

की राशि निर्धारित करते समय कौन से तत्त्व उत्तरदायी होते थे, इस पर सम कालीन स्रोत मौन हैं। ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि पट्टे के क्षेत्र के आकार व आय के साधनों से इस राशि का निर्धारण अवश्य प्रभावित होता होगा। सामन्त के परिवार के किसी सदस्य द्वारा पट्टा प्राप्ति की लालसा भी राशि को बढ़ा देती थी।[1] वास्तव में पट्टायत द्वारा शासक का यह भेंट शासक की स्वेच्छाचारिता की प्रतीक थी। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अवश्य यह राशि पट्टे की कुल आय का ¼ भाग निर्धारित हो गई थी।[2] राज्य के प्रमुख पट्टायतों को जगात[3] वसूली के अधिकार भी मिले हुए थे।[4] क्षेत्र के सम्पूर्ण फौजदारी अधिकार उन्हीं के पास थे। अपने क्षेत्र में वे शान्ति व व्यवस्था के लिये उत्तरदायी थे। प्रत्येक पट्टायत को पेशकशी के अलावा अपने पट्टे के क्षेत्र में बसे निवासियों से राजा के कर्मचारियों द्वारा धुआ भाछ[5] रुखवाली भाछ[6] [7] नोता,[8] हबूब,[9] धान की चौथाई[10] इत्यादि कर वसूल करवाने में सहायता देनी पड़ती थी।[11]

पट्टे में चाकरी के लिये निर्धारित सैनिकों को जाबता का असवार[12] कहा जाता था। पट्टे में उल्लेखानुसार उनकी नियुक्ति लसकर[13] 'मुहिम[14] या देस[15] में की जाती थी।[16] साधारणतया ये असवार घुड़सवार सैनिक ही हुआ करते थे, पर ऊँटसवार तथा प्यादा की चाकरी भी इसमें सम्मिलित कर ली जाती थी। पट्टे के क्षेत्र की भौगोलिक व आर्थिक स्थिति पर यह निर्भर

---

१ वही
२ देशदर्पण, पृष्ठ ६४
३ चुंगीकर
४ पट्टा बही वि० स० १७५३/१६९५ ई०, पृ० ७
५ वही
६ गृहकर
७ सुरक्षा कर
८ विवाह उत्सव पर भेंट नजराना कर
९ विविध
१० जमा किये धनाज पर चौथाई (१/४) कर
११ चौरा जमरासर रै लेख री बही स० १७४८/१६९१ ई० न० २७ चौरा जसरासर बाबा हुय गुमाईसर र लेख री बही स० १७९९/१७४२ ई० न० ३१—बीकानेर अहियात कागदा री बही स० १८२४/१७६७ ई०, न० १० पृ० २०४
१२ निर्धारित सैनिक
१३ युद्ध
१४ धरदेश
१५ वतन देश
१६ पट्टा बही सं० १६८२/१६२५ ई०, न० १ स० १७०४/१६४७ ई०, न० ३ सं० १७४२/१६८५ ई०, न० ६

सारणी—पट्टा और चाकरी

वर्ष ई० सन्	खाप बीकावत राठौड			खाप काधलोत राठौड			खाप बीदावत राठौड			देशी-परदेशी ठाकुर		
	कुल गाव	कुल सख्या असवार	असवार सख्या का गाव सख्या के साथ प्रतिशत	कुल गाव	कुल सख्या असवार	असवार सख्या का गाव सख्या के साथ प्रतिशत	कुल गाव	कुल सख्या असवार	असवार सख्या का गाव सख्या के साथ प्रतिशत	कुल गाव	कुल सख्या असवार	असवार सख्या का गाव सख्या के साथ प्रतिशत
१६२५	३२७	११०	३३.६३%	२१७	११३	५२.०७%	१३८	११२	८१.१५%	१२२	१३६	१११.१३%
१६५७	३०४	२३२	७६.३१%	१४६	११७	८०.१३%	१३९	१६१	८६.४०%	७७	७०	९०.९०%
१६६८	३८४	२७९	७२.७५%	१७०	१५४	९०.५८%	१७४	१६४	९४.२५%	२७	२५	९२.५९%
१८१८	४६०	४८२	१०४.७८%	३ ८	२१८	१०२.२४%	२२८	२७२	११९.२९%	१०१	१५६	१५४.४५%

रहता था कि कौन-से सैनिक चाकरी के लिये चुने जायें।[1]

'जावता असवार' की सख्या किस आधार पर निर्धारित की गयी थी, इसका विवरण नहीं प्राप्त होता है। राज्य की पट्टा बहियों मे गावो की सख्या के पीछे 'जावता असवारों' की सख्या लिख दी गई है। पट्टे और चाकरी के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिये पडोसी राज्य मारवाड की भाति पट्टा रेख प्रथा का प्रचलन नही था।[2] १८वी शताब्दी के अन्त मे अवश्य पट्टों की कुल आय के सदर्भ मे रेख शब्द का प्रयोग किया गया है, पर वह भी कुछ गावो के लिये। १९वी शताब्दी के प्रारम्भ मे यह प्रयोग भी बन्द हो गया है।[3] जहा विवरण मिला है, वहा प्रति १००० रेख पर १ 'जावता असवार' निर्धारित हुआ है।[4] बीकानेर राज्य में रेगिस्तानी वातावरण के फलस्वरूप अकाल व जनसख्या की कमी की समस्या से आर्थिक अस्थिरता छाई हुई थी। सम्भवत इस कारण गाव की 'जमा' अथवा 'रेख' अनुमानित करके ही 'जावता असवारों' को निर्धारित कर दिया जाता था। समकालीन सामग्री मे केवल 'जावता असवारो' के ही उल्लेख से यह भी जान पडता है कि इनके आगे गावो की अनुमानित आय का मानदण्ड अपने दायरे में काफी विस्तृत रहा होगा।

गावो या क्षेत्र की निर्धारित आय पर 'जावता असवारों' का निर्धारण केवल 'चाकरी पट्टों'—देशी-परदेशी, हजूरी, कामदारी व अस्थायी पट्टों मे ही हुआ करता था। बीका राजवश के सम्बन्धियो व नातेदारो के वशानुगत पट्टों मे चाकरी के लिये 'जावता असवारो' का निर्धारण 'जमा' के अलावा अन्य कारणो से भी प्रभावित होता था। जिनमे मुख्य थे, पट्टायत का राज-परिवार के साथ रक्त का सम्बन्ध, पट्टे का स्वरूप तथा पट्टे के निर्माण का समय व उसकी परिस्थितियां। साथ मे दी गई सारणी से यह विदित होता है कि इन कारणो के फलस्वरूप साधारण व वशानुगत पट्टो के पीछे दायित्वो मे काफी अन्तर था। राज्य मे साधारणतया कम-से-कम एक गाव के पीछे एक 'जावता असवार' का उल्लेख अवश्य मिलता है तथा वशानुगत पट्टे राज्य के सभी भागो मे बिखरे हुए थे। इसी आधार पर पट्टा और चाकरी सारणी के माध्यम से पट्टा और 'जावता

१ भाटियो के दल से अधिक ऊंट व प्यादा आते थे, भाटियों के पट्टे, पट्टा बही स० १६८२/१६२५ ई०, न० १

२ जी० डी० शर्मा—राजपूत पॉलिटी, पृ० ८४-८७, दिल्ली, १९७७

३ पट्टा परवाना भादुवा सुद ५, स० १८६०/२२ अगस्त, १७७३ ई०—भैय्या सग्रह, बीकानेर। सिंढायच दयालदास ने अपने किसी भी ग्रन्थ मे बीकानेर के सन्दर्भ मे रेख शब्द का प्रयोग नहीं किया है जबकि उसने गांवो व सैनिक दायित्वों या करो का पूरा विवरण दिया है। यही हाल अभिलेखीय सामग्री का है।

४ भैय्या सग्रह—पट्टा-परवाना, भादुवा सुद ५ स० १८३०/२२, अगस्त १७७३ ई०

असवारों' की सख्या में बीच सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न किया गया है। बीका खाप के पट्टायतों का राजा के साथ सीधा रक्त का सम्बन्ध था तथा उनके पट्टों का स्वरूप वंशानुगत था, जिनके पास १६२५ ई० में कुल ३२७ गावों के बदले ११० 'जाबता असवारों' की ही चाकरी देनी पड़ती थी अर्थात उनका अपने पट्टों के बदले दायित्व केवल ३३ ६३% था। काधलोत खाप के पट्टायत राजा के पारिवारिक सम्बन्धी थे तथा उनके 'पाटवी' पट्टे का निर्माण राज्य की स्थापना के साथ हुआ था, इस कारण १६२५ ई० में इनके कुल पट्टों के पीछे चाकरी का निर्धारण ५२.०७ प्रतिशत था। काधलोतों की भांति बीदावत पट्टायत भी राजा के पारिवारिक सम्बन्धी भाई थे लेकिन इनके पूर्वजों ने बाद में बीका वंश के राजा की अधीनता स्वीकार की थी। इनके पास १६२५ ई० में कुल १३८ गाव थे तथा बदले में ११२ 'जाबता असवार' थे अर्थात दायित्व ८१ १५% था। काधलोतों के साथ इनके मुख्य ठिकाणों का स्वरूप भी वंशानुगत था। इनके बदले देशी-परदेशी राजपूतों के पट्टे, जो पूर्णतया राजा की कृपा के ऊपर निर्भर थे व अधिकांश प्रकृति में अस्थायी थे के १६२५ ई० में कुल १२२ गावों के बदले १३६ 'जाबता असवार' निर्धारित थे अर्थात् दायित्व ११३ १३ प्रतिशत था जो एक गाव एक 'जाबता असवार' के सम्बन्ध से अधिक है। इस प्रकार 'आसामीदार चाकर पट्टायतों' को अपने दायित्वों में विशेष स्थिति रखने के कारण काफी छूट थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि समय के साथ शासकों का उन पट्टायतों के दायित्वों के बारे में दृढ होता चला गया। संभवत सैन्य आवश्यकताओं ने भी दबाव डाला हो। बीका खाप के पट्टायतों का दायित्व १६२५ ई० में कुल गावों की सख्या के अनुपात में ३३ ६३ प्रतिशत था वह १६५७ ई० में ७६ ३१ प्रतिशत १६६८ में ७२ ७५ प्रतिशत तथा १८१८ ई० में बढकर १०४ ७८ प्रतिशत हो गया अर्थात अन्य पट्टायतों की तरह लगभग एक गाव एक जाबता असवार के अनुपात में आ गया। यही स्थिति काधलोत तथा बीदावत पट्टायतों की है। देशी-परदेशी पट्टायतों का अनुपात भी इसी तुलना में अधिक बढ गया। १८१८ ई० में वह १५४ ४५ प्रतिशत अर्थात उनके दो गावों पर तीन 'जाबता असवारों' का औसत आ गया। यहा यह उल्लेखनीय बात है कि बीका व काधलोत पट्टायतों के पास अधिकांश पट्टे राज्य के उपजाऊ क्षेत्र में थे।

महाराजा सूरतसिंह ने १७९४ ई० में पट्टायतों से जाबता असवारों की चाकरी के स्थान पर 'घोडा रेख' नाम का कर वसूल करना प्रारम्भ कर दिया था, जिसकी दर प्रति 'असवार' १०० रु०थी।[1] उन्होंने पट्टे के क्षेत्र में निवास करने वाली प्रजा से भी प्रति गुवाडी २ रु० की दर से सुरक्षा के नाम का 'रूखवाली

---

१ हकूब बही स० १८३१/१७७४ ई०, कागदो की बही स० १८७३/१८१६ ई० न० २२ पृ० १०१

माछ' कर वसूल किया।[1] १८०० ई० मे 'घोडा रेख' की दर प्रति असवार २०० रु० तथा 'रुखवाली माछ' की दर प्रति गुवाडी १० रु० हो गई।[2] इसी समय 'रेख' शब्द का भी प्रयोग किया जाने लगा लेकिन यह 'रेख' गांव की 'जमा' की भाति न होकर सदारो की सख्या की प्रतीक थी।[3] अन्त मे 'घोडा रेख' व 'रूखवाली माछ' को मिलाकर उसका नाम 'दरबार री रकम' रखा गया जो पट्टे की निर्धारित आय का एक तिहाई भाग होती थी।[4] चूंकि पट्टे चाकरी के बदले दिये जाते थे, अत पट्टे के गावो की सख्या भी पट्टायत के दायित्वो के अनुपात मे घटती-बढ़ती रहती थी। केवल 'वेतलव' गाव अपवाद थे।[5]

राज्य मे पट्टा प्रणाली के प्रबलन का यह तात्पर्य कदापि नही है कि प्राचीन कुलीय ढाचे का अन्त हो गया तथा उसका स्थान एव नई व्यवस्था ने ले लिया। राज्य का सामन्त वर्ग अभी पुराने ठाकुरो की धरोहर था तथा उनकी कुलीय मान्यताए अभी भी उनके अधिकारों व जीविका का स्रोत थी। राजा अपने 'सम्बन्धियो' की विशिष्ट स्थिति को जड से उखाड देने की बात नही सोचता था बल्कि सम्मान देता था। राजा का दरबार केवल सामन्तो से सम्बन्धित था जहा राठौड व विभिन्न राजपूत जातियो की खापो के मुखिया व उप-मुखिया मुगल दरबार की 'मनसब' व्यवस्था के आधार पर श्रेणीगत होकर न बटकर अपनी-अपनी खांप के सम्मान व सम्बन्ध के आधार पर बैठते थे। यह सम्मान उनके राजा के साथ रक्त के सम्बन्ध, अपनी शक्ति व राज्य को दी गई उल्लेखनीय सेवाओ से निर्मित होता था। राजपूत दरबार कभी भी चाकरी या कार्यालय की स्थिति पर श्रेणियो मे नही विभाजित हुआ, यद्यपि ये किसी को सम्मान प्रदान करने मे एक कारण अवश्य बन सकते थे, बल्कि सदैव ही राज्य की शासकीय जाति, उसकी उपजाति तथा सेवा मे आई अन्य सजातीय खापो के आधार पर ही विभाजित हुआ।[6] कुछ अपवाद अवश्य ढूढे जा सकते हैं, पर इससे दरबार के मूल स्वरूप मे अन्तर नही आता है।

शासको ने पट्टा प्रणाली के माध्यम स अधिक से-अधिक अपने सामन्तो के

---

१ कागदा की बही स० १८५१/१७९४ ई०, न० ८ प० १११

२ कागदो की बही स० १८५७/१८०० ई० न० ११, पृ० २९ ८०, स० १८७१/१८१४ ई०, न० २०, पृ० ६०, ३२२

३ भैय्या सग्रह पट्टा परवाना भादुवा सुद ५ वि० स० १८३०, २२ अगस्त, १७७३ ई०। रेख के दूसरे अर्थ के लिए देखिये—जी० डी शर्मा (पूर्व) पृ० ८४, ८६

४ देशदर्पण पृ० ८७ ९४, ९७

५ परवाना बही वि० सं० १७४९/१६९२ ई० पृ० २२ २९

६ भैय्या नथमल रै समै दरबार री बही, भैय्या सग्रह। यह बही महाराजा सूरतसिह के काल की है

दायित्वों को निर्धारित कर दिया तथा उनके जागीरी क्षेत्र पर निरीक्षण व नियन्त्रण की नीति अपनाकर राज्य में राजा की स्थिति को निरंकुश बना दिया। इस प्रणाली द्वारा उनकी शक्तियों को विभाजित करके उन्हें राजा की कृपा पर अधिक आश्रित कर दिया। राज्य एक इकाई के रूप में उभरा तथा उसके फल-स्वरूप उसकी अखण्डता को सुरक्षा मिली। राज्य की आय के स्रोत बढ़ गये तथा अशान्ति को फैलाने के अवसर घट गये। सम्भवतः राजा इससे अधिक चाहता भी नहीं था। ये 'मातेदार' सामन्त ही उसकी सेना के स्तम्भ थे तथा मुगल सम्राट के साथ सम्बन्ध बिगड़ जाने तथा राज्य की विभिन्न जातियों के विद्रोह करने पर वे ही विश्वसनीय 'सहायक' थे। इनको मिटा देने से उसके स्वयम् के राज-नैतिक व सांस्कृतिक आधार समाप्त होता था। अधिक-से-अधिक वह उन्हें ठीक रखने के लिये नियन्त्रण व शक्ति सन्तुलन की नीति पर चल सकता था। पर, इस मूल ढाँचे में परिवर्तन न करने का एक दुष्परिणाम यह निकला कि १८वीं शताब्दी में मुगल संरक्षण के समाप्त हो जाने पर सामन्तों को अपनी खोयी हुई शक्ति व प्रतिरूप को प्राप्त करने का आधार मिल गया। फलस्वरूप राज्य में विद्रोह बढ़ गये।

पट्टायत दो तरह के थे। प्रथम, 'आसामीदार चाकर पट्टायत' तथा द्वितीय 'चाकर पट्टायत'। 'आसामीदार' चाकर वे पट्टायत थे, जिनके 'ठिकाणें' बीका के राज्य के साथ स्थापित हो चुके थे तथा परवर्ती काल में बीका खाप के सदस्यों के नये 'ठिकाणें' बाँधे गये थे। उन 'ठिकाणों' पर चूंकि इनके वंशानुगत एवं क्षेत्रीय अधिकारों को मान्यता दी जाती थी इसलिए ये लोग आसामीदार' कहलाते थे। अपने उन अधिकारों को बनाये रखने के लिये इन्हें राज्य को चाकरी देनी पड़ती थी, इसलिए ये 'आसामीदार चाकर पट्टायत' कहलाते थे। इसके विपरीत साधारण चाकर पट्टायत वे लोग थे, जिन्हें शासक के द्वारा केवल चाकरी के बदले पट्टे प्रदान किये थे। इनके पट्टे चाकरी के साथ ही बने रह सकते थे। इन पट्टायतों का अपने क्षेत्र में कोई वंशानुगत दावा नहीं होता था। केवल शासक की स्वीकृति से ही ये पट्टे भी वंशानुगत हो सकते थे। अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए ये शासक की कृपा पर पूर्ण आश्रित थे। इनका अपना किसी तरह का कोई भी दावा नहीं होता था।[1]

आसामीदार चाकर पट्टायत

बीका, बीदा, कांधल, मंडला, रूपा के वंशज वस्तुतः 'आसामीदार चाकर पट्टायत' कहलाते थे। शासक के साथ रक्त के विशेष सम्बन्धों के कारण राज्य

१. पट्टा बही, वि० सं० १६८२/१६२५ ई०, नं० १, परवाना बही वि० सं० १७४६/१६८२ ई०, देखिये, आसामीदार व चाकर पट्टेदारों की सूची

से राठौड़ कुलीय भाई-चारे का महत्त्व तथा इनके पूर्वजों के द्वारा अपनी जागीर का निर्माण करने के फलस्वरूप वे अपने पट्टे के क्षेत्र पर निश्चित सम्मान-जनक क्षेत्रीय दावा रखते थे। परदेशी ठाकुरों में भाटी व सांखला भी इसी श्रेणी में आते थे। राज्य की स्थापना से पूर्व उनके यहां विद्यमान होने से राठौड़ों ने इनके अधिकारों को यह मान्यता दी थी। सबसे ठकुराई क्षेत्र में शासक उनके वंशानुगत अधिकारों को स्वीकार करता था परन्तु, प्रत्येक नये पट्टायत को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए नजराना चुकानी पड़ती थी तथा नये पट्टे के रूप में स्वीकृति लेनी पड़ती थी। पट्टा प्रथा के प्रचलन के बाद से इन क्षेत्रों में भी धीरे-धीरे शासक का हस्तक्षेप बढ़ने लगा था तथा केन्द्रीय शासन द्वारा बनाए हुए प्रशासनिक व राजस्व नियमों को मानने के लिए बाध्य होना पड़ता था।[1] इनके विरुद्ध इनकी प्रजा शासक तक शिकायत पहुंचा सकती थी।[2] शासक पट्टे के गांवों में वृद्धि या कटौती कर सकता था पर ऐसा करते समय 'ठिकाणों' के मुख्य गांवों को बना रहने दिया जाता था। बाकी गांवों में शासक मनचाहा परिवर्तन कर देता था। साधारणतया, शासक उनके सैनिक दायित्वों के आधार पर यह वृद्धि या कटौती किया करता था। वह इनके 'जगात' वसूली के अधिकार भी छीन सकता था।[3]

शासक द्वारा मान्यता प्राप्त होने पर ही ठाकुर को 'ठिकाणे' के अधिकार प्राप्त होते थे। मान्यता प्रदान करने के इस अधिकार का प्रयोग शासक स्वेच्छा-पूर्वक किया करता था। छोटे-मोटे ठिकाणों में तो उसका हस्तक्षेप होना ही रहता था, राज्य के 'सिरायत' व अन्य मुख्य ठिकाणे भी उसके स्वेच्छाचारी आचरण से मुक्त नहीं थे। विशेषकर उत्तराधिकार में सामन्तों में शासक का हस्तक्षेप कुछ बढ़ जाता था। महाराजा अनूपसिंह ने राज्य के सबसे प्रमुख ठिकाणे महाजन में सन् १६८५ ई० से लेकर सन् १६६१ ई० तक एक के बाद एक चार

---

१ गांवां रै लेन-देन री बही, वि० सं० १७५६/१६६६ ई० न० १२२, गांवां रै रकम वसूली री बही, वि० सं० १७५६/१६६६ ई०, न० १२३, बीकानेर बहियात

२. कागदों री बही, कातो बंद २, वि० सं० १८२७/६ अक्टूबर, १७७० ई०, न० ३, वि० सं० १८७३/१८१६ ई०, नं० २२, पृ० ४-५

३ मुकरका, राज्य का सिरायत ठिकाणा था। उसमें शासक ने गांवों को लेकर मनचाहे परिवर्तन किये थे। ठाकुर करमसेन मनोहरदासोत के पास सन् १६५७ ई० में २० गांव थे, जो उसके पुत्र खड़गसेन के समय में (सन् १६६८ ई०) में रह गये थे। १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में फिर से बढ़कर २६ की संख्या पर पहुंच गये थे, पट्टा बही, वि० सं० १६६२/१६३५ ई० नं० २, बीकानेर रै पट्टा गांवां री विगत, वि० सं० १७१४/१६५७ ई०, पट्टा बही वि० सं० १७२५/१६६८ ई०, नं० ४, आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० १८७

ठाकुरों को नियुक्त किया था।[1] इस प्रकार का हस्तक्षेप महाराजा अनूपसिंह ने रावतसर के ठिकाणे में,[2] महाराजा गजसिंह ने चूरू के ठिकाणे में,[3] महाराजा सूरतसिंह ने सीधमुख के ठिकाणे में किया था।[4] किसी खांप की एक शाखा को हटाकर दूसरी शाखा को पट्टे भी दिये जाते थे।[5] एक खांप के पट्टायत के गांवों में

---

१. महाजन के ठाकुर जगतसिंह उदैभाणोत की सन् १६८५ ई० में मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र भजनसिंह को पट्टा प्रदान किया गया। तीन वर्ष बाद उसे हटाकर उसके छोटे भाई मानसिंह को ८०,००० पेशकशी के बदले पट्टा प्रदान कर दिया गया। एक वर्ष पश्चात सन् १६८६ ई० में भजनसिंह ने ८०,००० रु० पेशकशी देकर पुनः पट्टा प्राप्त कर लिया। परन्तु दो वर्ष बाद ही उससे एक अन्य भाई हिम्मतसिंह ने ८०,००० रु० पेशकशी व बिना जगात के महाजन पट्टे को महाराजा से प्राप्त कर लिया।

मु० सोहन लाल रचित, तवारिख राज श्री बीकानेर और मोरमुंशी श्रीरामकृष्ण—ताजीमी, राजवीज, ठाकुर्स एण्ड दरबारवाला ऑफ बीकानेर तथा ओझा ने बीकानेर राज्य का इतिहास भाग २, पृ० ६५२ में महाजन के ठाकुरों के वंश क्रम में उदैभाण के पश्चात् पांचों ठाकुरों का नाम नहीं दिया गया है जबकि परवाना बही व पट्टा बहियों में इनका पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। सम्भवतः अपने घराने के सम्मान को बचाने के लिए उपर्युक्त चरित्रों से सम्बन्धित झगड़ों का वर्णन न दिया गया हो। परवाना बही, वि० सं० १७४६/१६८२ ई० पृ० २२,२४, पट्टा बही वि० सं० १७५३/१६६६ ई०, नं० ७, पृ० ५,७

२ महाराजा अनूपसिंह ने ठाकुर अमरसिंह पणदसिंहोत से पट्टा छीनकर लखधीर राज को सौंप दिया था, परवाना बही १७४६/१६८२ ई०, पृ० ३१

३ महाराजा गजसिंह ने चूरू ठाकुर धीरतसिंह के पुत्रों को गद्दी न देकर उसके भाई हरीसिंह को गद्दी प्रदान कर दी थी, परवाना बही, वि० सं० १७४६/१६८२ ई०, पृ० ४४,४७ गोविन्द अग्रवाल (पूर्व) पृ० २९२

४ महाराजा सूरतसिंह ने साधमुख के ठाकुर नाहरसिंह को शासक विरोधी होने के दण्ड-फलस्वरूप मरवा दिया था व उसके छोटे भाई अमरसिंह को पट्टा प्रदान कर दिया था
—दयालदास ख्यात (अप्रकाशित) भाग २, पृ० ३२२

५ राज्य में सामान्यतः यह प्रथा थी कि एक खांप के ठिकाणे के गांव को छोड़कर अन्य गांवों में हस्तान्तरण कर दिया जाये। इस सन्दर्भ में 'आसामीदार चाकर पट्टायतों' के क्षेत्र में विशेष बात यह थी कि उन गांवों को उसी खांप के दूसरे पट्टायतों को दिया जाता था। अन्य खांप के पट्टायतों को उन गांवों को देने में पहली खांप के अधिकारों व सम्मान का हनन समझा जाता था। बीकानेर के शासकों ने पट्टा प्रणाली द्वारा हर दृष्टि से, सामन्तों के क्षेत्रीय दावों को चुनौती देकर उनकी स्थिति को शासक की कृपा पर निर्भर बनाने के प्रयत्न किये थे। महाराजा अनूपसिंह ने बीदावतों की हरावत शाखा को हटाकर सोभासर का पट्टा दूसरी शाखा मदनावत को दे दिया था। महाराजा सुजानसिंह ने हरासर गांव का पट्टा बीदावतों की तेजसिंहोत शाखा से छीनकर पट्टायत को मरवाकर दूसरी शाखा पृथ्वीराजोत को सौंप दिया था। बीदावतों के पट्टे, पट्टा बही वि० सं० १७२५/१६६८ ई०, नं० ४, वि० सं० १७५३/१६६६ ई०, नं० ७, परवाना बही, वि० सं० १७४६/१६८२ ई०

उसके छुट-भाइयों के लिए नये ठिकाणे बाधना तथा उनके पट्टे के कुछ गांवों को अलग करके दूसरी खाप के ठिकाणे बाधने की प्रथा का भी सामान्यत प्रचलन था।[1] कुछ मामलों में ठिकाणा गांव भी छीनकर दूसरों को दे दिया गया पर, ऐसा बहुत कम हुआ है। शासक के द्वारा अपने अधिकारों के प्रयोग के रूप में, इस प्रकार प्राय ठाकुरों के वंशानुगत अधिकारों को चुनौती दी जाती थी।[2] पट्टायत के विद्रोही हो जाने पर उसके पट्टे के कुछ गांव या कभी-कभी सम्पूर्ण पट्टा ही 'खालसा' कर लिया जाता था। महाराजा सूरतसिंह ने तो राज्य के दो प्रमुख 'ठिकाणों'—चूरू व भादरा को सदैव के लिए 'खालसा' में मिला लिया था।[3] साधारणतया सामन्त के क्षमा मांगने पर अथवा उसके पुत्र को पुन उसका 'ठिकाणा' दे दिया जाता था। इस प्रकार शासक के हस्तक्षेप से पट्टा व्यवस्था के माध्यम से 'आसामीदार चाकर पट्टायतों' के क्षेत्रीय भावों को बहुत सीमित कर दिया गया था। कुछ खापें तो अपना अस्तित्व ही खो बैठी थी।[4]

मुगलों के पतन के काल में, जब शासक किसी भी विपत्ति में केन्द्रीय शक्ति पर अवलम्बित नहीं रह पाया तथा मारवाड़ के आक्रमणों ने उसकी सैनिक दुर्बलताओं को प्रकट कर दिया, तब उसे अपने सामन्तों विशेषकर 'आसामीदार चाकर पट्टायतों' की सहायता पर अधिक निर्भर रहना पड़ा। वंशानुगत अधिकारों से सम्पन्न ठाकुरों ने इसका लाभ उठाते हुए अपनी खोयी हुई शक्ति व प्रतिष्ठा को पुन स्थापित करने के प्रयास प्रारम्भ कर दिये। उन्होंने 'चाकरी' व पट्टा प्रथा तथा उससे होने वाले हस्तक्षेपों का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। वे राज्य-प्रशासन को राठौड़-कुलीय-सिद्धान्त पर पुनर्गठित करना चाहते थे तथा कांधलोत व बीदावत ठाकुर इसके अगुआ थे।[5] बीकानेर शासकों द्वारा अधिकृत

---

१ बीदावतों की खंगारोत शाखा के ठिकाणे लोहा के बहुत से गांव छीनकर बणीरोत, कांधलोत खाप के पट्टेदारों को प्रदान किए गये थे।—बीदावत पट्टे, पट्टा बही वि० सं० १७५३/१६९६ ई० नं ७, परवाना बही वि० सं० १७४९/१६९२ ई०

२ सामान्यत ठिकाणों को 'जब्ती' करके खालसा में मिला लिया जाता था। कुछ उदाहरण दूसरे ठाकुरों को देने के भी हैं। बीका राठौड़ की बाघावत शाखा के पास क्रमश भटनेर, नोहर व मेधाणा के कस्बे व गांव ठिकाणे के रूप में रहे थे। अन्य राजपूत जातियों में सोनगरों के पास बाय का ठिकाणा था जो महाराजा जोरावर सिंह के काल में जब्त कर बीका राठौड़ों को दे दिया गया। धगीव बही वि० सं० १८००/१७४३ ई०

३. दयालदास ख्यात (अप्र०) भाग २, पृ० ३१७-२२

४ बीका खांप में राजावत, रामावत घाघावत व मदनदासोत का अस्तित्व ही मिट गया था।

५ बीकानेर रै राठौड़ा री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघ जी सु० गजसिंघजी ताईं, पृ० ५,७, २५, ३६; मोहता बही, पृ० ६११५, दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० २५८-६६,२६५, ३२२

मुगल परगनो के क्षत्र तथा पूर्वी क्षेत्र के चीरो म खालसा भूमि के विस्तार की अभिलाषा ने प्रभावशाली ठाकुरो की विस्तारवादी महत्वाकाक्षाओ म बाधा उपस्थित की। धीरे धीरे हस्तक्षपो तथा अनेक बाधाओ न उन्ह विरोधी आचरण कता बना दिया।[1] दूसरी ओर मुगल काल म प्राप्त शक्ति व प्रतिष्ठा को शासक भी किसी कीमत पर खोना नही चाहते थ, बल्कि उसे और विस्तृत करने की महत्वाकाक्षायें रखते थ। ऐसी परिस्थितिया मे शासका और सामन्ता के सम्बन्धो म तनाव की स्थिति प्रकट हुइ। शासक की सत्ता को चुनौती देत हुए हरासर, चूरू व भादरा के ठकुरा ने तो स्वतन्त्र इकाई के स्वामी के रूप म व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया।[3] घोडा रख व रुखवाली भाछ का प्रचलन हो जाने से ठाकुरो की परम्परागत सैनिक शक्ति की प्रतिष्ठा को और भी धक्का पहुचा। वे इन करा का भार सहन नही कर पाये[4] जिससे उन्ह विरोधी रख अपनाने के

---

१ परगना भटनर व पूनिया के अधिकतर गाव खालसा मे मिलाये गये थे। पट्टायतो को यह गाव अधिकतर चाकरी पट्ट के रूप मे या मुकात मे दिय गये थे जिन्हें शीघ्रता से वापस लिया जा सकता था। इन परगनो म भादरा व सीधमुख पट्ट के अलावा किसी भी पट्ट को स्थायी नही बनन दिया था। महाराजा सूरतसिंह ने अपने सभी विजित क्षत्र खालसा में रख थे केवल फलोधी क गाव ही चाकरी पट्टे मे अधिकतर भाटी ठाकुरो को प्रदान किये थे।

जब बीदावत बिहारीदास भगचदोत न अपनी शक्ति बढाकर फतेहपुर विजय की योजना बनाई थी तो महाराजा सुजाणसिंह न उसकी शक्ति वृद्धि की आशका से उसे रोक दिया था। अनूपगढ व भटनर के क्षत्र खालसा मे मिला देन से रतनसोत बीका नाराज हुए थ क्योंकि वे इसी दिशा मे अपना प्रभाव क्षत्र विस्तत कर सकते थे सौहर रीणी व पूनिया म खालसा गाव बढान से कांधलोत दुखी हुए थे क्योंकि वे इसे अपना प्रभाव-क्षत्र मानते थे। भादरा ठाकुर लालसिंह के साथ झगडे का एक मुख्य कारण यही था।

—बही हासल भाछ परगना बणीवाल र गाँव री वि० स० १७४५/१६८८ ई० न० २ राजगढ रे पूनीया रे परगन रे हासल लेख री बही वि० स० १७४६/१६६२ ई० न० ६ फलोधी रे जमा खच री बही वि० स० १७५५/१६६८ ई० न० ३२ भटनर हासल री बही वि० स० १७५२/१६६५ ई० न० ११ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंह स महाराजा गजसिंघ जी ताई प० ७१ दयालदास ख्यात (अप्र०) भाग २ प० २६५ २६७ २७२ ७४ ३०२ ३२२

२ दयालदास ख्यात (अप्र०) २ प० ३१५ २२

३ दयालदास ख्यात (अप्र०) २ प० २६५ ३१८ २२

श्री गोविन्द अग्रवाल—चूरू का इतिहास प० २४२ लेखक न उन परवानों को उद्धत किया है जिनमे पता चलता है चूरू के ठाकुर शिवसिंह महाराजा के विरुद्ध स्वतन्त्र आचरण कर रहे थे।

४ सैय्या सग्रह भय्या नथमल का पत्र माघ बदी १० वि० स० १८६१ २५ फरवरी १८०५ ई०

लिए सम्प्रेरित किया।[1] ठाकुरो के विरोध से राज्य म निरन्तर सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई। यहा तक कि शासक के प्रति सदैव स्वामिभक्त रहने वाले, बीकावत ठाकुर भी इन परिस्थितियो मे राज्य के विरोधी हो गये।[2] इन विरोधो के परिणामस्वरूप, शासक की स्थिति इतनी जेय हो गई कि फिर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सन्धि से ही उस सुरक्षित किया जा सका।

चाकरी पट्टायत

राज्य म 'आसामीदार चाकर पट्टायतो' के छुटभाईयो को तथा देशी परदेशी राजपूतो को उनकी सैनिक या प्रशासनिक सेवाओ के बदले 'चाकरी पट्टे' प्रदान किये गये थे। ये पट्टे भी साधारणत वशानुगन होते थे।[3] प्रत्येक नये पट्टायत को पेशकसी चुकाकर अपन वशानुगत अधिकार प्राप्त करने पडते थे। इन पट्टो के मुख्य गाव या अन्य गावो मे शासक मनोवाछित हेर-फेर कर सकता था, यहा तक कि उन्हे छीन भी सकता था।[4] चाकरी पट्टे एक गाव के भी तथा एक गाव के एक वास (भाग या मोहल्ले) के भी हो सकते थे। राज्य म बडे गावो के कई भागो के अलग-अलग चाकरी पट्टायत होते थे।[5] ये लोग 'आसामीदार चाकर पट्टायता सासण या पुनर्थ के गाव नही प्रदान कर सकते थे।[6] इन पट्टायतो के कोई क्षेत्रीय दावे नही थे। इनके द्वारा दी गई अनुदान-भूमि भी स्थायित्व नही रखती थी।[7] पट्टायत केवल 'भोग (माल)' व निर्धारित 'रोकड रकम' (सहायक वसूली कर) वसूल करते थे तथा अपन क्षेत्र म शान्ति व व्यवस्था का दायित्व निभाते थे। 'आसामीदार चाकर पट्टायत' भी चाकरी पट्टे अलग स प्राप्त करते थे, जब उन्हे अपने क्षेत्र स अलग, कोई सैनिक व प्रशासनिक कार्य सौंपा जाता था। उस दायित्व की समाप्ति के साथ या पट्टायत की मृत्यु के साथ उनके गाव राज्य मे मिला लिए जाते थे। ऐसे गावो को 'कपारे गाव' कहा जाता था। यह आवश्यक नही था कि ये गाव पट्टेदार के ठिकाणो के

---

१ कागदो की बही वि० स० १८६६/१८०९ ई०, न १५, पृ० १२४, वि० स० १८७२/१८१५ ई० न० २१ पृ० २२-२६

२ दयालदास ख्यात (अप्र०) पृ० ३१५-२२

३ परवाना बही, वि० स० १७४९/१६८२ ई०, पृ० ४० ५५, पट्टा बही, वि० स० १७५३/१६९६ ई०, पृ० ६० ६६

४ परवाना बही, वि० सं० १७४९/१६८२ ई०, पृ० ५३-५६

५ परवाना बही वि० स० १७४९/१६८२ ई०, पृ० ५२

६ कागदा की बही वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० ८६, वि० स० १८७४/१८१७ ई०, न० २३, पृ० ३०, १५९

७ वही

पास ही स्थित हो।[1] चाकरी पट्टों का भविष्य पूर्णतया शासक की कृपा पर आश्रित था जोकि अधिकांशतः एक पट्टायत के जीवन काल में ही समाप्त हो जाता था। बहुत कम पट्टायत वंशानुगत अधिकारों का प्रयोग कर पाते थे।

आसामीदार व गैर आसामीदार चाकरी पट्टों के अध्ययन में दो बातें विशेषतः परिलक्षित होती हैं। प्रथम, राज्य के सीमा क्षेत्र पर ही शासक के द्वारा इन्हें अधिक पट्टे प्रदान किये थे।[2] सीमा की सुरक्षा के उद्देश्य से सम्भवतः ऐसा किया होगा। द्वितीय, शासकों को मुगलों से तनख्वाह जागीर के रूप में जो परगने उनकी वतन जागीर के समीप के क्षेत्र में प्राप्त हुये थे, उन परगनों में उन्होंने आसामीदार चाकरी पट्टे प्रदान किये थे।[3] कई नये ठिकाणे वहां स्थापित किये थे।[4] कालान्तर में, शासकों ने उन परगनों पर अपना क्षेत्रीय दावा प्रस्तुत करके इन्हें स्थायी रूप से राज्य में मिला लिया था। राज्य के कांधलोतों व विशेषकर बीका सामन्त अधिकतर पट्टे इन्हीं परगनों में प्राप्त करना चाहते थे। यह क्षेत्र अधिक उपजाऊ व समृद्धशाली था। समस्त सामन्त वर्ग में बीका राठौड़ों की दृढ़ स्थिति का एक कारण उनका इस उपजाऊ क्षेत्र पर अधिकार का था। पट्टायत इस क्षेत्र में अधिक से अधिक पट्टे के गांव प्राप्त करने की फिक्र में रहते थे। शासक वर्ग भी इसी क्षेत्र में खालसा भूमि का अधिकाधिक विस्तार करने का प्रयास करता था। महाराजा सूरतसिंह द्वारा भादरा को खालसा में मिलाने के पीछे यह भी एक उद्देश्य था। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है शासक व सामन्तों के बीच तनाव का यह एक मुख्य कारण बना।

कामदारों-हजूरियों के पट्टे

पट्टा प्रणाली केवल सैनिक सेवा तक ही सीमित नहीं थी बल्कि प्रत्येक प्रकार की चाकरी के वेतन के रूप में भी पट्टे प्रदान करने का प्रचलन था। ये 'रिजक पट्टे' कहलाते थे। राज्य के मुत्सद्दियों में प्रमुख मन्त्रियों व अधिकारियों को उनकी चाकरी व वतन के रूप में, कुछ नकद वेतन के साथ, पट्टे की आय

---

१ अनूपगढ़ भटनेर पूनीया हिसार व फलोधी के क्षेत्रों में पट्टायतों की फौजदार के रूप में नियुक्ति की गई थी व उसके बदले उन्हें चाकरी पट्टे दिये गये थे।

—पट्टा बही वि० स० १७५३/१६९६ ई० पृ० ११ २६ ३८ ४४ ५०

२ देखिये पट्टेदारी क्षेत्र का मानचित्र

३. राज्य का प्रसिद्ध ठिकाणा मान्धू नोमा व भादरा पूनिया व रणीवाल परगनों में स्थित थे—परवाना बही वि० स० १७४६/१६८२ ई० पृ० २५-२७ पट्टा बही वि० स० १७५३/१६९६ ई० पृ० ८ ९ आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृ० ६० दयालदास ख्यात (अप्र०) २ पृष्ठ २६३

४ उपयुक्त

भी वेतन मे सम्मिलित की जाती थी ।[1] राजा के निजी सेवक-हजूरियो तथा विभागो के कार्याध्यक्षों (फौजदार) को भी वेतन-भोगी पट्टे दिये जाते थे।[2] मुत्सद्दियों, कामदारो तथा हजूरियों के पट्टे 'भीतरलो' साथ के गाव कहलाते थे। ये पट्टे केवल चाकरी काल तक के लिए दिए जाते थे । इन पट्टों का हस्तान्तरण भी होता रहता था ।[3] केवल हजूरियो म कुछ गाव आसामीदार पट्टों के गाव थे ।[4] कामदारो व हजूरियो के मुख्य गावो को ठिकाणा नही कहा जाता था , क्योंकि न तो वश की दृष्टि से तथा न किसी क्षेत्रीय दावे की दृष्टि स, ये पुराने तथा नये पट्टायतो के समकक्ष समझे जाते थे । ये राज्य के सेवक होते थे । अपने पट्टे में से ये कोई 'सासण' या परिवार के व्यक्ति को, गाव दे नही सकते थे ।[5] इनके पट्टे वेतन भोगी थ व पट्टा के बल पर राज्य के सामन्त वर्ग मे इनका कोई स्थान नही था । कामदार पट्टायतो की स्थिति कुल पट्टों मे सन् १६२५ ई० म १ ७५ प्रतिशत ही थी, जोकि सन् १६५७ ई० म बढकर २ ५६ प्रतिशत हो गयी । सन् १६८५ ई० मे २ ४३ प्रतिशत थी जो सन् १८१८ मे ३ ४५ प्रतिशत हो गयी । महाराजा गजसिह व सूरतसिह ने कामदारो को अधिक पट्टे दिये थे ।[6] कुल 'भीतरलो' साथ पट्टों की स्थिति कुल पट्टों मे सन् १६२५ मे ३ ८१ प्रतिशत थी जो सन् १६५७ ई० मे घटकर २ ५६ प्रतिशत रह गयी और सन् १६६८ ई० म तो यह १ ०४ प्रतिशत ही थी । सन् १८१८ ई० मे इनकी स्थिति ५ ३६ प्रतिशत होने के कारण सन्तोषजनक हो गयी थी । प्रति पट्टायत इनके पास एक से कम गाव आता था ।

वेतलब पट्टे

राज्य के कुछ चाकरी पट्टे जीविका निर्वाह हेतु प्रदान किए थे, जहां से राज्य-प्रशासन किसी प्रकार का कोई कर वसूल नही करता था । उस पट्टे की सारी आय पट्टायतों की हो जाती थी । वेतलब पट्टे विभिन्न व्यक्तियों को प्रदान किये गये थे जो उन्ही के नाम पर विख्यात हुए थे । वे पट्टे निम्नांकित थे .

---

१ कामदारों के पट्टे-पट्टा वही, वि० सं० १६६२/१६३५ ई०, न० २, वि० स० १७२५ १६६८ ई०, न० ५, वि० स० १७५३/१६६६ ई०, न० ७

२ हजूरियों के पट्टे—उपर्युक्त

३ उपयुक्त

४ गाव बेरासर, बयन्नु, उदरामसर हजूरियो के स्थाई प्रकृति के गांव थे, जहां वे वशानुगत अधिकारों का प्रयोग करते थे

५ कागदा की वही जेठवद ८, वि० स० १८५६/२४ मई १८०२ ई० न० १२

६ कामदारो के पट्टे, हजूरियों के पट्टे—परवाना वही वि० स० १८००/१७४३ ई०, देशदर्पण पृष्ठ १४७ ५२

राजलोकों के गाव

जब दरबार की ओर से, शासक के निजी सम्बन्धियों को, उनकी जीविका व सम्मान को बनाए रखने हेतु पट्टे प्रदान किये जाते थे, तो वे 'राजलोको के गाव' कहलाते थे। इनमें कुवरो के पट्टे' जोकि राजा के पुत्रो को दिये जाते, 'जनाना पट्टे' जो कि मुख्यत महारानियो व रानियो को दिये जाते थे तथा भाईयो के पट्टे जो राजा के भाई व उनके पुत्रों को दिये जाते थे, मुख्य थे।[1] कुल पट्टो मे इनकी स्थिति १ ५६ प्रतिशत स ज्यादा कभी नही बढ पाई। 'वेतलब पट्टो' मे इनकी स्थिति १२ ४ प्रतिशत से अधिक नही थी। केवल सन् १८१८ ई० क लगभग ये राज्य के कुल पट्टो मे ४ ७२ प्रतिशत थे, तथा वेतलब पट्टो मे इनकी स्थिति १३ ८७ प्रतिशत थी।

सासण व पुनर्थ के गाव

राज्य दरबार, विभिन्न धर्मावलम्बियो, शिक्षा-शास्त्रियो तथा धार्मिक कृत्यो से सम्बन्धित लोगो को धर्म व पुनर्थ के अनुदान के रूप मे, पट्टे के गाव देता था। साधारणतया ये पट्टे ब्राह्मणो चारणो व सन्यासियो को दिये जाते थे।

इसी भाति, राज्य के कुछ प्रसिद्ध मन्दिरो का खर्चा चलाने हेतु कुछ पट्टे दिये जाते थे, जो 'मन्दिरात के पट्टे कहलाते थे।[2] ऐसे पट्टो की स्थिति, कुल पट्टो मे सन् १६२५ ई० म ० ८३ प्रतिशत थी। सन् १६६८ ई० मे बढकर ३ १३ प्रतिशत थी और सन् १८१८ ई० मे बढकर यह ५ ४७ प्रतिशत हो गयी। महाराजा सूरतसिह द्वारा, ब्राह्मणो को काफी सख्या म पट्टे प्रदान करना ही इस बढोतरी का प्रमुख कारण था।

व्यावसायिक पट्टे

राजमहल अथवा दरबार की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु जो व्यावसायिक जातिया विभिन्न कार्य करती थी, उनको भी 'वेतलब' पट्टे दिये जाते थे। इन पट्टेदारो म सुथार, सुनार व उस्ते चित्रकार मुख्य थे।[4]

---

१ प्रत्येक पट्टा बही राजलोक पट्टा से ही प्रारम्भ होती है। विस्तृत अध्ययन के लिए—परवाना बही वि० स० १७४६/१६८२ ई०, पृष्ठ २ २६

२ सांसण पुनर्थ व मन्दिरात के पट्टे, पट्टा बही, वि० स० १६८२/१६२५ ई०, न० १, वि० स० १७२५/१६६८ ई०, न० ५, वि० स०१७५३ ई०, न० ७—विस्तृत अध्ययन के लिए —परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृष्ठ ७२ ८६

३ परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृष्ठ ७२ ८४

४. उपर्युक्त—पृष्ठ ६० ६४

अधिकार एवं कर्तव्य

राठोड़-कुल-परम्पराओं के प्रभावशाली होने के समय सामन्तगण अपने क्षेत्र में विस्तृत अधिकारों का उपयोग करते थे। अपने क्षेत्रों में प्रत्येक सामन्त वस्तुतः शासक का प्रतिरूप होता था। वह अपने खाप-परिवार का 'पाटवी' होने के कारण, सारी 'जमीयत' को अपने झण्डे के नीचे एकत्रित करता था। वह अपने क्षेत्र में फौजदारी व दीवानी का मुख्य *न्यायाधिकारी होता था तथा* क्षेत्र के सम्पूर्ण कर, उसके खजाने में जमा होते थे। वह अपनी भूमि पर वंशानुगत अधिकारों का प्रयोग करता था। तथा उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझता था। स्वयं को राज्य का बराबर भागीदार मानता था।[1] वे गढ़ व राज्य, अपने बुजुर्गों का मानते थे।[2] इस प्रकार उनके अपने पट्टे के क्षेत्र व राज्य में निश्चित वंशानुगत क्षेत्रीय दावे थे। पट्टा प्रथा के आगमन ने उनके इन सामन्त अधिकारों को बहुत सीमित कर दिया। राज्य के वे 'चाकर' बन गए थे तथा अपने पट्टे के क्षेत्र में भी *अधिकारों का उपयोग, निर्धारित सेवाओं तथा शर्तों को मानने* के बाद ही कर पाये। 'आगामीदार चाकर' पट्टायत भी, विशेष परिस्थितियों में जब्ती के सिद्धान्त से मुक्त नहीं थे। सामान्य परिस्थितियों में शासक, ठिकाणे में उनके अधिकारों को सम्मान देता था। पट्टायत अपने क्षेत्र के फौजदारी मामलों का मुख्य *न्यायाधीश* होता था पर वह मृत्यु दण्ड तथा गुनेहगारों की सजा नहीं दे सकता था।[3] दीवानी मामलों में महाराजा के नाम पर राज्य के दीवान का, उसके क्षेत्र पर हस्तक्षेप होता था।[4] पट्टायत गाव के आसामियों के भूमि अधिकारों में दखल नहीं दे सकता था।[5] वह साथ ही एक बार दी गयी अनुदान की भूमि को छीन नहीं सकता था।[6] वह 'जगात' वसूली के अधिकार रखता था पर राज्य उससे यह अधिकार छीन भी सकता था।[7] चाकर पट्टेदारों को तो ऐसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं होते थे। पट्टायत को 'वैवाहिक सम्बन्धों'

---

१ बीकानेर रै धणीयां री याद—पृष्ठ १०-१४, राठौडा री वंशावली तथा पीढ़िया, पृ० ४०-४३, बीकानेर रै राठौडा री ख्यात सीहैंजी सुं, पृ० १०१-४

२ मूकरका के ठाकुर कुशलसिंह ने यह शब्द महाराजा जोरावरसिंह को जोधपुर आक्रमण के समय कहे थे।—बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सु महाराज गजसिंघजी तांई, पृ० ७, दयालदास ख्यात (अप्रकाशित) २, पृष्ठ २६६

३ कागदों की बही, वि० स० १८६७/१८१० ई०, न० १७ पृष्ठ २४४

४ उपर्युक्त, पृष्ठ ६७, ८४

५ उपर्युक्त वि० स० १८५७/१८०० ई० न० ११, पृष्ठ २०८

६ उपर्युक्त, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११ पृष्ठ ८६, वि० स० १८७४, १८१७ ई०, न० २३, पृ० १५६

७ पट्टा बही, वि० सं० १७५३/१६९६ ई०, न० ७ पृष्ठ ६-९

के लिए भी शासक की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करनी होती थी।[1]

'ठिकाणेदारो' को अपने सिक्को के प्रचलन का कोई अधिकार नही था।[2] आमामीदार चाकर पट्टेदार अपने क्षेत्र मे सासण की भूमि तथा अपने छुटभाईयो को गाव प्रदान कर सकते थे।[3] कुछ ठाकुरो को 'शरणा' के अधिकार भी प्राप्त थे।[4] पट्टेदार अपने पट्टे को 'गेहण' पर रखने का अधिकार भी रखते थे।[5] अपने द्वारा किये गये अपराध के लिए वे किसी भी अदालत मे उपस्थित नही होते थे। अपराधो के लिए उन्हे सामान्यत चेतावनी दी जाती थी दण्ड नही दिया जाता था।[6] इस प्रकार केवल उनकी नैतिकता को ही जगाने का प्रयत्न किया जाता था। भयकर अपराधो के लिए अवश्य शासक उन्हे कठोर दण्ड से दण्डित करता था।[7] सामन्तो को गोद लेने का अधिकार था, हालाकि इसके लिए उन्हे शासक की पूर्व अनुमति लेनी पडती थी व अग्रिम पेशकसी की रकम देनी पडती थी।[8] पट्टेदार को अपने क्षेत्र मे भू राजस्व वसूल करने व उसकी दर-निर्धारण की पूरी स्वतन्त्रता होती थी। इस बात का उसे ध्यान रखना होता था कि कर प्रणाली जनता पर अत्याचारिता का प्रभाव नही छोडे [9] ऐसा होने पर फिर शासक हस्तक्षेप करता था।[10] चाकरी पट्टो मे, पट्टायत के अधिकार, इस दिशा मे बहुत सीमित थे।[11] वह दीवान द्वारा भेजे गये नियमो का ही पालन

---

१ सोहनलाल-तवारिख राज श्री बीकानेर, पृष्ठ ३०३ ६

२. उपर्युक्त

३ राठोड़ा री वशावली नैं पीढिया नैं फुटकर बाता, पृष्ठ ६०, देशदर्पण, पृष्ठ ६४-१०१, गोविन्द अग्रवाल, चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास, पृष्ठ १६८ २३२

४ मण्डलावत ठाकुरो को यह अधिकार प्राप्त था। सगतसिह मडलावत राठौड और सारूडा, राजस्थान भारती, पृ० ६६, अक ३ ४, १६७६ ई०, बीकानेर इस अधिकार के अन्तर्गत वे किसी भी अपराधी को अपने यहा शरण दे सकत थे

५ कागदा की वही, वि० स० १८६६/१८०६ ई०, न० १७ पृष्ट ८४, सोहनलाल (पूर्व), पृष्ठ ३०५

६ कागदो की बही, वि० स० १८६७/१८१० ई०, न १६, पृष्ठ ३३

७ उन्हे केवल चेतावनी दी जाती थी तथा अगले जन्म के बुरे परिणामो से अवगत कराया जाता था। उपर्युक्त, वि० स० १८५७, १८०० ई०, न ११ पृष्ठ २२७

८ सोहनलाल (पूर्व), पृष्ठ ३०५

६ प्रत्येक पट्टेदार का यह निर्देश दिया जाता था कि वह करो का निर्धारण न्यायसगत ढग से करेगा। परवाना वही, वि० स० १७४६/१६६२ ई०, पृष्ठ १४ १८

१० कागदो की बही वि० स० १८५७/१८००, न० ११, पृष्ठ ६१, १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृष्ठ ४-५

११ चाकरी पट्टेदार के पास भू राजस्व निर्धारण व न्याय के अधिकार नही थे। वह गुनेहगारी भी किसी पर नहीं लगा सकता था तथा निर्धारित दरो व करा को ही वसूल करता था कागदो की बही, वि० स० १८६७, १८१० ई०, न १७, पृष्ठ २४४, वि० स० १८७४/१८१७ ई०, न० २३, पृष्ठ १५६

करता था। पट्टायत अपने पट्टे के क्षेत्र का सैनिक बल पर शत्रु के क्षेत्र में विस्तृत कर सकता था, पर इसके पूर्व उसे महाराजा की स्वीकृति लेनी पड़ती थी।[1]

पट्टायत के मुख्य कर्तव्य उसके पट्टे में ही लिखे होते थे। उसका प्रमुख कर्तव्य राज्य की सैनिक सेवा करना होता था, जिसके विवरण की सूचना पट्टे में कर दी जाती थी। इसके अलावा उसके महत्त्वपूर्ण कर्तव्य, अपने पट्टे में करों को वसूल करना तथा आबादी को बनाये रखना होता था। किसी विशेष प्रशासनिक दायित्व को पूरा करने के लिए जब पट्टायत की नियुक्ति की जाती थी उससे यह आशा की जाती थी कि वह उन्हें निष्ठा से निभायगा।[2] राज्य की समस्त सीमाओं की सुरक्षा का दायित्व सामन्तों पर था।[3] महाराजा की अनुपस्थिति में राजधानी गढ़ की देखभाल व सुरक्षा का उत्तरदायित्व का कार्य भी इन्हीं में किसी को सौंपा जाता था।[4] प्रत्येक ठाकुर को अपने कार्यों की सूचना शासक को देनी होती थी।[5] दरबार के सभी महोत्सवों पर उन्हें सम्मिलित होना पड़ता था। दशहरा तथा शासक के जन्म दिवस के उत्सव पर इनमें से कोई भी अनुपस्थित नहीं रह सकता था।[6]

सामन्तों को राज्य प्रशासन के विभिन्न प्रशासनिक उत्तरदायित्व सौंपे गये थे। मन्त्रिमण्डल में मुसाहिब के पद पर श्रगोत बीका ठाकुर पृथ्वीराज व कुशलसिंह की नियुक्ति हुई थी। ठाकुर पृथ्वीराज ने महाराजा स्वरूपसिंह की बाल्यावस्था व दक्षिण में नियुक्ति के कारण राज्य-प्रशासन को संभाला था।[7] ठाकुर कुशलसिंह ने दीवान मोहता बख्तावरसिंह के साथ मिलकर, महाराजा जोरावरसिंह की मृत्यु हो जाने के पश्चात शासक के अभाव में, राज्य-प्रशासन का संचालन किया था।[8] मुख्य सेनापति के रूप में भी सामन्तों की नियुक्ति होती रहती थी।[9] जोधपुर नरेश अभयसिंह बीकानेर आक्रमण के समय ठाकुर कुशल-

---

१ यह स्थिति भी पुराने जागीरदार पट्टायतों की थी। रतनसीत बीका राठौड़ों ने सदैव, अपने पट्टे के उत्तर की ओर विस्तार किया था। कायमखानियों की दखल हिसार जिले में रही थी। परवाना बही वि० सं० १७८६/१६८२ ई०, नं० ७-१०

२ वही

३ सीमा क्षेत्र पर स्थापित इनके ठिकाणों से यह स्थिति स्पष्ट होती है। देखिये—पट्टेदारी क्षेत्र का मानचित्र ६

४ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० २३२, ३१४ ३२२

५ सोहनलाल (पूर्व) पृ० ३०९-१०

६ उपयुक्त, ३०४-१०

७ बीकानेर री ख्यात, महाराजा सुजाणसिंह सूरजसिंघजी ताई, पृ० २-६

८ उपर्युक्त पृ० ३८-३९

९ उपर्युक्त

सिंह बीकानेर सेना का सेनाध्यक्ष था।[1] इसके अलावा मुगल जागीरी परगनों में फौजदार के पद पर,[2] राज्य के थाणों व मुख्य किलों पर किलेदार फौजदार व हवलदार के पद पर भी ये लोग नियुक्त किये जाते थे।[3]

प्रशासनिक व्यवस्था

अपने क्षेत्र में, प्रमुख होने के कारण ठाकुर अनगिनत प्रशासनिक व सैनिक शक्तियों का प्रयोग करता था। अपने पट्टे के क्षेत्र में प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिये वह कई अधीनस्थ अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति करता था।[4] उससे यह आशा की जाती थी कि वह अपने क्षेत्र में आय की वृद्धि करेगा तथा आबादी को बढ़ायेगा। पट्टेदार के दो मुख्य प्रशासनिक दायित्व होते थे—करों को वसूल करना तथा शान्ति व सुव्यवस्था बनाए रखना। इन दोनों दायित्वों की पूर्ति के लिये जो प्रमुख अधिकारी नियुक्त किया जाता था उसे 'प्रधान' कहा जाता था, जिसकी नियुक्ति शासक की पूर्व स्वीकृति पर निर्भर करती थी। यद्यपि प्रत्येक ठिकाणे में प्रधान का पद नहीं होता था, फिर भी कतिपय प्रमुख ठिकाणों में इसकी नियुक्ति पाई जाती है।[5] कई प्रमुख ठिकाणों में तो महाराजा स्वयं प्रधान की नियुक्ति करता था। प्रधान से यह आशा की जाती थी कि वह अपने ठाकुर के प्रति स्वामिभक्त रहेगा।[6] प्रधान ही शासक व पट्टायत के बीच तथा पट्टायत व अधीनस्थ अधिकारियों व कर्मचारियों के बीच की कड़ी होता था। शासक के मंत्रियों व अधिकारियों के साथ मिलकर वह पेशकसी व अन्य कर निर्धारित करता था। ठाकुर की तरफ से महत्त्वपूर्ण कूटनीतिक व राजनैतिक निर्णय लेता था। अपने पट्टायत के लिए अन्य पट्टायतों के पास बातचीत करने के लिए जाता था। केन्द्रीय प्रशासन द्वारा पट्टे के क्षेत्र की आय का विवरण मांगने पर प्रस्तुत करता था। पट्टायत के लिए उसके छुट-भाईयों से पेशकसी की रकम वसूल करता तथा अन्य करों

---

१ उपर्युक्त, पृ० ७

२, परवाना बही, वि० स० १७४६/१६९२ ई०, पृ० ८ १०

३ परगना रे जमा खरच री बही वि० स० १७५०/१६९३ ई० न० ३२ औरंगाबाद करणपुर रे जमा खरच री बही, वि० स० १७६८/१६११ ई० न० १३१ सावा बही अनूपगढ़, वि० स० १७५५/१३९८ ई०, न १, सावा बही रीणी वि० स० १८१४/१७५७ ई० न० १ रामपुरिया रिकार्डस, बीकानेर

४ भैंय्या संग्रह—भाटियां रै गावां री विगत वि० स० १८४६/१७८२ ई०

५ परवाना बही, वि० स० १७४६/१६९२ ई०, पृ० ५१ ५४, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० १११ १३

६. महाजन के प्रधान की नियुक्ति स्वयम् शासक करता था—परवाना बही, वि० स० १७४६/१६९२ ई०, पृ० २४-२६

को निर्धारित करता था।[1] ठिकाणों म कभी-कभी प्रधान के साथ या कभी अकेले मत्री पद की भी नियुक्ति की जाती था, जिसका कार्य प्रधान को सहयोग देना अथवा ठिकाणे मे प्रधान पद के न होने पर उसके दायित्वो को निभाना होता था।[2] ये प्रधान व मत्री ठाकुर के साथ-साथ महाराजा से भी सम्मानित होते थे।[3]

ठिणाणे मे विभिन्न करो की वसूली के लिए कामदार, साहणा, खजान्चो, दरोगा तथा उनके तावीनदारो की नियुक्ति की जाती थी। कामदार का कार्य, दफ्तर के हवलदार तथा गावों के हवलदारो के समान था। वह भूमि का मापन, कर निर्धारण व कर वसूली का कार्य करता था। साहणी, दरोगा उस इस कार्य मे सहयोग देते थे। गाव का चोधरी व पटवारी स्थानीय अधिकारी होते थे, जो कामदार को खालसा गाव के हवलदार की भाति सहयोग प्रदान करते थे। कामदार और चौधरी दोनो मिलकर चीरो के हवलदार को कर वसूली मे सहायता देते थे।[4]

पट्टा क्षेत्र मे कानून-व्यवस्था स्थापित करने के लिए फौजदार की नियुक्ति की जाती थी, जिसका प्रमुख सहयोगी दरोगा होता था। ये फौजदार अपनी जमीयत की सेना नियुक्त करता था।[5] इसके अलावा गाक के ढेढ, थोरी[6] आदि गाव के नौकर होते थे, जो पट्टायत की छोटी-मोटी आवश्यकताओ को निभाने का तथा सदेशवाहक का कार्य करते थे।[7] चीरो मे स्थित, थाणों, के फौजदार का इन पर नियन्त्रण रहता था तथा विपत्तिकाल मे चीरो का फौजदार, पट्टे के क्षेत्र मे, आकर व्यवस्था स्थापित करता था।[8]

---

१ दलपत बिलास, पृ० ४०, ५१, ५४, ६८, परवाना बही, वि० स० १७४६/१६६३ ई०, पृ० १० २२, कागदो की बही, वि० स० १८३८/१७८१ ई०, न० ५, पृ० ४६, मंथ्या सग्रह नयमलपत्र माघ बदि १०, वि० स० १८६१/२५ फरवरी, १८०५ ई०
२ बीकानेर री ख्यात, महाराजा सुजाणसिंघ सू गजसिंघजी ताई, प० ३१,४७ ८४
३ परवाना बही, वि० स० १७४६/१६६२ ई०, पृ० २१, २८, ५३
४. कागदा री बही, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० १८७, २४८, वि० सं० १८६३/१८०४ ई०, न० १४, पृ० ११४, वि० स० १८६६/१८०९ ई०, न० १५, प० २६१
५ सावा बही रीणी वि० स० १८१४/१७५७ ई०, न० १, सावा बही मनूपगढ़ वि० स० १८१८/१७६१ ई०, नं० २
६ समाज के निम्नवर्ग (कमीनात्) के लोग
७ वही
८. कागदा की बही, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० ६१, १०७, १२४

चतुर्थ अध्याय

केन्द्रीय प्रशासन व मुत्सद्दी-वर्ग

मध्यकाल मे, राठौड जाति को ही इस बात का श्रेय है कि उन्होने इस रेतीले क्षेत्र की, अपनी सम्बोधित करने वाली प्रशासनिक-एकता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, एक दृढ केन्द्रीय सत्ता को स्थापित करने का प्रयास किया। यद्यपि आरम्भिक वर्षों मे, अपनी लचीली सघीय बनावट के कारण केन्द्रीय सगठन प्रभावशाली नही हो पाया, लेकिन शनै शनै राज्य म शासन की स्थिति दृढ होने के साथ-साथ यह सुसगठित हुआ और प्रभावी ढग से कार्य करने लग गया।

राज्य के प्रथम पाच शासकों के समय प्रशासन का स्वरूप व प्रभाव कुल परम्परा के अनुसार कुलपति व उसके सम्बन्धियो के पारस्परिक सम्बन्धो पर आधारित थी। राजा व सामन्तो के बीच एक विरल राजनैतिक जोड ही केन्द्रीय सत्ता की कमजोरी का उद्गम था। केन्द्रीय सत्ता केवल कुलपति के क्षेत्र म ही प्रभावशाली थी। अन्य क्षेत्र की इकाइया विभिन्न राठौड कुल मुखियो के पास थी, जहा वे अपना प्रशासन स्वतन्त्रतापूर्वक तथा सुविधानुसार चलाते थे। इस प्रकार राज्य एक ढीली सघीय व्यवस्था पर टिका हुआ था।

छठे शासक, राजा रायसिह के समय, सर्वप्रथम इस क्षेत्र की केन्द्रीय सरकार की शक्तियो को सुदृढ करने के प्रयत्न प्रारम्भ हुए थे। वह और उसके उत्तराधिकारी बीका राजवश के नेतृत्व मे प्रशासनिक एकता व दृढता लाने के लिए कटिबद्ध थे। मुगल सम्प्रभुता की मान्यता ने उन्हे विदेशी आक्रमण से सुरक्षा व आन्तरिक विद्रोहो के विरुद्ध सहायता व समर्थन प्रदान किया, जिससे उन्हे यह अवसर मिला कि वे अपनी शक्तियो को राज्य की राजनीतिक सस्थाओ के विकास म जुटा सकें। राज सत्ता के विद्रोहियो के दमन स राज्य मे शान्त वातावरण तैयार हुआ। मुगल साम्राज्य मे, विभिन्न उत्तरदायी प्रशासनिक पदो पर बीकानेर के शासको की नियुक्ति ने, उनका मुगल प्रशासन स सीधा सम्पर्क स्थापित कर दिया, जिससे प्रभावित होकर उन्होने अपने राज्य मे भी प्रभावी मुगल नियमो को लागू किया।[1] मनसबदार के रूप मे,

---

१ दलपत विलास पृ० २३ अकबरनामा, भाग ३ पृ० ४६० ६४ ५११ ५२२ २४

मुगल जागीरो से प्राप्त आय तथा शाही अभियानो मे भाग लेने से उन्हे जो लूट की सामग्री प्राप्त हुई,[1] इससे उत्पन्न समृद्धि ने विदेशियो को आकर्षित किया कि वे यहा आकर बसें, जिसके परिणामस्वरूप राज्य को कुशल एव योग्य प्रशासनिक अधिकारी प्राप्त हुए।[2] राज्य की समृद्धि ने धर्म, साहित्य व विभिन्न कलाओ को विकसित होने का अवसर प्रदान किया, जिससे राज्य के प्रशासन का स्वरूप बदलने लगा।[3] अन्तत राजा के पद की गरिमा व उसकी शक्ति, इस काल मे दृढता से स्थापित हो गयी। अत. राज्य एकतन्त्रीय सरकार की विशेषताओ की ओर तेजी से, प्रभावशाली ढग स बढने लगा था।

मुत्सद्दी

राज्य मे एकतन्त्रीय सरकार स्थापित होने का सबसे बडा लाभ यह हुआ कि स्थानीय चेष्टाओ को कुचलती हुई दृढ केन्द्रीय सत्ता का विकास हुआ तथा प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक नये प्रभावशाली वशानुगत अधिकारी तन्त्र का जन्म हुआ। नये वर्ग के सदस्य 'मुत्सद्दी'[4] के नाम से विख्यात हुए। इस वर्ग से ही राज्य के मत्री, अधिकारी व कर्मचारी नियुक्त किये गये।[5] इससे पूर्व 'मुत्सद्दी' थे अवश्य पर वे राज्य के कुलीय ढाचे के फलस्वरूप कमजोर व बटे हुए थे।[6] १६वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे विभिन्न सस्थाओं के विकास तथा केन्द्रीय सेवाओ का रूप निर्धारित होने से इस वर्ग को परिस्थितियोवश मिलने वाली प्रभावशाली एकरूपता का आभास हुआ। राजा रायसिह ने केन्द्र व स्थानीय स्तर पर अनेक नये विभाग खोले तथा मत्री

१. टैसीटोरी—ज० ए० सो० ब० एन० एस० XVI, एपढिक्स, सूरजपोल प्रशस्ति, जूनागढ़, बीकानेर

२ दयालदास ख्यात (प्र०) भाग २, पृ० ११६, १२२, १२६-२७, राजा रायसिह ने नागौर से आये कोठारी तिलोकसिह को कारखानो का अध्यक्ष नियुक्त किया था

३ कर्णावितस, पृ० १७-१६

४. मुत्सद्दी का शाब्दिक अर्थ प्रबधक, अभिकर्त्ता, गुमाश्ता, लिपिक व हिसाब-किताब रखने वाले से है, लेकिन बीकानेर राज्य मे इस शब्द का प्रयोग प्रशासनिक वर्ग के लिये प्रयुक्त किया गया है। उर्दू-हिन्दी शब्दकोष, पृ० ५१०, उत्तर प्रदेश हिन्दी सस्थान, लखनऊ, १७७७

५. राज्य प्रशासन में प्रशासकीय वर्ग के लिये मुत्सद्दी शब्द का प्रयोग १७वी शताब्दी के अन्त में अधिक प्रचलित हुआ है, अन्यथा कामदार शब्द का ही अधिक प्रचलन था। ख्यातों में सदैव इस सदर्भ मे मुत्सद्दी शब्द का ही प्रयोग आया है।—बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिघजी सूं गर्जसिघजी ताई, पृ० ३८; मोहता ख्यात, पृ० ५७ नियुक्ति के लिये इन स्रोतो के साथ देखिये कामदारी पट्टे, परवाना बही न० १ तथा हवाला कागद, कागदों की बही न० ३, ५, १०, ११

६ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ३४-३६

व अधिकारी पदों के दायित्वों को बाटकर नई नियुक्तिया की ।[1] ठकुराई क्षेत्र केन्द्रीय सत्ता की देख-रेख म आया तथा वहा की आय के स्रोत दीवान के विभाग के निरीक्षण मे आये । ठकुराई क्षेत्र मे विभिन्न करो को वसूल करने तथा राजा के हितो की देख रेख के लिए केन्द्र की तरफ से वहाँ अधिकारी व कर्मचारी नियुक्त किय गये । राज्य की भूमि खालसा व पट्टा क्षेत्रो मे न बांट कर नई प्रशासनिक इकाइयो—'चौरा' म बाट दी गई, जिसके फलस्वरूप खालसा व पट्टा दोनो के गाव एक साथ केन्द्र द्वारा गठित सामान्य प्रशासन के अन्तर्गत आ गये ।[2] इन सब परिवर्तनो ने जहा 'मुत्सद्दी' वर्ग के सदस्यो की सख्या बढाई वहा साथ-ही साथ उन्हे शक्ति व वर्ग एकता भी प्रदान की शासको ने भी प्रशासन की कार्यकारिणी के सदस्यो के बढते हुए महत्त्व को मान्यता दी तथा साथ ही उनका राजनीतिक लाभ भी उठाना चाहा । उन्होने सामन्तो की शक्ति को नियन्त्रित करने के लिए सतुलन की नीति पर चलते हुए उनके विरुद्ध 'मुत्सद्दी' वर्ग को प्रोत्साहन दिया,[3] फलस्वरूप राज्य मे राजा व सामन्तो के पश्चात् एक तीसरी शक्ति के रूप मे 'मुत्सद्दी' उभरे । इस प्रकार मध्ययुगीन निरकुश राजतन्त्र से अधिकारी तन्त्र की उत्पत्ति सम्भव हुई ।

समकालीन राजनीतिक व प्रशासनिक परिस्थितियो ने भी मुत्सद्दियो के प्रभाव की वृद्धि मे सहायता दी । बीकानेर शासको की दूरस्थ मुगल क्षेत्र मे नियुक्ति के समय उनकी अनुपस्थिति मे मुत्सद्दियो पर ही 'वतन जागीर' के प्रशासन का उत्तरदायित्व आ पडा ।[4] मुगल दरबार मे शासको की अनुपस्थिति मे 'वकील' के रूप मे उनके हितो की देखभाल भी यही करने लगे ।[5] इनको सुपुर्द सैनिक दायित्वो ने भी इनकी शक्ति व क्षमता बढाई ।[6] पर सबस बढकर जैसा कि लिखा जा चुका है, राजा व सामन्तो के बीच उनके कुलीय अधिकार को लेकर व्याप्त असन्तोष व तनाव ने राजा को विवश किया कि वह इन मु

१ वही, पृ० ११६-२२

२ चौरा सेखसर रे लेखे री बही वि० सं० १७४७/१६६० ई० न० ६१ चौरा नोहर लेखे री बही वि० स० १७५०/१६६३ ई०, न० २८—बीकानेर बहीयात, रा० रा अ० बी०

३ इस दिशा मे राजा रायसिह व महाराजा अनूपसिह व गजसिह की नीति विशेष उल्लेख नीय है—दयालदास ख्यात (प्र०), पृ० ११७-२२, २११-१३, जी० एस० एल० देवडा ब्यूरोक्रेशी इन राजस्थान, पृ० XIV, ८

४ महाराजा अनूपसिंघजी रो आनदराम नाजर रै नाम परवानो वि० स० १७४६/१६६ ई० न० १६७/१६ अ० स० पु० बी०

५, कामदारो व वकीला रै रोजगार री बही, वि० स० १७५३/१६६६ ई०, न० २०६ बीकानेर बहीयात, रा० रा० अ० बी०

६ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृ० २११-१३

अधिक विश्वास करे।[1]

मूलभूत रूप से मुत्सद्दी वतनभोगी सवक थे तथा साधारणत इस काल के समाज के मध्यम वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करते थे। यद्यपि इन्हे अपनी सेवाओ के बदले शासकों द्वारा 'पट्टे' भी प्रदान किये गये थे[2] पर इन जागीरों के बल पर इन्हे मध्ययुग के प्रसिद्ध भू अभिजाततंत्र म सम्मिलित नही किया जा सकता। ये पट्टे न तो वशानुगत होते थे और न ही मुत्सद्दियों का राजपूत सामन्तो की तरह पट्टे के क्षेत्रो पर कोई विशेष भू-स्वत्व अधिकारो का दावा होता था।[3] उन्हे 'आसामीदार चाकर पट्टायतो' की भाति अपने पट्टे के आन्तरिक प्रशासन मे भी किसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नही होती थी।[4] ये पट्टे उनके वेतन के भाग होते थे तथा सेवाकाल से जुडे रहते थे।[5]

राज्य सेवाओ मे मुगल मनसब की भाति किसी प्रकार का वर्गीकरण नही था।[6] यह तो सेवादायित्वो के बीच अन्तर था जो एक पद को दूसरे पद से अलग करता था।[7] इसम सन्देह नही कि राज्य सेवा में मन्त्री, उच्च व कनिष्ठ पदाधिकारी तथा उनकी सहायता के लिये सेवको की एक पक्ति खडी रहती थी,[8] लेकिन इनके पास किसी प्रकार की दरबारी श्रेणी नही होती थी, जैसा कि मुगलो मे प्रचलन था। वैसे भी बीकानेर दरबार अन्य राजपूत राजाओ के दरबार की भाति सेवा श्रेणियों मे नहीं बटा हुआ था बल्कि इसका गठन तो राजा व सामन्तो के बीच रक्त के सम्बन्ध, विभिन्न खापो की पारस्परिक सामाजिक स्थिति तथा राजा के साथ कुलीय सम्बन्धो पर हुआ था।[9] मुत्सद्दी भी दरबार मे बैठते थे तथा कुछ को 'ताजीम' जैसे विशेषाधिकार भी प्राप्त थे,

---

१ मुहता भीमसिह का वर्णन, पृ० ११, मोहता रिकार्ड, माइक्रो फिल्म रील न० ८, रा० रा० अ० बी०

२ देखिये कामदारी पट्टे—परवाना वही न० १

३ वही, पट्टे का स्वरूप जानने के लिये आदेशपत्र देखिये

४ वही

५. वही

६ मोरलेण्ड—इण्डिया एट दी डेथ ऑफ अकबर, पृ० ६६ देहली १६७४

७ देखिये—हवलदारा के पद के अलग-अलग दायित्व किस प्रकार थे। एक विभाग मे हवलदार विभाग का अध्यक्ष है वा उसी स्तर के दूसरे विभाग मे वह सहायक अधिकारी है—हवाला सीधा कागद, कागदा की वही न० ३, ५ १०, ११

८ पट्टा वही वि० स० १८१२ मिती भदुवा वदि १२/३ सितम्बर १७५५ ई०, न० ७, पृ० १४२—कामदारी पट्टे परवाना वही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, न० १, ब्यूरोक्रेशी इन राजस्थान, पृ० २० २४

६ वही दरबार री नथमलजी रै समै री, मैथ्या रिकार्ड्स रा० रा० अ० बी०

पर उनकी स्थिति राजा के कामदार की भांति ही थी।[1] वे दरबार के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार नहीं किये गये थे।[2] मध्ययुगीन सामन्ती ढांचे में वे जातिगत 'पट्टायतों' के विशेषाधिकारों के साथ समता नहीं कर सकते थे।

इन मुत्सद्दियों की शक्ति, राज्य के लिए स्थाई खतरे का कारण कभी नहीं बनी, क्योंकि इनकी शक्तियों पर कई नियन्त्रण थे। इनकी नियुक्ति पदोन्नति व सेवा-मुक्ति सभी शासक की इच्छाओं पर निर्भर थीं।[3] ये केवल राजा के प्रति उत्तरदायी थे। जन-साधारण में इनका कोई आधार नहीं था। परन्तु अपने किसी बुरे कार्य से वे जनमत की निन्दा के पात्र अवश्य बन सकते थे।[4] राजा इनको स्थायी पट्टे प्रदान नहीं करता था,[5] जिसके आधार पर वे अपनी शक्ति का संचय करके शासक को चुनौती देने की स्थिति में आ सकें। इनके पास कोई निश्चित निर्धारित सेना भी नहीं होती थी।[6] इनके वेतन का अधिकांश भाग नकद दिया जाता था।[7] अतः ये बिना सामन्तों की सैनिक सहायता के कुछ नहीं कर सकते थे और सम्भवतः सामन्त कभी यह सहन नहीं कर सकते थे कि कोई मुत्सद्दी, उनके कुल-पति की गद्दी को चुनौती दे। इस प्रकार सैनिक व नागरिक दायित्वों के विभाजन ने मन्त्रियों व अधिकारियों को, राजा की स्थिति को चुनौती देने की स्थिति में कभी नहीं पहुंचने दिया। मुत्सद्दियों की आपसी फूट भी उनके हाथ में असीमित शक्तियां केन्द्रित करने में बाधक थी।

कार्यकारिणी की रचना एवं विकास

राव बीका जब जोधपुर को छोड़कर जांगल प्रदेश की ओर रवाना हुए तो उनके साथ सैनिक अधिकारियों के अलावा कुछ नागरिक अधिकारी—लाखणसी, चौथमल कोठारी, वत्सराज बच्छावत व पुरोहित विक्रमसी भी

---

१ भैय्या पत्र, भादुवा बदि २, १८०२/३ अगस्त, १८४५ ई०, भैय्या रिकार्ड्स, रा० रा० अ० बी०

२. जी० एस० एल० देवड़ा, ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान, पृ० XVII

३. परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० ६१-६२, १०२, १०४, १०६, १२०, १३०

४ मोहता ख्यात, पृ० ३३, ६५-६६, मोहता भीमसिंह वर्णन, पृ० १६, दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३२२-२६

५ उनके पद समाप्ति के साथ जागीर समाप्त हो जाती थी—परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० ६१-६२, १२०

६ भैय्या पत्र ज्येष्ठ सुदि ४ १८६५/२६ मई, १८०८ ई०, फाल्गुन बदि ७ १८७३/४ फरवरी, १८१७ ई०, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० २११-१४

७. कामदारी पट्टे—परवाना बही, न० १

आये।[1] इन्ही से राज्य का वंशानुगत नागरिक प्रशासनिक अधिकारियो व कर्मचारियो का वर्ग बना था। बाद मे, विशेषकर राजा रायसिंह, महाराजा अनूपसिंह व महाराजा गजसिंह के समय विदेशियो को भी इसमे सम्मिलित किया गया।[2] लेकिन इन नये आगन्तुको के प्रति, पुराने मुत्सद्दियो की सदैव एक तीखी प्रतिक्रिया बनी रही, फलस्वरूप मुत्सद्दी वर्ग मे दो गुट बन गये—पुराने व विदेशी या परदेशी।[3] शासको ने जब हजूरियो की नियुक्ति भी विभिन्न प्रशासनिक पदो पर की तो मुत्सद्दियो व हजूरियो के बीच भी ईर्ष्या व प्रतिस्पर्धा व्याप्त हो गई।[4]

मंत्री-परिषद्

शासक मुत्सद्दियो व हजूरियो मे से ही मन्त्री व उच्च अधिकारी नियुक्त करता था, जो राज्य मे विशाल शक्तियो का उपभोग करते थे।

सदैव गैर-राजपूत जातियो, विशेषकर वैश्य तथा कायस्थ जाति मे से ही मंत्रियो व अधिकारियो का चयन होता था। वैश्यो मे—मोहता, नाहटा, बच्छावत, मूंधड़ा, कोचर, कोठारी, सुराणा, बरढिया आदि मुख्य थे।[5] इनमे कुछ जैन धर्म के अनुयायी थे तो कुछ हिन्दू धर्म के उपासक थे।[6] मन्त्रियो व अधिकारियो के कार्य-क्षेत्र मे प्रशासन का पूर्ण क्षेत्र आ जाता था। उनका मुख्य कार्य था—नई नीति का निर्धारण करना, शासक की स्वीकृति के पश्चात उसे सफलतापूर्वक क्रियान्वित करना, इसमे उठने वाली कठिनाइयो को दूर करना, राज्य के आय-व्यय के सम्बन्ध मे नीति-निर्धारण और उनका निरीक्षण करना, परराष्ट्र नीति का संचालन व सामन्तो के साथ सम्बन्धो पर विचार करना था।[7]

प्रत्येक मन्त्री व अधिकारी अपने विभाग की देख-रेख स्वयं करता था और वही उसके कार्यों के प्रति उत्तरदायी होता था। शासक किसी मन्त्री से

---

१ कर्मचन्द्र, पृ० २५, बीकानेर रै राठौडा व बीजा लोका री पीढीया, पृ० २७, दयालदास ख्यात (प्र०) प० २

२ दयालदास ख्यात (प्र०), पृ० १२२, १२८, २१५, जी एस एल देवड़ा—ब्युरोक्रेशी इन राजस्थान, पृ० XIX, २, बीकानेर, १९८०

३ वही

४ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघ सू महाराजा गजसिंघजी ताई, पृ० ५-७

५ बीकानेर नैं कामदारां वगैरा री पीढ़िया, न० २२६/२, म० स० पु० बी०, परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० ७७-१२६

६ वही

७ वैरियस परवानाज ऑफ दी बीकानेर रुलर्स ऐड्रेसेड टू दी मोहता फैमिली ऑफ बीकानेर, माइक्रो फिल्म रील न० ८, मोहता रिकार्ड्स, रा० रा० म० बी०

स्वतन्त्र रूप से व मन्त्रियो एव अधिकारियो के साथ सामूहिक रूप से भी मत्रणा कर सकता था। पर मन्त्री व अधिकारी का विभागीय उत्तरदायित्व व्यक्तिगत था, न कि सामूहिक।[1]

राज्य मे मन्त्रियो की सख्या तीन या चार तक ही सीमित थी, उनमे 'दीवान', 'मुसाहिब', 'बख्शी', 'शिकदार' मुख्य थे।[2] रायसिंह के समय मे दीवान पद को निश्चित करके, उसके काल, वेतन व कर्त्तव्यो को भी निर्धारित किया गया था।[3] अपने शासन के अन्तिम वर्षों मे, राजा रायसिंह ने दीवान पद की असीमित शक्तियो को नियन्त्रित करने के लिए, उसके दो सहयोगी अधिकारियों की नियुक्ति भी की थी, जिनमे एक 'कोठारी' था, जो विभिन्न कारखानो का अध्यक्ष था। दूसरा, खालसा भूमि के प्रबन्धक (देश प्रबन्ध) का उत्तरदायित्व सभालता था।[4] सैनिक प्रशासन का दायित्व 'मुसाहिब' को सौंपा गया था।[5] खजान्ची व पुरोहित, अन्य दो मुख्य अधिकारी थे।[6] राजा दलपतसिंह ने अपने काल म दीवान के ऊपर मुसाहिब को 'मुख्य सलाहकार' के रूप म विभूषित किया था।[7] महाराजा अनूपसिंह ने कई अधीनस्थ अधिकारियो की नियुक्ति की थी, जिनमे 'शिकदारी-पद' मुख्य था, जिसके दायित्व बदलते रहते थे।[8] महाराजा गजसिंह ने सैन्य विभाग का दायित्व एक नये पदाधिकारी 'तनबगसी' (तनबख्शी) को सौंपा था।[9] इसके अलावा 'दफ्तर का हुवलदार' 'शहर किले का किलेदार' 'फौजदार', मढी रा हुवलदार व 'खुवासदार' आदि अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे।[10]

दीवान

राज्य मे हर मन्त्री व अधिकारी महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वो को निभाते थे, लेकिन राज्य का प्रधान 'दीवान या मन्त्री' ही होता था, जो मुख्य रूप से देश के कुशल प्रशासन के लिए उत्तरदायी था। यह पद राज्य मे कई नामो

---

१ वही
२ राज्य मे जोधपुर राज्य की भांति प्रधान का पद नही था—जी भी शर्मा एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ दी राजपूत पृ० १५-१६ दिल्ली १९७९
३ कमचन्द्र पृ० ६१, ७२ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ९२ ११७
४ दयालदास ख्यात (प्रकाशित) भाग २, पृ० १२२, १२८
५ वही पृ० १४२
६ वही पृ० १४२ १२८ ४२
७ वही पृ० १४२
८ वही पृ० २१४
९ परवाना वही वि० स० १८००/१७४३ ई० पृ० १४४
१० वही पृ० १४२ ४७

से जाना जाता था। राज्य के प्रथम पाच शासकों के समय यह पद 'मन्त्री' 'मुख्य-अमात्य' व 'मन्त्रीश्वर' के नाम से विख्यात था[1], लेकिन राजा रायसिंह के समय यह पद 'दीवान' के नाम से सम्बोधित होने लगा, जो मुगल प्रशासन के प्रभाव का द्योतक था।[2] बीकानेर राज्य की ख्यातों में कई जगह 'मुख्यत्यार' शब्द का भी प्रयोग किया गया है, जो इस बात का सूचक था कि राज्य का सबसे बडा कर्ता धर्ता यही था।[3] कभी-कभी यह पद राजा के कामदार या प्रधान के नाम से भी जाना गया।[4]

राज्य की स्थापना के बाद, प्रारम्भिक वर्षों मे इस पद का कोई विशेष गौरव न था। ज्यों-ज्यो शासक की स्थिति राज्य मे दृढ होती चली गई, त्यों-त्यो शासक के कामदार की स्थिति भी प्रभावशाली बनती चली गई। राज्य का प्रथम शक्तिशाली दीवान कर्मचन्द्र बच्छावत था, जिसने राजा रायसिंह के समय मे असीमित शक्तियो का उपभोग किया। वह न केवल प्रशासन के मामलों मे, बल्कि राज्य की हर गतिविधि मे सक्रिय था। युद्ध व शान्ति दोनो काल मे वह नीति-निर्धारण मे प्रमुख भूमिका निभाया करता था।[5] कर्मचन्द्र बहुत महत्वाकांक्षी दीवान था। कर्मचन्द्र ने राजा रायसिंह को गद्दी से हटाकर उसके पुत्र, दलपत को गद्दी पर बिठाने की योजना बनाई थी; लेकिन वह असफल रहा।[6] फिर कर्मचन्द्र के राज्य से भाग जाने के पश्चात् दीवान पद के इतिहास मे महत्वपूर्ण परिवर्तन आये। दीवान पद पर से, बच्छावतो का वंशानुगत अधिकार समाप्त हो गया व मुहता वैद ठाकुरसी, जो बीकाजी के साथ आये वैद लाखणसी का वंशज था, को दीवान पद पर नियुक्त किया गया।[7]

शक्ति रायसिंह ने दीवान पद की असीमित शक्तियो पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से, उसके कार्यों का विभाजन कर दिया। दीवान के साथ दो और अधिकारी नियुक्त कर दिये गये, जो खालसा भूमि व विभिन्न कारखानो का

---

१ कर्मचन्द्र, पृ० २५, ३५, ४४

२ दलपत विलास, पृ० २५, २८, इब्न हसन—दी सेन्ट्रल स्ट्रक्चर ऑफ दी मुगल एम्पायर-पृ० १४८, १९७०

३ दयालदास ख्यात (प्र०) भाग २, पृ० १२२, मोहता ख्यात पृ० ३३

४ परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० ६० ६२

५ दलपत विलास, पृ० २७, ३१-३२ ६६, कर्मचन्द्र, पृ० ७०-७२, उमरावसिंह—राइज एण्ड फाल ऑफ दी बच्छावत हिस्टोरिकल स्टडीज, १९१४

६ मोहता ख्यात, पृ० ३३, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० १२८, देशदर्पण पृ० १४

७ दयालदास ख्यात (प्रकाशित) भाग २, पृ० १२२, सोहनलाल तवारिख राजश्री बीकानेर, पृ० १३५

प्रबन्ध अलग से करते थे ।[1] दीवान पद का महत्त्व, उनके उत्तराधिकारी दलपतसिंह के शासन काल मे और भी कम हो गया था, क्योंकि राजा ने पुरोहित मानमहेश, जिसको 'मुसाहिब' बना रखा था, को अपना मुख्य सलाहकार नियुक्त कर लिया ।[2] राजा सूरसिंह के काल मे, पुन दीवान का पद प्रभावशाली बनने लगा । उसके समय मे मोहतो (वैश्य) को पहली बार दीवानी प्राप्त हुई थी ।[3] अब दीवान एक जाति या गौत्र विशेष का नेता न होकर एक दल (गुट) विशेष का नेता हो गया, जिसमे केवल उसी की जाति या वश के लोग ही नही बल्कि अन्य जाति के व्यक्ति भी समान स्वार्थ के आधार पर सम्मिलित होते थे । दीवान अपनी नियुक्ति के पश्चात्, अपने सहयोगियो को भी राज्य के अन्य उच्च पदो पर नियुक्त कराता था ।[4]

महाराजा अनूपसिंह के समय एक और परिवर्तन आया, जबकि प्रथम बार हजूरियों मे से दीवान पद के लिए नियुक्ति हुई । नाजर आनन्दराम को अनूपसिंहजी ने नियुक्ति का परवाना दक्षिण से भेजा था ।[5] अनूपसिंहजी के समय हजूरियो का प्रभाव बहुत बढ गया था । खवास उदेराम, उनका दूसरा विश्वसनीय व्यक्ति था ।[6] हजूरियो के बढते प्रभाव से पुराने मुत्सद्दी ईर्ष्यालु होने लगे ।[7] महाराजा अनूपसिंह के समय ही मूधडे (वैश्य) प्रथम बार, राज्य के दीवान नियुक्त हुए ।[8] महाराजा स्वरूपसिंह के काल मे वे राजमाता व नाजर ललित के प्रभाव के कारण प्रभावशाली नहीं थे ।[9] इस प्रकार दीवान का पद कई सतहो से गुजर रहा था ।

---

१ दयालदास ख्यात (प्र०) भाग २ प० ११६-२२ सोहनलाल (पूव) पृ० १३५ मुगल प्रशासन मे दीवान के विभाग मे कार्यों का वितरण इस प्रकार था—सरकार—मुगल प्रशासस पृ० ३५ ४६

२ वही पृ० १४२ ४३

३ मोहता भीमसिंघ द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंह के बीकानेर घेरे का वणन पृ० ४४ मोहता ख्यात, पृ० ३३

४ दलालदास ख्यात (प्र०) २ प० १५६ मोहता कल्याण मल दीवान के साथ अन्य अधिकारी नियुक्त हुए थ—कोचर उरजो जी तोषणीवाल कोठारी, बोयरा शाह डूगरसी दफ्तरी ओसवाल कोठारी कूवर, चोपडा भीमराज प्रोहित लखमीदास आदि

५ महाराजा अनूपसिंघ जी रो आनन्दराम नाजर रै नाम परवानो (पूर्व) महाराजा अनूप सिंघ उस समय औरगजेब के दक्षिणी युद्धो म व्यस्त थे तथा उनकी नियुक्ति औरगाबाद जिलेमे आदूणी गढ से हुई थी

६ देशदपण, पृ० १४६

७ वही

८ कामदारा व वकीला रै रोजगार री बही वि० स० १७५३/१६९६ ई० न० २०६

९ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंह जी सूं महाराजा गजसिंघजी ताई पृ० ५ ६

महाराजा सुजाणसिंह व जोरावरसिंह में अपने पूर्वजों की प्रतिभा की कमी से दीवान का पद महत्त्वपूर्ण बन गया। उसे पाने के लिए मुत्सद्दियों[1] के बीच होड़ लग गई। जिनमें मूंधड़ो व मोहत्तों की प्रतिस्पर्धा मुख्य थी। इस प्रतिस्पर्धा ने धीरे-धीरे इतना विकट रूप धारण कर लिया कि राज परिवार के सदस्य भी दीवान पद पर नियुक्ति के विषय में खुला हस्तक्षेप करने लगे।[2] यही हाल राठौड़ ठाकुरों का भी था।[3] महाराज कुंवर जोरावरसिंह ने मोहता बख्तावरसिंह को दीवान नियुक्त करवाने के लिए अपने पिता सुजाणसिंह पर दबाव डाला और जब वे उसमें असफल रहे तो खिवदार आनन्दराम नाजर, जो मूंधड़ों का पक्ष पाती था की हत्या करवादी व मोहतों की नियुक्ति करवाई।[4]

महाराजा जोरावरसिंह की नि सन्तान मृत्यु ने इस पद की शक्तियों को नयी ऊंचाइयों पर चढ़ा दिया। दीवान मोहता बख्तावरसिंह ने मुसाहिब, ठाकुर पृथ्वीसिंह से मिलकर अपनी इच्छा से राजकुमार गजसिंह को, राज्य का नया महाराजा बनाया।[5] राज्य में कर्मचन्द बच्छावत के बाद मोहता बख्तावरसिंह ही शक्तिशाली व प्रभावशाली दीवान बना था। महाराजा गजसिंह सुलझे हुए राजनीतिज्ञ थे। वे शासक के पद की गरिमा को दीवान की शक्तियों से गिरने देना नहीं चाहते थे। उन्होंने मोहता दीवान को बार बार निलम्बित किया था व उसके स्थान पर कभी मूंधड़ो की, कभी बरडीयो की नियुक्ति दीवान पद पर की।[6] यह स्पष्ट व निश्चित कर दिया कि दीवान का पद पूर्णतया शासक की कृपा पर आश्रित है।

महाराजा सूरतसिंह के समय दीवान पद की प्रतिष्ठा गिर गयी। महाराजा स्वयं सारी शक्तियों को अपने हाथो में केन्द्रित करने के इच्छुक थे। सूरतसिंह का दीवान के साथ विरोध, गद्दी पर बैठने के साथ ही प्रारम्भ हो गया था। दीवान मनसुख नाहटा ने, सूरतसिंह द्वारा अपने भतीजे की हत्या का विरोध किया फलस्वरूप न केवल उसे पद ही त्यागना पड़ा, बल्कि वह भी हत्या का शिकार हुआ।[7] आशंकित सूरतसिंहजी ने बाद में किसी अन्य व्यक्ति को शक्ति

---

१ वही पृ० ५ ७, ७०, ७१, ७८
२ दयालदास री ख्यात (अप्र०) २, पृ० २६३
३ वही
४ वही
५ मोहता ख्यात, पृ० १६५-६६ दयालदास ख्यात (अप्र०) २ पृ० २७६
६ परवाना वही वि० स० १८००, १७४३ ई०, पृ० ७७, दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० २६३ २६४, २६५, २७३, २७६ २८६ २८६
७ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३१२, टॉड ने मोहता बख्तावरसिंह को हटाकर मारना लिखा है जो कि गलत है। मोहता श्री बख्तावरसिंह की मृत्यु महाराजा गजसिंह के समय में ही सन् १७७६ ई० में हो गयी थी। टॉड, २ पृ० ११३८, परवाना वही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० ७७

प्रबन्ध अलग से करते थे ।[1] दीवान पद का महत्त्व, उनके उत्तराधिकारी दलपतसिंह के शासन काल मे और भी कम हो गया था, क्योंकि राजा ने पुरोहित मानमहेश, जिसको 'मुसाहिब' बना रखा था, को अपना मुख्य सलाहकार नियुक्त कर लिया ।[1] राजा सूरसिंह के काल में, पुन दीवान का पद प्रभावशाली बनने लगा । उसके समय मे मोहतो (वैश्य) को पहली बार दीवानी प्राप्त हुई थी ।[2] अब दीवान एक जाति या गोत्र विशेष का नेता न होकर एक दल (गुट) विशेष का नेता हो गया, जिसमे केवल उसी की जाति या वश के लोग ही नही बल्कि अन्य जाति के व्यक्ति भी समान स्वार्थ के आधार पर सम्मिलित होने थे । दीवान अपनी नियुक्ति के पश्चात्, अपने सहयोगियो को भी राज्य के अन्य उच्च पदो पर नियुक्त कराता था ।[4]

महाराजा अनूपसिंह के समय एक और परिवर्तन आया, जबकि प्रथम बार हजूरियों में से दीवान पद के लिए नियुक्ति हुई । नाजर आनन्दराम को अनूपसिंहजी ने नियुक्ति का परवाना दक्षिण से भेजा था ।[5] अनूपसिहजी के समय हजूरियों का प्रभाव बहुत बढ गया था । खवास उदेराम, उनका दूसरा विश्वसनीय व्यक्ति था ।[6] हजूरियो के बढते प्रभाव से, पुराने मुत्सद्दी ईर्ष्यालु होने लगे ।[7] महाराजा अनूपसिह के समय ही 'मूघड़े' (वैश्य) प्रथम बार, राज्य के दीवान नियुक्त हुए ।[8] महाराजा स्वरूपसिंह के काल मे वे राजमाता व नाजर ललित के प्रभाव के कारण प्रभावशाली नहीं थे ।[9] इस प्रकार दीवान का पद कई मतहो से गुजर रहा था ।

---

१ दयालदास ख्यात, (प्र०) भाग २ पृ० ११६-२२ सोहनलाल (पूर्व) पृ० १३५ मुगल प्रशासन मे दीवान के विभाग मे कार्यों का वितरण इस प्रकार था—सरकार—मुगल प्रशासस, पृ० ३५-४६

२ वही पृ० १४२-४३

३ मोहता भीमसिंघ द्वारा जोधपुर महाराजा अभयसिंह के बीकानेर घरे का वर्णन पृ० ४४, मोहता ख्यात, पृ० ३३

४ दलालदास ख्यात (प्र०) २ प० १५६, मोहता कल्याण मल दीवान के साथ अन्य अधिकारी नियुक्त हुए थे—कोचर उरजो जी, तोपणीवाल कोठारी, बोयरा शाह डूगरसी, दफ्तरी ग्रोसवाल कोठारी कूकर, चोपड़ा भीमराज ग्रोहत लखमीदास आदि

५ महाराजा अनूपसिंघ जी रो आनन्दराम नाजर रै नाम परवानो (पूर्व) महाराजा अनूपसिंघ उस समय औरंगजेब के दक्षिणी युद्धो मे व्यस्त थे तथा उनकी नियुक्ति औरगाबाद, जिलेमे आदूणी गढ से हुई थी

६ देशदर्पण, पृ० १४६

७ वही

८ कामदारो व वकीला रै रोजगार री वही, वि० स० १७५३/१६६६ ई०, न० २०६

९ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंह जी सूं महाराजा गजसिंघजी ताई पृ० ५-६

महाराजा सुजाणसिंह व जोरावरसिंह में अपने पूर्वजों की प्रतिभा की कमी से दीवान का पद महत्त्वपूर्ण बन गया। उसे पाने के लिए मुत्सद्दियों[1] के बीच होड़ लग गई। जिनमें मूंधड़ो व मोहतों की प्रतिस्पर्धा मुख्य थी। इस प्रतिस्पर्धा ने धीरे-धीरे इतना विकट रूप धारण कर लिया कि राज-परिवार के सदस्य भी दीवान पद पर नियुक्ति के विषय में खुला हस्तक्षेप करने लगे।[2] यही हाल राठौड़ ठाकुरों का भी था।[3] महाराज कुंवर जोरावरसिंह ने मोहता बख्तावरसिंह को दीवान नियुक्त करवाने के लिए अपने पिता सुजाणसिंह पर दबाव डाला और जब वे उसमें असफल रहे तो शिकदार आनन्दराम नाज़र, जो मूंधड़ों का पक्षपाती था की हत्या करवादी व मोहतों की नियुक्ति करवाई।[4]

महाराजा जोरावरसिंह की नि सन्तान मृत्यु ने इस पद की शक्तियों को नयी ऊंचाइयों पर चढ़ा दिया। दीवान मोहता बख्तावरसिंह ने मुसाहिब, ठाकुर पृथ्वीसिंह से मिलकर अपनी इच्छा के राजकुमार गजसिंह को, राज्य का नया महाराजा बनाया।[5] राज्य में कर्मचन्द बच्छावत के बाद मोहता बख्तावरसिंह ही शक्तिशाली व प्रभावशाली दीवान बना था। महाराजा गजसिंह सुलझे हुए राजनीतिज्ञ थे। वे शासक के पद की गरिमा को दीवान की शक्तियों से गिरने देना नहीं चाहते थे। उन्होंने मोहता दीवान को चार बार निलम्बित किया था व उसके स्थान पर कभी मूंधड़ों की, कभी बरड़ीयों की नियुक्ति दीवान पद पर की।[6] यह स्पष्ट व निश्चित कर दिया कि दीवान का पद पूर्णतया [illegible] की कृपा पर आश्रित है।

महाराजा सूरतसिंह के समय दीवान पद की प्रतिष्ठा गिर गयी। [illegible] स्वयं सारी शक्तियों को अपने हाथों में केन्द्रित करने के इच्छुक थे। [illegible] का दीवान के साथ विरोध, गद्दी पर बैठने के साथ ही प्रारम्भ हो [illegible] दीवान मनसुख नाहटा ने, सूरतसिंह द्वारा अपने भतीजे की [illegible] किया फलस्वरूप न केवल उसे पद ही त्यागना पड़ा, बल्कि [illegible] शिकार हुआ।[7] आशंकित सूरतसिंहजी ने बाद में किसी [illegible]

---

१ वही, पृ० ५, ७, ७०, ७१, ७८

२ दयालदास री ख्यात (प्रप्र०) २, पृ० २६३

३ वही

४ वही

५ मोहता ख्यात, पृ० १६५-६६, दयालदास [illegible] / २,

६ परवाना बही, वि० सं० १८००, १७४३ ई०, [illegible] ७१, पृ० २६३, २६४, २६५, २७३, २७६ [illegible]

७ दयालदास ख्यात (प्रप्र०) २, पृ० [illegible] मारना लिखा है जो कि गलत है। [illegible] में भेजा के समय में ही सन् १७७६ ई० [illegible] पश्चात वि० सं० १८००/१७४३ ई०, पृ० ३९

नही सौंपी । सम्भवत भय था कि दीवान पद की विशाल शक्तियो के प्रयोग से कोई भी आगे चलकर उनकी स्थिति को चुनौती दे सकता है।[1] फलत दीवान राजा के कामदार वाली स्थिति म पहुँच गया।[2] प्रतापमल बैद को बहुत समय तक अन्य पदो पर कार्य करवाने के बाद दीवान बनाया गया।[3] लेकिन अमरचन्द *सुराणा के समय दीवान का पद फिर प्रतिष्ठित व भय उत्पन्न करने वाला बन* गया था।[4] महाराजा सूरतसिंह ने अमरचन्द की सैनिक योग्यताओ से प्रसन्न होकर ही उस दीवान पद पर नियुक्त किया था। उसने शासक व राज्य के शत्रुओ के विरुद्ध ऐसी कठोर सैनिक कार्यवाहिया की कि राज्य म उसका आतक छा गया।[5] सुराणो के प्रथम बार दीवान बनने से, पुरान मुतसद्दी, इनकी पदोन्नति व अपने अधिकारो के वचित हो जाने से विरोधी हो गये थे।[6] हजूरिये भी केन्द्रीकरण से नाराज थे।[7] सामन्त इसे अपनी राह का रोडा समझत थे।[8] इस कारण अमरचन्द सुराणा षड्यन्त्र का शिकार बना। पहले उस पर अमीर खा पिण्डारी के साथ गुप्त षड्यन्त्र का आरोप लगाकर राज्य-विरोधी अपराध मे बन्दी किया गया, फिर विरोधियो के जोर देने पर उस मार डाला गया।[9]

वास्तव मे महाराजा सूरतसिंह चारो तरफ अपन हो रहे विरोध से घबरा उठा था। अमरचन्द सुराणा को हटाकर महाराजा विरोधियो की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता था। इस दुष्कृत्य के परिणाम भी बुरे निकले। विरोधियो के सामने से विरोध हट जाने के *परिणामस्वरूप* महाराजा के विरुद्ध विद्रोही का ताता बध गया, जिस नया मोहता दीवान नियन्त्रित नही कर पा रहा था।[10] अमरचन्द ने मरकर राज्य मे दीवान पद के महत्त्व को स्पष्ट कर दिया और अपनी आवश्यकता को समझा दिया था।

दीवान का चुनाव या दीवान की योग्यताए

जयसोम ने मन्त्री की योग्यता का विवरण देते हुए स्पष्ट किया है कि

---

१ कागदा की बही, वि० स० १८७२/१७१५ ई०, न० २१ पृ० १६० दयालदास ख्यात (अप्र०) २ पृ० ३१२
२ प्रतापमल बैद पहले कामदार ही नियुक्त किया गया था। परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० ६१
३ परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई० पृ० ६१
४ उपर्युक्त पृ० १०२
५ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० १८ २२
६ वही
७ वही
८ वही
९ वही पृ० ३२४-३२५
१० वही पृ० ३२५-२६

वह साम, दाम, दण्ड भेद नामक चारों उपायों को विधिपूर्वक काम मे लाकर, शुद्ध हृदय से पण्डितो के विचारानुकूल हो, राज्य शासन करें। राज्य के प्रथम पाच शासको ने मन्त्रियो मे, जो बच्छावत परिवार के थे, जयसोम यही योग्यता देखता है।[1] हालाकि प्राचीन स्मृति और नीतिकार मत्री मे सैनिक योग्यता होना आवश्यक नही मानते, पर राज्य के दीवान सैनिक योग्यता भी रखते थे।[2] यहा तक कि मन्त्रियो के सैनिक दायित्व इतने बढ गए थे कि अराजकता के क्षेत्रो मे कानून व व्यवस्था स्थापित करने के लिए सैनिक कार्यवाही करने जाते थे। मोहता बख्तावरसिंह व सुराणा अमरचन्द की सैनिक योग्यताए प्रसिद्ध थी। १८वी शताब्दी मे, राज्य मे एक आम प्रथा बन गयी थी कि मन्त्री ही सैनिक अभियानो का सचालन करेगे। यहा तक कि सैनिक विजय ही, उनकी पदोन्नति का एक प्रमुख कारण बन गयी।[3]

साधारणतया राजा दीवान का चुनाव करते समय, पुराने मुत्सद्दियो के परिवारो को ही प्रधानता देता था। राजा रायसिंह के समय तक दीवान पद को, बच्छावत परिवार के सदस्यो ने ही, सुशोभित किया। फिर क्रमश बैद, मोहता, मूधडा आदि परिवारो के सदस्य मुख्य रूप से दीवान नियुक्त हुए। प्रशासकीय-व्यावहारिक ज्ञान को देखते हुए अन्य परिवारो से भी दीवान नियुक्त हुए थे, पर प्रधानता पुराने मुत्सद्दियो की ही बनी रही। हजूरियो को भी उनकी सेवाओ को पुरस्कृत करने व व्यक्तिगत-सम्बन्धो के कारण, यह पद कभी-कभी दे दिया जाता था।[4] लेकिन राजपरिवार या सामन्तो मे से किसी को भी दीवान नही बनाया गया था।

सम्मान व उपाधिया

दीवान अपनी, नियुक्ति के समय, राजा को 'नजर' भेंट करता था व न्योछावर करता था। राजा उसे सम्मानित करन के लिए 'मोतियो का चोकडा, सिरपाव, कडा व कटार' प्रदान करता था। राज्य म यह परम्परा प्रचलित थी कि नए दीवान की नियुक्ति के बाद, राजा उसके घर पर दावत का निमन्त्रण

१ कर्मचन्द्र, पृ० ३१

२ दलपत विलास, पृ०३०-३२, कर्मचन्द्र, पृ० ३५, ३६, ६१, दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० २०५, २११-१४, (अप्र०) २, पृ० २५६, २६४, २७३, ३१३, ३२२

३ बीकानेर री ख्यात, महाराजा सुजाणसिंघजी सू महाराजा गजसिंघ जी तांई पृ० ७१, दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३१३

मोहता बख्तावरसिंह को महाराजा गजसिंह ने अनेक सैनिक अभियानों में भेजा था। अमरचन्द सुराणा की दीवान पद पर नियुक्ति ही उसकी भटनेर विजय के पश्चात् हुई थी।

४ दयालदास ख्यात (अप्र०)२, पृष्ठ २६४, २७६, २९९

नही सौंपी। सम्भवत भय था कि दीवान पद की विशाल शक्तियो के प्रयोग से कोई भी आगे चलकर उनकी स्थिति को चुनौती दे सकता है।[1] फलत दीवान राजा के कामदार वाली स्थिति मे पहुँच गया।[2] *प्रतापमल बैद को बहुत समय* तक अन्य पदो पर कार्य करवाने के बाद दीवान बनाया गया।[3] लेकिन अमरचन्द सुराणा के समय दीवान का पद फिर प्रतिष्ठित व भय उत्पन्न करने वाला बन गया था।[4] महाराजा सूरतसिह ने अमरचन्द की सैनिक योग्यताओ से प्रसन्न होकर ही उसे दीवान पद पर नियुक्त किया था। उसने शासक व राज्य के शत्रुओ के विरुद्ध ऐसी कठोर सैनिक कार्यवाहियाँ की कि राज्य मे उसका आतक छा गया।[5] सुराणो के प्रथम बार दीवान बनने से, पुराने मुत्सद्दी, इनकी पदोन्नति व अपने अधिकारो से वचित हो जाने से विरोधी हो गये थे।[6] हजूरिये भी केन्द्रीकरण से नाराज थे।[7] सामन्त इसे अपनी राह का रोडा समझते थे।[8] इस कारण अमरचन्द सुराणा षड्यन्त्र का शिकार बना। पहले उस पर अमीर खा पिण्डारी के साथ गुप्त षड्यन्त्र का आरोप लगाकर राज्य-विरोधी अपराध मे *बन्दी किया गया, फिर विरोधियो के जोर देने पर उसे मार डाला गया।*[9]

वास्तव म महाराजा सूरतसिह चारो तरफ, अपने हो रहे विरोध से घबरा उठा था। अमरचन्द सुराणा को हटाकर महाराजा विरोधियो की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता था। इस दुष्कृत्य के परिणाम भी बुरे निकले। विरोधियो के सामने मे विरोध हट जाने के परिणामस्वरूप, महाराजा के विरुद्ध विद्रोहो का ताता बध गया, जिसे नया मोहता दीवान नियन्त्रित नही कर पा रहा था।[10] अमरचन्द ने मरकर राज्य मे दीवान पद के महत्त्व को स्पष्ट कर दिया और अपनी आवश्यकता को समझा दिया था।

दीवान का चुनाव या दीवान की योग्यताए

जयसोम ने मन्त्री की योग्यता का विवरण देते हुए स्पष्ट किया है कि

१ कागदो की बही, वि० स० १८७२/१७१५ ई०, न० २१, पृ० १६०, दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३१२
२ प्रतापमल बैद पहले कामदार ही नियुक्त किया गया था। परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० ६१
३ परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई० पृ० ६१
४ उपर्युक्त पृ० १०२
५ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० १८ २२
६ वही
७ वही
८ वही
९. वही, पृ० ३२४-३२५
१० वही, पृ० ३२५-२६

स्वीकार कर उसे सम्मानित करने जाता था। इसके अतिरिक्त राजा दीवान नियुक्ति के समय कभी कभी विशेष रूप से सम्मानित करने के लिए अपने हाथ से उसके माथे पर टीका लगाता था। दयालदास ने मोहता परिवार को मिले सम्मान हेतु ऐसे तीन अवसरो का वर्णन किया है। राजा दीवान के कार्य से प्रसन्न होकर उसे पालकी भी प्रदान करता था।[1]

मोहता बख्तावरसिंह को मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय की ओर से राव का खिताब भी प्राप्त हुआ था।[2] महाराजा सूरतसिंह ने यह सम्मान दीवान सुराणा अमरचन्द को प्रदान किया था।[3]

वेतन

दीवान का वेतन ६००० से १० ००० रु० के बीच वार्षिक था।[4] मोहता बख्तावरसिंह के समय यह राशि बढ़कर १४ ००० रुपये तक पहुच गई थी।[5] यह राशि कई भागो मे बटकर प्राप्त होती थी। कुछ नकद राशि के रूप मे कुछ राज्य के करो की आमदनी से व कुछ पट्टे मे प्राप्त गावो की आमदनी से मिल कर पूरी होती थी। दीवान के कर्मचारियो को व निजी सेवको को भी राज्य से वेतन प्राप्त होता था।[6]

दीवान के कार्य

राज्य मे हर मन्त्री व अधिकारी का अपना दायित्व होता था परन्तु अच्छे प्रशासन को चलाने का मुख्य दायित्व दीवान पर ही था। वैसे सही अर्थों मे वह

१ कामदारो के पट्टे—पट्टा बही वि० स० १७४२/१६८५ ई० न० ६ वि० स० १७५३/१६९६ न० ७ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई० प० ६१ १११ दयालदास ख्यात (प्र०)२ प० ११ २७६ २६६
राजा सूरसिंह ने प्रथम मोहता दीवान कल्याणमल को विक्रम स० १६८०/१६२३ ई० मे ख्यात भाग २ प० १५६ महाराजा स्वरूपसिंह ने मोहता मुकदराय को वि० स० १७५६/१६९९ ई० म ख्यात (अप्र०) पष्ठ २५७ और महाराजा गजसिंह ने मोहता बख्तावरसिंह को वि० स० १८१७/१७६० ई० मे अपने हाथ से टीका लगाया था

२ दयालदास ख्यात (अप्र०) २ पष्ठ २८७ महाराजा गजसिंह ने मोहता बख्तावरसिंह को उठण का कुरब प्रदान किया था मोहता ख्यात पष्ठ ६८

३ दयालदास ख्यात (अप्र०) २ प० ३२४ यह उपाधि महाराजा सूरतसिंह ने दीवान को चूरू विजय के पश्चात प्रदान की थी।

४ कामदारो के पट्टे—पट्टा बही वि० स० १७५३/१६९६ ई० न०७ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई० न० ६१

५ पट्टा बही वि० स० १७५३/१६९६ ई० न० ७ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई० पष्ठ १११ देखिये परिशिष्ट सख्या ४

६ वही

राज्य का वित्त मन्त्री था। दीवान की नियुक्ति के पीछे यही आशय रहता था कि राज्य की आमदनी बढ़ाकर विभिन्न खर्चों की पूर्ति करेगा।[1]

दीवान के क्या उत्तरदायित्व थे, इसका स्पष्ट उल्लख हम उस परवान स प्राप्त होता है जो महाराजा अनूपसिंह ने नाजर आनन्दराम को दीवान नियुक्त करत समय, आदूणी (आंध्रप्रदेश दक्षिण) स सवत १७४६ म लिखकर भेजा था। उस परवान म महाराजा द्वारा दीवान के कार्यों स सम्बन्धित निर्देश दिये गये है, जिसका विवरण इस प्रकार है[2] –

दीवान उन समस्त आदेश-पत्रो पर, जिस पर शासक की मुहर लगी होगी, अपनी मुहर लगायेगा। साथ ही वह खजान्ची द्वारा राज्य म व अन्य परगनो म जो पत्र भेजे जायेंगे, उनका निरीक्षण करगा व अपनी मुहर लगायेगा। दरबार की कार्यवाही क बाद शासक की अनुपस्थिति म वह अपनी सूझ बूझ स पत्रो पर मुहर लगा कर आदेश देगा।[3]

राज्य क आदशा का पालन करवायगा। दोषी व्यक्तियो को उचित दण्ड दगा।[4]

किले म जो राज्य का खजाना है उसकी सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करेगा। रुपये पैसा का हिसाब करके शासक को सूचित करता रहेगा।[5]

प्रशासन के सभी विभागो का निरीक्षण करेगा उनकी देख-रेख करेगा। बडा कारखाना (राज परिवार की आवश्यकताओ स सम्बन्धित विभाग) का प्रबन्ध विशेषतौर पर करेगा। विभागीय अधिकारी, जो पहिले स नियुक्त हैं, और उपयुक्त हैं को बनाये रखेगा, अन्यथा उनके स्थान पर अन्य योग्य व्यक्तियो को नियुक्त करेगा (हुवलदार)।[6]

वह राज्य के मन्दिरो की व्यवस्था करगा व मूल्यवान धातुओ, जैस ताबा,

---

१ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई० पृष्ठ ७७, मुगल प्रशासन मे भी दीवान या वजीर मुख्य रूप से वित्त विभाग को सम्भालता था—आइन अकबरी अनुवाद १ पृ० ६

२ महाराजा अनूपसिंघजी रो आन दराम नाजर रै नाम परवानो सवत १७४६ मिति मगसर बदी १३ (२६ नवम्बर १६६३) आदूणी लिखित खास रुक्का आनन्दराम को दीवानगी दते समय भजा था। न० १६७/१६ राजस्थान अ० स० पु० बी०, देखिय परिशिष्ट सख्या ५

३ और अध्ययन के लिये परवाना पोह सुद २ ५ वि० स० १८१२/३ १० जनवरी १७५५ ई० वरियस परवानाज आफ दी बीकानेर रूलर्स एड्रेस्ड टू दी मोहता फमिली आफ बीकानेर (पूव)

४ और अध्ययन क लिये—वही

५ और अध्ययन क लिये देखिय—दलपत विलास पृष्ठ २७ कमचन्द्र पृ० ३६, वही धी रावले लेख वि० स० १७७५/१७१८ ई० न० २१२, बीकानर बहियात

६ और अध्ययन के लिये देखिय—हुजदारो रो लख री बही वि० स० १७०४/१६४७ ई० न० १२०, बीकानेर बहियात हवाला सौंपा कागद-कागदो की बही, न०३ ५ १०,११

पीतल इत्यादि के भण्डार-गृहो की देख रेख करेगा।[1]

वह शस्त्रागार विभाग की सही व्यवस्था करेगा। तोपो म बिगाड न आने देगा। बदूको व बख्तरो का प्रवन्ध करता रहेगा। सभी मुख्य मुख्य हथियारा की अलग-अलग व्यवस्था करेगा।[2]

वह किले मे स्थित जितने भण्डार गृह हैं उनका कुशलता स प्रबन्ध करेगा। गावो स जो हासल प्राप्त होता है उस सही ढग स भण्डारो म पहुचायेगा। राज्य भण्डारा स जितने व्यक्तिया की सामग्री प्राप्त होती है उसका उचित वितरण करगा व सही अधिकारियो की नियुक्ति करेगा।[3]

वह राज्य क जितने कोट है, उनकी व्यवस्था करेगा व वहा अधिकारियो को नियुक्त करेगा।

ठाकुरो के गावो स व जनाना पट्टो के गावो स जो आय होती है उसकी बार-बार माग करके, वसूली करेगा।[4]

राज्य म जो सार्वजनिक निर्माण का काय होता है उसकी देख-रेख करेगा व मजदूरो के कष्टो को दूर करने का प्रयत्न करेगा।

राज्य म हासल उगाहने क लिए जो कामदार नियुक्त किये जाते हैं, उन्ह व परगनो मे नियुक्त हाकिमा को यह आदेश देगा कि वे निर्धारित रकम स ज्यादा वसूल न करें व फिजूल झगडो म न पड अगर कोई आदेश की अवहेलना करता हुआ पाया जाए तो गुनेहगारी' लगाकर दण्डित करगा। पिछली बकाया रकम (तलबाना) वसूल करने म तत्परता दिखायगा।[5]

हजूरिया के कार्यो का वितरण करेगा व उनकी जीविका का प्रबन्ध करेगा। अगर कोई झगडा फसाद करे तो गुनेहगारी लगायेगा। राज्य म जो सैनिक, तोपची व बन्दूकची भरती किये गये हैं, उनके वेतन का उचित प्रबन्ध करेगा।[6]

---

१ और अध्ययन के लिये—वैरियस परवानाज मोहता रिकाड (पूव)

२ और अध्ययन के लिय—दलपत विलास, पृष्ठ ३४ बही फौज रे पाछ री, वि० स० १८६५/१८०८ ई० न० १९२, बीकानर बहियात

३ और अध्ययन के लिये—बही कोठार भोग री वि० स० १७२३/१६६६ ई० न० ५८, बीकानर बहियात।

४ और अध्ययन के लिये—परगना रै जमा जोड री बही वि० स० १७२६ १७५०/१६६३ ई० १६९३ ई० न० ९८, बीकानर बहियात, दस रै खालसा री बही, वि० स० १७४०/१६८३ ई० न० ९७ बीकानर बहियात

५, और अध्ययन के लिय—चीरा जमरामर रे लख री बही वि० स० १७४८/१६९१ ई० न० २७ चीरा जमरामर, बीदाहद गुसाईसर रे लेख री बही वि० स० १७९९/१७४२ ई० न०३१, बीकानर बहियात

६ और अध्ययन के लिये—नेग-बही वि० स० १७१३/१६५६ ई०, न० १०५, बीकानेर बहियात

रैय्यत से अगर लेनदार गैर-हिसाबी ऋण वसूली करने का प्रयत्न करें तो उसे रोकेगा। लेनदारों को राजपूतों से चार वर्ष तक ऋण अदायगी वसूल करने की मनाही करेगा। राजपूतों के पास से पहले राज्य का बकाया पैसा वसूल किया जायेगा, फिर राज्य के साहुकारों, ब्राह्मणों व वोहरों की लेनदारी हो, फिर अन्य लोग उनसे अपने ऋण की वसूली करे।[1]

पट्टायतों पर कामदारों का कर्ज है। अगर उनके पास से पट्टा निकल गया व कर्जदार का दबाव पड़ रहा हो तो उन्हें ऋण मत लेने देना। राज्य की भूमि की खरीद में अगर कोई बाधा डालेगा तो मना करना।[2]

कोई राज्य में कानून व्यवस्था भंग करने का प्रयास करे व उसको कोई समर्थन या सहायता दे तो बिना किसी हिचक उन्हें दण्ड देगा।

इनके अलावा दीवान के पास न्यायिक अधिकार भी थे। वह गावों की सीमाओं में उत्पन्न झगड़ों, कृषि क्षेत्रों में चोरी से सम्बन्धित घटनाओं, लेन देन-दारों का वाद-विवाद सामाजिक वाद-विवादों का निपटारा भी करता था।[3]

पड़ौसी राज्यों के साथ कूटनीतिक सम्बन्धों के निर्धारण में दीवान मुख्य भूमिका निभाता था। राव कल्याणमल ने कर्मचन्द की राय पर मुगलों से सन्धि की थी।[4] मोहता बख्तावरसिंह ने मारवाड़ के गृह-युद्ध में व मारवाड़-मराठा संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मोहता बख्तावरसिंह बीकानेर-जोधपुर मैत्री सम्बन्धों को स्थापित करने का प्रबल पक्षधारी था। उसने महाराजा गजसिंह जी के समय राजपूताने में मराठा-विरोधी संघ बनाने की गतिविधियों में सक्रिय योगदान दिया था।[5] उसकी कूटनीतिक चतुराई व कार्य कुशलता से मुगल सम्राट भी प्रसन्न थे। होल्कर मल्हारराव ने भी मोहता दीवान से भेंट करते समय पूर्ण सम्मान करता था।[6]

दीवान को पद से हटाये जाने के कारण

दीवान पद का कार्यकाल नियुक्त व्यक्ति पर राजा की आस्था व विश्वास

---

१. और अध्ययन के लिये—कागदो री बही, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ २००-२२

२ और अध्ययन के लिये—बही जमी रे कागदां री, वि० स० १८१४/१७५७ ई०, न० ५, रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर

३ वरियस डिसीजन्स, रिकार्डेड अण्डर दी आर्डर आफ दी दीवान ऑफ बीकानेर, मोहता रिकार्ड्स, माइक्रोफिल्म्स, रील न० ८, रा० रा० अ० बी०

४. दयाल विलास, पृष्ठ १५

५ मोहता ख्यात, पृष्ठ ६१, दयालदास ख्यात (भाग०) २, पृष्ठ २७३, २८६, ८८

६ मोहता ख्यात, पृष्ठ ६१, राजपूत राज्यों में दीवान पद के कार्यों के लिए देखिये—वी० सी० शर्मा—एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ दी राजपूतस्, पृ० १६-१८, दिल्ली १९७८

से प्रभावित होता था। सामान्यत दीवान पद से विमुक्ति का मुख्य कारण दीवान का राजा के विरुद्ध षड्यन्त्रों में सहयोगी होना था।[1] १८वी शताब्दी म जब दीवान के सैनिक उत्तरदायित्व बढ गये तब इस क्षेत्र म सैनिक अयोग्यता भी उनके पतन का कारण बन गई थी।[2]

मोहता बख्तावरसिंह बीकानेर राज्य का अकेला व्यक्ति था, जो यहा के तीन शासक महाराजा सुजानसिंह जोरावरसिंह व गजसिंह द्वारा नियुक्त किया गया था और छह बार अपने पद स हटाया गया था। ऐसा कोई अन्य उदाहरण राज्य के इतिहास मे नही मिलता है। वह दरबारी षड्यन्त्रो, शासक के विश्वास की कमी व प्रशासन मे भ्रष्ट तरीको को अपनाने के आरोपो स पद विमुक्त हुआ था, लेकिन दण्ड के रुपये भर कर, 'पेशकशी' के रूप म भारी रकम नजर करके व मित्रो के प्रभाव से बार-बार नियुक्त हो जाता था। मोहता बख्तावर-सिंह अपने पद से अपनी पत्नी व पुत्रो की शिकायत से भी हटाया गया था। पारिवारिक झगडो के परिणामस्वरूप होन वाली पद विमुक्ति का यही अकेला

---

१ राज्य मे राजा रायसिंह क विरुद्ध दीवान कर्मचन्द्र का षड्यन्त्र प्रसिद्ध है। दयालदास, पाउलेट व ओझा का कथन है कि १५९५ ई० म इस षडयन्त्र के द्वारा राजा को धोखे से मारकर दलपतसिंह को राजा कमचन्द्र व राजा के भाई रामसिंह को मुखिया बनाना निश्चित हुआ था। हालाकि इनके कथन म रामसिंह आदि को लेकर असगतियां हैं क्योंकि रामसिंह इस घटना से पूर्व मारा जा चुका था पर इसम अवश्य सत्याश है कि दीवान ने राजा को गद्दी से हटाने का प्रयत्न किया था, क्योंकि राजा रायसिंह अपनी मृत्यु तक बच्छावतो के विरुद्ध बदला लेने के विचार को त्याग नही पाया था। कमचन्द्र का मुग़ल दरबार म रायसिंह विरोधी गतिविधियो को जन्म देने मे प्रमुख हाथ था। इसी प्रभाव में सम्राट् अकबर न राजा से जागीर छीन ली थी व दलपत के विद्रोह का भी मौन समथन किया था। समकालीन ग्रथ कमचन्द्र इस सम्बन्ध मे मौन है व इसे दैवयोग घटना ही मानता है। लेकिन मोहता ख्यात से कुछ रोचक नई जानकारी मिलती है कि राजा की वित्तीय स्थिति व दुर्गनिर्माण खर्चों के कारणो को लेकर दोनो मे मनमुटाव बढा था। साथ ही एक-दूसरे की प्रसिद्धि भी ईर्ष्या का कारण बन गयी थी। राजा रायसिंह इस बात से भी रुष्ट था कि कर्मचन्द्र ने उसकी पुत्री जो राजा उदयसिंह की दोहीती थी, का विवाह शहजादे सलीम के साथ कराने में बहुत पहल की थी। दलपत विलास पृष्ठ ८४, ८६ ८७, कमचन्द्र पृष्ठ ७३ मोहता ख्यात पृष्ठ ३३, दयालदास ख्यात (प्रकाशित) २ पृष्ठ १२८; दशदपण, पृ० १४, पाउलेट गजटियर, पृष्ठ २६, अमरावसिंह 'राइज एण्ड फाल आफ दी बच्छावत्स हिस्टोरिकल स्टडीज—अभय जैन ग्रथालय, ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास I, पृ० १९४ ९६

२ दीवान सुराणा अमरचन्द पर यह आरोप लगाया गया था कि वह राज्य के नाश म पिण्डारियो के साथ गुप्त रूप स मिल गया था—दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ ३२५ परवाना बही, स० १८००/१७४३ ई०, पृष्ठ ७७

उदाहरण हैं।[1]

इसके अलावा राज्य के वित्तीय प्रबन्ध म अकुशलता स भी किसी को दीवान पद से हटाया जा सकता था, बल्कि कई बार दीवान इसी उद्देश्य से राज्य मे नियुक्त किया जाता था, जिसे पूरा न करने की स्थिति म उस विमुक्त कर दिया जाता था।[2]

मुसाहिब

यह पद 'मुसाहब' व मुसाईब के नाम स भी जाना जाता था। 'मुख्त्यार' शब्द का प्रयोग भी कई बार इसी पद के सदभ म किया गया है। यह राज्य मे बहुत सम्मानित पद था बल्कि प्रशासनिक क्षेत्र म यह श्रेष्ठ पद आका जाता था। इस पद के पीछे इतने उत्तरदायित्व नही थ, जितनी कि इसकी प्रतिष्ठा। इस पद को सुशोभित करने वाला राजा का मुख्य सलाहकार माना जाता था। कई बार यह पद, मान व मर्यादा म, दीवान पद स भी अधिक ऊचा उठ गया था।[3] यह पद राजा अपन विश्वसनीय व्यक्ति को सम्मानित करन के लिए ही देता था। अपन समस्त गौरव के बाद भी, मुसाहिब केन्द्रीय कायकारिणी का अध्यक्ष नही बनता था। अत यह पद प्रशासन-मण्डल म स्थायी भी नही था। विशेष परिस्थितियो म ही इस पर नियुक्ति की जाती थी। शक्तिशाली दीवान के समय इस पद पर किसी की नियुक्ति नही होती थी। वास्तव म

---

१ मोहता बख्तावरसिंह का दीवानी काल महाराजा सुजानसिंह क समय, वि० स० १७६०/१७३३ ई०, प्रथम बार दीवानगी दी गयी जो वि० स० १६६१/१७३४ ई० तक चलती रही, दूसरा काल वि० स० १७६२/१७३६ ई०, से प्रारम्भ होता है, जो वि० स० १७६७/१७४० ई० तक चलती रही। उसी वष दुबारा उस दीवान बनाया गया, जिसका कायकाल महाराजा जोरावरसिंह की मृत्यु तक चलता रहा। महाराजा गजसिंह के राज्याभिषक के समय मोहता को दीवानगरी मिली। वि० स० १८०२/१७४५ ई० स वह वि० स० १८०८/१७५१ ई० तक रहा। इसक पश्चात् अगले वष हो, वि० स० १८०६/१७५२ ई० में फिर नियुक्ति हो गयी, जिसका काल वि० स० १८१३/१७५६ ई० तक रहा था। वि० स० १८१३/१७५६ ई० म कुछ समय के लिय फिर पद से विमुक्त कर दिया गया। अगला कायकाल, वि० स० १८१३/१७५६ ई० से वि० स० १८१४/१७५८ ई० तक रहा।

—परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृष्ठ ७७

२ परवाना बही, वि० स० १८००/१८४३ ई०, पृष्ठ ७७, ८१

३ मुगल साम्राज्य म वकाल पद के साथ इसकी समता की जा सकती है। आइन अकबरी (अनुवाद) भाग I, पृ० ५, १६३६ ई०, इब्नहसन—सेंट्रल स्ट्रक्चर आफ दी मुगल एम्पायर, पृ० १३५ ४०, जयपुर राज्य म मुसाहिब का पद प्रधानमन्त्री व अन्यमन्त्री का पद था—जी० सी० शर्मा—एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम, पृष्ठ १५

इसका महत्त्व तो उसी समय बढ़ता था, जब राजा व उसके दीवान के बीच मतभेद गहरे हो जाते थे, और 'मुसाहिब' को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर प्राप्त हो जाता था।[1]

सर्वप्रथम, इस पद का वर्णन राजा दलपतसिंह के शासन काल में आता है, जब राज्य का पुरोहित मानमहेश मुसाहिब बनकर राजा का मुख्य सलाहकार हो गया था।[2] इस पद की असीम शक्ति व उसका गौरव दलपतसिंह जी के शासन काल के अन्त के साथ ही समाप्त हो गया था। राजा कर्णसिंह ने दो मुसाहिब कोठारी जीवणदास व कुवड़ चौपड़ा नियुक्त किये।[3] राज्य के इतिहास में यही एक ही उदाहरण है, जब दो मुसाहिब एक साथ नियुक्त किये गये। महाराजा स्वरूपसिंह के बाल्यकाल में भूकरका के ठाकुर पृथ्वीराज मुसाहिब थे, और पहली बार राठौड़ सामन्तों में से किसी को इस पद पर नियुक्त किया गया था।[4] मोहता बख्तावरसिंह राज्य का जब तक दीवान रहा, मुसाहिब पद पर किसी की नियुक्ति नहीं हुई। महाराजा सूरतसिंह के काल में फिर यह पद अपने गौरव की स्थिति में आ गया, जब मोहता प्रतापमल बैद को मुसाहिब नियुक्त किया गया।[5] उस समय दीवान पद की स्थिति गिरकर राजा के निजी कामदार जैसी रह गयी थी। महाराजा सूरतसिंह के काल में दीवान अमरचन्द सुराणा, विद्रोही सरदारों के विरुद्ध दमनकारी नीति से पुरस्कृत होकर मुसाहिब पद पर नियुक्त किया गया। अमरचन्द सुराणा पहला व्यक्ति था, जिसने दोनों पदों—दीवान व मुसाहिब पर एक साथ कार्य किया था।[6] सुराणा की हत्या के पश्चात् फिर यह पद अलग-अलग व्यक्तियों को सौंप दिये गये थे।

'मुसाहिब' के क्या कर्त्तव्य थे, इसका स्पष्ट विवरण राज्य की बहियों व ख्यातों में नहीं प्राप्त होता है। इस सन्दर्भ के प्राप्त विवरण से ज्ञात होता है कि जिसको मुसाहबी की खिजमत'[7] सौंपी जाती थी, वह राज्य के प्रमुख विषयों पर अपनी सलाह देता था। कई बार सैनिक विभाग का संचालन भी 'मुसाहिब' किया करता था। प्रशासनिक क्षेत्र में राजा व सरदारों के बीच सम्बन्धों को जोड़ने वाली कड़ी मुसाहिब ही था। सामन्तों को पट्टे देते समय 'मुसाहिब'

---

१ परवाना बही वि० सं० १८००/१७४३ ई० पृष्ठ ७० ८१ १०२ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृष्ठ १४२ २१५

२ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृष्ठ १४२—राजा के भाई सूरसिंह को भी अपनी जागीर बचाने के लिये मानमहेश की प्रतिक्षा व याचना करनी पड़ी

३. मोहता ख्यात पृष्ठ ४६ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृष्ठ १६७

४ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सु महाराजा गजसिंघजी तांई पृ० ५

५ परवाना बही वि० सं० १८००/१७४३ ई०, पृष्ठ ८१

६ वही पृष्ठ १०२

७ दायित्व या सेवा

की सलाह ली जाती थी। महाराजा स्वरूपसिंह के समय में, मुसाहिब राज्य के प्रधान सेनापति के रूप में कार्य करता हुआ उल्लिखित हुआ है।[1]

इस पद का वेतन भी, इसकी बदलती हुई स्थिति व दायित्वों पर निर्भर करता था। सामान्यतः रु० ३०००) से १०,०००) तक वार्षिक वेतन मिलता था।[2]

बख्शी

बख्शी पद राज्य में बगसी व तनबगसी के नाम से जाना जाता था। महाराजा गजसिंह के काल में प्रथम बार इस पद की रचना हुई थी।[3] यह न केवल सैनिकों की भर्ती, उसकी सज्जा, अनुशासन व फौज खर्च के हिसाब के लिए ही उत्तरदायी था; बल्कि उसे बराबर विभागीय कार्य भी देखने पड़ते थे। वह सेना को वेतन देता था व अधिकारियों की नियुक्ति, पद-वृद्धि और पदावनति का विवरण भी रखता था। सेनाओं का विभिन्न वर्गों में वर्गीकरण भी वही करता था व उपस्थिति-पंजिका भी रखता था। राजधानी के दुर्ग की पोलों (दरवाजों) पर किलेदारों को वेतन व सिपाहियों की नियुक्ति करता था। साथ ही राज्य के सभी किलों का प्रबन्ध तथा नियुक्ति करता था।[4]

लेकिन वह सैन्य संचालन का कार्य नहीं करता था और न ही यह पद राज्य के प्रधान सेनापति के रूप में माना जाता था।[5]

तनबख्शी का एक विशेष कार्य राज्य के सामन्तों के साथ सम्बन्धों को निर्धारित करना था। यह उत्तरदायित्व मुसाहिब पद से लेकर तनबख्शी के पद को, उसके निर्माण के बाद दिया जाता था। सैन्य विभाग का अध्यक्ष होने के नाते राज्य के पट्टायत अपने सैनिक दायित्वों को लेकर इस पद से सम्बन्धित हो जाते थे। प्रत्येक पट्टे के प्रदान किये जाने से पहले, राजा के बाद तनबख्शी के

---

१. बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघ जी सू महाराजा गजसिंघ जी ताई, पृष्ठ ५,७, ३५; दयालदास ख्यात (अप्रकाशित) भाग २, पृष्ठ १८२, २२२.

२. परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृष्ठ ६१

३. वही, पृष्ठ १२०; मुगलों के बख्शी पद से यह बहुत प्रभावित था—इब्नहसन (पूर्व) पृ०२१५ राजपूत राज्यों में इस पद के अध्ययन के लिए—जी० सी० शर्मा (पूर्व) १८-२०

४. परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० १२०, पट्टा बही, वि० स० १७५३/१६९६ ई०, न० ७, पृ० १४४, भंय्या संग्रह— फौज री जमा खरच बही; वि० स० १८७२/१८१५ ई० चोपनीया तनबगसी का, वि० स० १८७३-७४/१८१६-१७ ई०, सीर बंधीरी हाजरी बही, वि० स० १८७३/१८१६ ई०, दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३२२

५. भंय्या संग्रह—पत्र, आसाढ़ सुदी ४ वि० स० १८४९/२३ जून, १७९२ ई०, पत्र, सावण सुद ७ वि० स० १८७४/२२ जुलाई; १८१७ ई०, बही कोटडी रै लाजम री वि० स० १८७४/१८१७ ई०, मोहता ख्यात, पृ० ६५

हस्ताक्षर होते थे व इस काय के लिए वह पट्टायतो से पट्टे का 'लाजमा' नामक कर भी वसूल करता था। तनबख्शी पट्टायतो को उनके राज्य के प्रति सैनिक दायित्वो को पूरा करने के लिए विवश करता था और राजा को सूचना भेजता था।[1] और किसी पट्टे के क्षेत्र मे कानून व व्यवस्था की समस्या किसी कारण को लेकर उत्पन्न हो जाती थी तो उसका प्रबन्ध भी तनबख्शी को ही करना पडता था।[2] सेना के विभिन्न भागो से सम्बन्धित विभागो के अध्यक्ष जो हवलदार व दरोगा होते थे के कार्यो का निरीक्षण भी वही करता था।[3]

यह पद राज्य मे वशानुगत नही था। मुत्सद्दियो के विभिन्न परिवारो के सदस्यो ने इस पद को सुशोभित किया था। प्राप्त विवरणो के अनुसार इस पद पर सर्वप्रथम नियुक्ति कायस्थ भैय्या आनन्दचन्द की सन् १७५२ ई० मे हुई जो महाराजा गजसिंह के समथक और विश्वासपात्र थे। इसके पश्चात मूधडा व मोहता परिवार के सदस्य इस पद पर चुने गये थे। भैय्या परिवार मे नथमल जी ने फिर इस पद को महाराजा सूरतसिंह के काल मे सभाला था। इस पद का वार्षिक वेतन ४०००) रु० वार्षिक था जो महाराजा सूरतसिंह जी के काल मे बढकर ५०००) रु० कर दिया गया था।[4]

शिकदार

बीकानेर राज्य का शिकदार मुगलो के शिकदार से भिन्न था। मुगल व्यवस्था मे शिकदार सिर्फ एक परगने का मुख्याधिपति था[5] जबकि बीकानेर प्रशासन मे वह मन्त्रि मण्डल का एक सदस्य माना जाता था। राजा रायसिंह व उसके उत्तराधिकारियो के समय यह पद दीवान पद के बाद सबसे अधिक प्रभावशाली पद था। तनबख्शी से पूर्व सैन्य विभाग इसी पद के अन्तर्गत था। मुसाहिब के अभाव मे पट्टा क्षेत्र से सम्बन्धी काय भी इन्हे सभालने पडते थे। दीवान की शक्तियो को नियन्त्रित करने वाला यह अन्य मन्त्री होता था।[6]

वैद ठाकुरसी राजा रायसिंह का विश्वसनीय शिकदार था। राजा ने उसे जागीर मे भटनेर का परगना प्रदान किया था।[7] राज्य का प्रसिद्ध दूसरा

१ मोहता ख्यात पृ० ६५
२ वही पृष्ठ ६५
३ भय्या सग्रह—फौज री जमा बही वि० स० १८७२/१८१५ ई०
४ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० १२० २२
५ डा० ए० एल० श्रीवास्तव—अकबर महान् भाग—२ पृ० १४६ पी० सरन—दी प्रोविन्शियल गवनमेट आफ दी मुगल्स पृ० १६६ ६७ एशिया १९७३
६ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई० पृ० ६१ १०२ मोहता ख्यात पृ० १७ २०, दयालदास ख्यात (अप्र०)२ पृ० २६२ ६३ ३२५ २७
७ दयालदास ख्यात (प्र०) २ पृ० १२२

ाकदार महाराजा सुजाणसिंह जी के समय खवास आनन्दराम हुआ था। रका महाराजा पर अधिक प्रभाव होने की वजह से शीघ्र ही संघर्ष मे आना ड़ा जिसका परिणाम यह हुआ कि शिकदार की हत्या करवा दी गई।[१] इस टना के बाद शिकदार पद का महत्त्व गौण होता गया। उसके अधिकार मे र्फ राज्य की भूमि के क्रय-विक्रय, चुगी-कर और राज्य-टकसाल का विभाग) रह गये थे।[२] महाराजा सूरतसिंह जी के काल मे एक बार फिर यह पद हत्त्वपूर्ण बन गया। मोहता प्रतापमल बैंद की इस पद पर नियुक्ति की गई ो, जिसका वेतन ८०००) रुपया वार्षिक था; लेकिन दीवान पद व मुसाहिब द के उत्थान के साथ फिर इसका महत्त्व उसी काल मे गिर भी गया था।[३]

़कील

पडोसी शक्तियो के साथ कूटनीतिक पत्र-व्यवहार से सम्बन्धित विभाग ा अध्यक्ष वकील कहलाता था। साधारणतया कायस्थ परिवार के व्यक्ति ही स पद के लिए चुने गये थे। इस पद के पीछे वार्षिक वेतन २०००) रु० प्रदान कया जाता था, जो आगे चलकर सन् १६८७ मे ३०००) रु० हो गया था।[४] मुग़ल काल मे वह शाही दरबार मे राजा के प्रतिनिधि के रूप मे रहता था। अन्य राज्यों मे भी वह राजा के प्रतिनिधि के रूप मे नियुक्त किया जाता था। इसका मुख्य कार्य, मुगल दरबार की गतिविधियों की जानकारी अपने राजा को भेजना होता था। उस समय वह शाही दरबार में सम्राट व अन्य प्रशासनिक अधिकारियों का समर्थन पाकर अपने शासक के लिए मनसब व जागीर में वृद्धि के प्रयत्न करता रहता था। सम्राट, वज़ीर व अन्य मुगल पदाधिकारियों को जो नजर व भेंट दी जाती थी, उसका भी पूरा विवरण वकील रखता था।[५] मुगलो के पतन के बाद इसकी स्थिति व कार्य बदले गये। अब वह पडोसी व अन्य राज्यो के साथ अपने राज्य के हो रहे पत्र-व्यवहार व कूटनीतिक वार्ताओं का सचालन करता था। एक तरह से विदेश-विभाग के कार्य उसके द्वारा निर्देशित होते थे।[६]

---

१. बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघ जी सूं महाराजा गजसिंघ जी ताई, पृ० ७
२. भैय्या पत्र— पोष वदि ११, १८७३/१५ दिसम्बर, १८१६ ई०; परवाना बही वि० स० १८००/१७४३, पृ० ६१,१०२
३. परवाना बही वि० सं० १८००/१७४३ ई० पृ० १०२
४. कामदारो व वकीला रे रोजगार री वही, वि० स० १७५३/१६९६ ई०, न २०६; परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० १४५-४७
५. कामदारो व वकीलों रे रोजगार री वही. वि० स० १७५३/१६९६ ई०, न० २०६
६ कामदारो व वकीलो रे रोजगारी बही वि० स० १७५३/१६९६ ई०, भैय्या पत्र पोष बदी ५, वि० स० १८७१/११ दिसम्बर, १७६४; बैसाख सुदी ७, १८६४/१४ मई १८०७,

पुरोहित

यह राजा व राज्य के धार्मिक, पुनीत कार्यों व समारोहो को सम्पन्न कराता था।[1] कई बार महत्त्वपूर्ण कूटनीतिक कार्य के लिए पडोसी राज्यो मे भी भेजा जाता था।[2] यह पद वशानुगत था, जो तौलियासर के पुरोहितो के पास रहता था।[3] पुरोहित मानमहेश ने राज्य की राजनीति मे सक्रिय भाग लिया था तथा राजा दलपतसिंह के साथ अच्छे सम्बन्धो के परिणामस्वरूप वह राज्य का मुसाहिब नियुक्त किया गया था। राजा सूरसिंह द्वारा अपने विरोधियो से बदला लेने की नीति के फलस्वरूप इनकी जागीरें जब्त कर ली व पुरोहिती इस परिवार से छीन ली, जो बाद मे वापिस कर दी गई थी।[4]

अधिकारी व कर्मचारी वर्ग

मन्त्रियो व मुख्य पदाधिकारियो के अलावा प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभिन्न अधिकारियो व कर्मचारियो की नियुक्ति भी की गई थी। ज्यो-ज्यो प्रशासनिक व्यवस्था दृढ व सगठित होती जा रही थी, उसी के अनुसार अधिकारियो व कर्मचारियो की सख्या बढती गई व उनका कार्य-क्षेत्र भी निश्चित होता चला गया। इनमे से बहुत तो मन्त्रियो के अधीन कार्य करते थे और कुछ स्वतन्त्रतापूर्वक अपने-अपने विभाग का सचालन करते थे। कर्मचारी मन्त्री व अधिकारी के साथ जुडे रहते थे। इस प्रकार पूरा प्रशासनिक ढाचा तैयार हो गया था।

खजाची

इस पद पर चरित्रवान और विश्वसनीय व्यक्ति की नियुक्ति की जाती थी। यह खजाना-विभाग का अध्यक्ष होता था। खजाने मे आने वाली आय व जाने वाले खर्च का ब्यौरा रखता था। १८वी शताब्दी मे एक खजाची को सैनिक दायित्व भी सौपे गये थे, और वह सैनिक अभियानो पर गया था। इसके विभाग म एक नायब भी होता था जो 'हुवलदार' व कभी 'दरोगा' के नाम से जाना जाता था। खजाची को ५०) रु० मासिक वेतन पर नियुक्त किया जाता था।[5]

माघ सुदी १० वि० स० १८७५/४ फरवरी १८१६ ई०, मोहता ख्यात, पृ० ६५, देवडा-ब्यूरोक्रेशी इन राजस्थान, पृ० १००-१०६

१. कर्णाविलास, पृ० १५
२. मोहता ख्यात, पृ० ३१-२८
३. दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० १२८
४. वही, पृ० १४२-४३
५. खजाने री जमा खरच री बही, वि० स० १७५५/१६६८ ई०, न० ३३; थोरावले लेखे बही, वि० स० १७७५/१७१८ ई०, न० ३१२

दफ्तर का हुवलदार

दीवान कार्यालय में, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी हुवलदार कहलाता था। इसका मुख्य दायित्व राज्य म वसूल होने वाले करो का निर्धारण करना था। दीवान स स्वीकृति आन पर वह निर्धारित करो की सूचना उन अधिकारियो को भेजता था जो कर-वसूली के लिए गावों मे जाते थे। उन अधिकारियो का वेतन व भत्ता भी निर्धारित करके उन्हे देता था। विपत्ति के समय में वह उन करो म छूट की भी घोषणा करता था। इन कार्यों से सम्बन्धित पत्र व आदेश उसका कार्यालय तैयार करता था। पट्टो के क्षेत्र से केन्द्र को होने वाली आय का हिसाब भी यही रखता था।[1]

खुवासगिरी

खुवासगिरी की खिजमत प्राप्त करने वाला खुवास किसी विभागीय पद के अधिकारी के नाम स नहीं जाना जाता था। खुवास एक पदवी थी, जो राजा के हुजूरियो म से किसी एक को विशेष (खास) कृपा होने पर दी जाती थी। इसके अलावा राज्य की विशेष सेवा करने पर भी इन्हे खुवास की पदवी प्रदान की जाती थी। राजा के ये विशेष कृपा-पात्र न केवल राजा के साथ उसके पीछे हाथी पर बैठते थे, दरबार मे उसके पीछ खड़े होते थे व राजा की मुहर रखते थे। कभी-कभी विभिन्न विभागो का दायित्व भी इन्हे सौंपा गया था। सेना के विभिन्न विभागों की फौजदारी इन्हे सुपुर्द की जाती थी व विभिन्न किलो के किलेदार भी नियुक्त किये जाते थे। खुवासगिरी भी वशानुगत होती थी।[2]

ड्योढीदार

राजमहलो की देख-रेख, निरीक्षण व सुरक्षा दायित्वो को निभाने तथा महलो के दरवाजो की चाबिया रखने वाला ड्योढ़ीदार कहलाते थे। राजपूतो की कुछ जातियाँ विशेषत. परिहार, भाटी तथा इनकी विभिन्न शाखाओ के व्यक्तियो को ही यह पद वशानुगत स्तर पर प्रदान किया गया था। अविश्वास की दशा मे ही हटाया गया था। इस पद से जुड़े हुए मुख्य कर्त्तव्य इस प्रकार थे—शासक की

---

१. कागदो की बही, वि० स० १८२०/१७३६ ई०, न० २, पृ० २४-२८, वि० सं० १९५७/१९०० ई०, न० ११, पृ० १०१-३, वि० स० १८६७/१९१० ई०, न० १६, पृ० ५१-५३, कामदारी पट्टे—परवाना बही न० १

२. परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० १२८, देश-दर्पण, पृ० १४७ ५०, मोहता ख्यात, पृ० १२९

उपस्थिति मे प्रत्येक व्यक्ति, जो इनसे मिलने आता, उस पर पूरी दृष्टि रखना, शासक की अनुपस्थिति मे जब कोई व्यक्ति शासक के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने आता तो उसका विवरण रखना, राजमहलो की सुरक्षा का प्रबन्ध करना आदि थे ।[1]

साहणी—राजकीय अस्तबल (तबेला) का मुख्याधिकारी साहणी कहलाता था । चूंकि राठौडो की सेना मे मुख्य अग के रूप मे घुडसवार दस्तो का सदैव महत्त्व रहा था, इस कारण केन्द्रीय स्तर पर तबेले व उसके अधिकारी के रूप मे साहणी का भी वैसा ही महत्त्व व सम्मान रहा । यह पद भी वशानुगत रूप से हजूरियो मे राजपूत परिहारो के पास रहा, जिनकी स्थायी जागीर बेलासर गाँव की थी ।[2] साहणी घोडो की खरीद, उनके निरीक्षण व विभाग से सम्बन्धित सभी समस्याओ का दायित्व सभालता था । वह **बारगीर**[3] घुडसवारो को घोडे प्रदान करता था । दीवान, मुसाहिब, सिकदार व फौजदारों के सैनिक अधिकतर बारगीर ही होते थे । इसके सहायक अधिकारी हुवलदार व **मुसर्रफ** (मुशर्रफ) कहलाते थे जो कि रसद आदि की व्यवस्था रखते थे ।[4]

फौजदार

शुतरखाना (ऊठो का विभाग) **तोपखाना, पीलखाना** (हाथी-विभाग) व **सिलेहपोसखाना** (शस्त्रागार) का मुख्य विभागीय प्रशासनिक अधिकारी **फौजदार** कहलाता था । जो अपने विभाग से सम्बन्धित खरीद, निरीक्षण व वस्तुओ के प्रबन्ध की व्यवस्था रखते थे ।[5] बीकानेर राज्य मे ऊठसवारो के दस्ते सेना के एक महत्त्वपूर्ण अग थे, जो रेगिस्तानी वातावरण मे बहुत प्रभावशाली सिद्ध होते थे । अत शुतरखाने के फौजदार का अपना महत्त्व होता था । इनकी सहायता के लिये हुवलदार व दरोगा होते थे, जो मुख्यत· हाथियो व ऊठो की

---

१. मोहता ख्यात, पृ० १२८, देशदर्पण, पृ० १४७
२ मोहता ख्यात, पृ० १२८, देशदर्पण, पृ० १५०
३. बारगीर वे सैनिक होते थे, जिन्हें लडने के लिये घोडा व शस्त्र राज्य की तरफ से मिलते थे। मुगलो में भी इस प्रकार के सवार थे—इर्विन—दी आर्मी आफ दी इण्डियन मुग़ल्स्, पृ० ३६,३८, दिल्ली १९६८
४. वही तबेला खरच वि० स० १७५६ / १६९९ ई०, न० २३४—बीकानेर बहीयात, कागदो की बही वि० स० १८६३ / १८०६ ई०, पृ० २६, स० १८७०/१८१३ ई०, न० १९/२, पृ० ६०
५ हाथियो व तुलादान की बही वि० स० १७४८/१६९१ ई०, न० २००; बीकानेर बहियात, कागदो की बही स० १८५७/१८०० ई०, पृ० ७३, २०६, स०१८६३/१८०६ ई०, पृ० ४०, सं० १८७३/१८१६ ई०, पृ० ५२

व्यवस्था का दायित्व सभालते थे।[1] तोपखाने का फौजदार नई तोपो के निर्माण तथा बारूद का प्रबन्ध करता था।[2] शस्त्रागार का फौजदार विभिन्न शस्त्रो का सग्रह तथा उनकी आपूर्ति की व्यवस्था करता था। शस्त्रागार बडा कारखाना के नाम से भी जाना जाता था।[3] इसके अलावा रथखाना का भी फौजदार होता था।[4]

मडी रा हुवलदार

इसे थी मडी का हुवलदार भी कहा जाता था। राजधानी के क्षेत्र म होने वाली राहदारी, चुगीकर, आयात-निर्यात कर, क्रय-विक्रय आदि की आय थी मडी म जमा होती थी, जिसका मुख्य प्रशासनिक अधिकारी हुवलदार होता था। यह हुवलदार वसवो व गावो की मडियो का निरीक्षण करता था तथा केन्द्रीय प्रशासन का एक सम्मानजनक अधिकारी होता था तथा शासक मुत्सद्दी की निष्ठा परखने के बाद ही किसी को इस पद पर नियुक्त करता था।[5]

मोदीखाना रा हुवलदार

राजपरिवार, राजा पर आश्रित अनेक व्यक्ति, सवक, चाकर, सैनिको की रसद, मन्त्रियो, अधिकारियो, व कर्मचारियो की यात्रा के समय रसद का प्रबन्ध मोदीखाना स होता था, जिसका मुख्य अधिकारी मोदीखाना का हुवलदार कहलाता था।[6] जितनी भी रानियाँ पातुरें,[7] पासवान,[8] व खवासवान[9] थी, उनका भी पेटीया[10] मोदीखाने स ही व्यवस्थित होता था।[11] मोदीखाने के अन्तर्गत खाद्यसामग्री व रसद के जो विशाल भडार होत थ, उनकी व्यवस्था

---

१ वि० स० १८७३/१८१६, पृ० ५२

२. बही फौज रै पीछ री स० १८६५/१८०८ ई० न० १६२, बीकानर बहियात, कागदो की बही स० १८२७/१७७० ई० पृ० ४१ ५० स० १८६३/१८०८ ई० पृ० ७० ७२

३ कागदा की बही स० १८५७/१८०० ई० पृ० ७३ १८५६/१८०२ ई०, पृ० ५१, सं० १८६३/१८०६ ई०, पृ० १४ २७, ३५ ४५, २८५

४ हाथिया व तुलादान की बही स० १७४८/१६६१ ई० न० २००

५ मण्डी बहियाँ—स० १७८३/१७२६ ई०, न० ७८ स० १७६६/१७४२ ई० न० ७८ सं० १८०७/१७५० ई०, न० ८०, बीकानर बहियात—रा० रा० अ० बी०

६ बही कोठार रै धान री, वि० सं० १७४२/१६८५ ई० न० ५६—बीकानर बहियात—रा रा अ बी

७ दासियाँ, पाथिकाय व नतकियाँ

८ राजा की विशष स्त्री

९. राजा की कृपापात्र स्त्री

१० भत्ता

११ परगना की जमा खोड़ बही वि० स० १७२६ ५०/१६६६ ६३ ई०, न० ६६, बीकानेर बहियात रा रा अ बी

तथा उनकी पूर्ति व निरीक्षण का कार्य हुवलदार करता था। उसके सहायक दरोगा आदि होते थ।[1]

लेखणीया—यह कर्मचारी वर्ग का सामूहिक नाम था। प्रत्यक विभाग मे कनिष्ठ व वरिष्ठ लिपिक तथा कहीं-कहीं निरीक्षक का कार्य करने वाले लेखणीया के रूप म नियुक्त किये जाते थ। मन्त्री व अधिकारियो के आदेश को ठीक ठीक लेखबद्ध करना ही इनका प्रमुख कर्तव्य था। लख तैयार हो जाने पर वे उस सम्बन्धित अधिकारी व मन्त्री को दिखाकर फिर शासक द्वारा स्वीकृति लेकर आगे के लिए प्रेषित करते थे। लेखणीयें भी मुत्सद्दी वर्ग से चुने जाते थे तथा उनसे यह अपक्षा की जाती थी कि वे शिक्षित, कार्यपटु तथा निष्ठावान होगे।[2] अधिकाश मन्त्रियो व अधिकारियो ने लेखणीये के स्तर से ही अपना सवाकाल प्रारम्भ किया था।[3] विभाग के निरीक्षक के रूप मे लेखणीया की नियुक्ति केन्द्रीय प्रशासन म बहुत महत्त्वपूर्ण होती थी व उन्हे दायित्व लेखणीया की खिजमत के नाम स सोपा जाता था।[4]

उपर्युक्त विभिन्न पदो के विवरण स जहाँ यह बात स्पष्ट होती है कि कबीला प्रधान रेगिस्तानी क्षेत्र म जहा एक केन्द्रीय प्रशासन की स्थापना हो गई थी, वहा इन पदो के वर्गीकरण म स्पष्टता व निश्चितता का अभाव खटकता है। अधिकारी-तन्त्र अपन शैशवकाल स ऊपर उठता हुआ दृष्टिगत नही होता है, जबकि मुगल प्रशासन का गठन अपने समस्त पारस्परिक विरोधो के पश्चात् राज्य सामन्तवादी ढाचे म विकसित अवस्था म था। बीकानेर राज्य मे कही हुवलदार पद विभागाध्यक्ष के रूप मे आया है तो कही साधारण कर वसूली के कर्मचारी के रूप म तो दूसरे स्थल पर एक सहायक अधिकारी के रूप म। लेखणीया भी प्रशासन के सभी स्तर के पदो के प्रयोग मे आया है। केवल वेतन ही पद के स्तर का विभाजन करता है। सभवत निर्जन रेतीली भूमि के कम आबादी वाले क्षेत्र म कुनीय व कबीलावादी परम्पराओ स जूझते हुए मुगल सेवा म रत बीकानेर शासको को इमस अधिक करने का कुछ अवसर भी नही मिला होगा।

विभिन्न पदो व उनसे सम्बन्धित दायित्वो को देखते हुए हम मुत्सद्दी-वर्ग को तीन श्रेणियो म बाट सकते हैं। प्रथम श्रेणी मे वे मुत्सद्दी आते हैं जो राज्य के उच्च पदो पर मन्त्री या अधिकारी के रूप मे नियुक्त किए गए थे। इनका

१ बही कोठार रै धान री वि० स० १७४२/१६८५ ई० (पूव)
२ कामदारी पट्टे—परवाना बही न० १
३ जी० एस० एल० देवडा—ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान, पृ० ६-१८
४ लेखणीया की खिजमत—कामदारी पट्टे—परवाना बही, स० १८००/१७४३, न० १

वेतन कुछ नकद तथा कुछ पट्टे के क्षेत्र की आय द्वारा व्यवस्थित किया जाता था। जागीरी क्षेत्र के सम्मान तथा उच्चपद के कारण ये मुत्सद्दी वर्ग म उच्च श्रेणी के कहे जा सकते हैं। द्वितीय श्रेणी म कर-वसूली के अधिकारी तथा मत्रियो व उच्च अधिकारियो के सहायक अधिकारी आते हैं। इनम कर-वसूली के अधिकारी जो हुवलदार के नाम से विख्यात थे, एक अनुबन्ध के रूप मे वेतन की राशि प्राप्त करते थे अथवा कर की राशि म शासक द्वारा स्वीकृत प्रतिशत के रूप म वसूल करते थे। इस श्रेणी म खजाची, दरोगा मुशरफ आदि मासिक या वार्षिक वेतन के रूप म आय प्राप्त करते थे। यह मुत्सद्दी-वर्ग की मध्यम श्रेणी थी। अन्तिम व तृतीय अथवा वर्ग की निम्न श्रेणी म लेखणीया, गुमास्ता आदि आते थे जो मासिक स्तर पर अपना वेतन राजकोष, पट्टायत अथवा मन्त्री या अधिकारी से प्राप्त करते थे। इस श्रेणी के मुत्सद्दियो की सख्या अन्य दो की *तुलना म अधिक थी।*[1] *परन्तु ये तीनो श्रेणिया अलग अलग जाति स सम्बन्धित* होने के बाद भी अपने समान हितो के फलस्वरूप जुडकर एक ऐसे वर्ग का निर्माण करती हैं जो निश्चित रूप म अपने स्वार्थों म सामन्त विरोधी है तथा अपनी आय के साधनो को लेकर बनावट व स्वरूप म भी गैर-सामन्ती है। उस काल के समाज का मध्यम वर्ग इसी वर्ग म ढूंढा जा सकता है।

वैसे इस काल तक मुत्सद्दी-वर्ग अपनी समस्त नियुक्तियो व प्रभाव के पश्चात् भी सतोषजनक आधार ढूंढ नही पाया, और उसकी यह मूलभूत कमजोरी ही उसके विकास म बाधक थी। राजपूत प्रशासन म चाकर की सेवा पूणरूप से व्यक्तिगत थी। उसकी नियुक्ति, पदोन्नति तथा पदच्युति सभी राजा की इच्छा के परिणाम स होती थी। सार्वजनिक सेवा निश्चित व लिखित नियमो स बधी हुई नही थी बल्कि अपने मूल स्वरूप म अनुबन्धात्मक थी, जो बीच मे ही समाप्त की जा सकती थी। इस स्थिति क फलस्वरूप मुत्सद्दी राजा की दया पर आश्रित रह गये थ। राजा उन्हे राज्य के सर्वोच्च पद स गौरवान्वित कर सकता था तथा उन्हे जीविका देने हेतु निम्न पद पर भी नियुक्त कर सकता था। एक मुत्सद्दी के जीवन म ऐसे ही क्षण आते थे जब वह एक अवसर पर सुख व समृद्धि स आश्वस्त रहता था तो वही दूसरे अवसर पर दो वक्त का भोजन जुटाने के लिए भी तरसता था।[2] मुत्सद्दियो के राजपूत सामन्तो की तरह राज्य म किसी प्रकार के दावे नही थे। इस प्रकार अधिकारीतन्त्र, अपने आरम्भ से ही आर्थिक अस्थिरता तथा मनोवैज्ञानिक असुरक्षा की भावना से ग्रस्त था।

---

१ देखिये कामदारो पट्टे—परवाना बही न० १, हवाला गोपा कागद—कामदो की बही न० ४, ७ १०, ११

२ जो एस एल देवडा—ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान पृ० ६, १०

दरबारी प्रतिस्पर्धा एवम् उसके परिणाम

सन १५७० ई० के पश्चात् जहा राज्य म एक ओर केन्द्रीय सत्ता दृढता म स्थापित हुई, वहा दूसरी ओर इसके विभिन्न पदा को प्राप्त करन क लिए दरबारियो म एक सगठित गुटबन्दी का जन्म भी हुआ। इसक परिणाम राज्य के लिये अच्छे नही निकले थे। सत्ता लोलुप, व्यक्तियो ने झगडा, घृणा, प्रतिशोध व हत्या का वातावरण बनाकर नव स्थापित केन्द्रीय सस्थाओ के अस्तित्व तक को झकझोर डाला था।

राज्य की राजनीति व दरबारी प्रतिस्पर्धा प्रारभ से ही सत्ता के आर्कषण स प्रेरित थी। परन्तु यह अपने उद्भव व स्वरूप को लेकर अलग अलग समय मे भिन्न रही थी। प्रारम्भ म यह एक जातीय सघर्ष था। प्रशासन के सभी महत्त्व-पूर्ण पदो पर बच्छावत वश का एकाधिकार था तथा उन्हें शासक का पूर्ण विश्वास प्राप्त था। राव बीका के साथ आये अन्य कर्मचारी वर्ग ने इसे ईर्ष्या व सन्देह की दृष्टि से देखा, लेकिन उन्होने खुलकर विरोध कभी नही किया।[1] बच्छावतो की बढती हुई शक्ति का प्रथम सघर्ष स्वय शासक के साथ ही हुआ जो कि उनकी शक्ति का मूल स्रोत था। दीवान कमच द न राजा रायसिह को गद्दी स हटाकर उसक पुत्र दलपत को गद्दी पर बैठाने की योजना बनाई। पर उस सफलता नही मिली। वह अपनी षड्यन्त्रकारी गतिविधियो का भेद खुलन पर राज्य छोडकर भाग गया और उसी के साथ ही प्रशासनिक पदो पर बच्छावता का एकाधिकार भी समाप्त हो गया। राजा रायसिह व उसके उत्तराधिकारी भी इस तथ्य को भाप गये कि एक जाति के एकाधिकार से राजवश को कभी भी भय उत्पन्न हो सकता है। इस कारण उन्होने प्रशासनिक पदो पर एक जाति के व्यक्तियो के स्थान पर एक से अधिक जातियो के मुत्सद्दियो की नियुक्ति की। बीकानेर शासको की इस कार्यवाही स दरबारी राजनीति म जातीय पक्ष कमजोर पड गया।

इसके बाद बीकानेर के मुत्सद्दियो ने नये सिरे स गुटो का निर्माण किया, जो कि पूणतया दलगत भावना से प्रेरित थ। नय गुट एक जाति के स्थान पर समान स्वार्थों के विभिन्न जातियो के व्यक्तियो स मिलकर तैयार हुए, जिसम गुट का नेता दीवान बनने पर प्रशासन के विभिन्न पदा पर अन्य सदस्यो को नियुक्त करता था। इन नये गुटो म जातीय चरित्र पूर्णतया समाप्त नही हुआ था बल्कि कुछ जातियो ने मिलकर एक गुट बना लिया था। इनम मोहता व मूधडा अग्रणी थे।

---

1 दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० ११६ २२

महाराजा अनूपसिंह के काल मे, इस प्रतिस्पर्धा मे दो नये तत्त्व उभरने लगे। प्रथम, महाराजा ने बाहर से आये मुत्सद्दियो का राज्य मे स्वागत किया था तथा उन्हे विभिन्न पदो पर नियुक्त करके सम्मानित किया था। ये नये आगुन्तक, पुराने मुत्सद्दियो की ईर्ष्या के शिकार हो गए। पुराने मुत्सद्दी इन्हे परदेशी कहते थे[1] जिसके फलस्वरूप मुत्सद्दी-वर्ग देशी व परदेशी मुत्सद्दियो मे बट गया था। दोनो म, प्रतिस्पर्धा की स्थिति मे, सभी पुराने मुत्सद्दी अपनी गुट-भावना को छोडकर परदेशियो के विरुद्ध एक हो जाते थे। द्वितीय, अनूपसिंह ने प्रथम बार दीवान के पद पर 'हजूरियो' को नियुक्त किया था। मुत्सद्दी वर्ग का सघर्ष, मुख्यत राज्य के महत्त्वपूर्ण पदो को प्राप्त करने तथा अपने पक्ष के राजकुमार को, शासक बनाने से ही अधिक सम्बन्धित था। वह व्यक्ति जो दीवान पद पर नियुक्त होता था, वही विभिन्न 'चोरो' म 'हुवलदार' नियुक्त करता था[2], जो कि मुत्सद्दियो के 'मुख्य रोजगार' थे।[3] अत वे इस आशा मे एक गुट बना लेते थे कि उनके गुट के—व्यक्ति के नेता बनाने पर उन्हें रोजगार का अधिक लाभ मिलेगा।

राजपरिवार के सदस्य भी दरबारी गुटबन्दी मे सक्रिय हस्तक्षेप करने लगे थे। उनम से, अधिकतर युवक राजकुमार किसी एक पक्ष के साथ, अपने सम्बन्ध जोडकर भविष्य मे राजगद्दी पर बैठने के अपने दावे को दृढ करना चाहते थे। मुत्सद्दी अपना स्वार्थ इसमे यह ढूढते थे कि उनके पक्ष के व्यक्ति के गद्दी पर बैठने से उनका रोजगार निश्चित व लम्बे समय तक के लिए तय हो जायेगा। इन स्वार्थों ने राज्य के राजनीतिज्ञो को इतना उलझाया कि वे राज्य के हितो की परवाह न करके अपने हितो की पुर्ति मे जुट गए। इससे उत्पन्न होड ने प्रत्येक प्रकार के नृशस तरीको को भी अपनाने के लिए उन्हे नही रोका।

१८वी शताब्दी मे दुर्भाग्य से राज्य को अयोग्य शासक मिले, जिनके काल मे स्थिति नियत्रण म आने के स्थान पर और विकराल रूप धारण करने लगी। आपसी फूट व शासक की अयोग्यता व प्रशासन के प्रति उदासीनता ने राज्य के नव-स्थापित प्रशासन के शैशव काल मे ही उसे एक घातक धक्का दिया।[4] राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने लगी। राज्य की अव्यवस्था का लाभ सामन्तो कबीलो व पडोसी शत्रुओ ने उठाने की कोशिश की, जिसके फलस्वरूप

---

१ दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृ० २१६
२ हुवाला सौंपा कागद—कागदो की बही न० १०, ११
३ व्यवसाय स प्राप्त आय
४. बीकानेर राज्य की ख्यात महाराजा सुजाणसिंघ जी मू महाराजा गजसिंघजी ताई, पृ० ५, ७, १३, ३५, ४२

राज्य की समस्या और जटिल हो गयी ।[१] मुत्सद्दी भी आपसी कलह व संघर्ष के कारण एक दृढ संगठन नही बना सके । उनकी फूट ने राज्य म गैर सामन्तवादी शक्तियो को कभी एक नही होने दिया बल्कि पारस्परिक द्वेष के कारण वे स्वय को ही अधिक नुकसान पहुचा पाये ।[२]

पचम अध्याय

स्थानीय प्रशासन

सामान्य व वित्तीय प्रशासन सम्बन्धी सुविधाओ के लिए राज्य कई क्षेत्रीय इकाइयो मे विभक्त था। इन इकाइयो का निर्माण किसी घोषणा या कानून द्वारा नही, बल्कि ऐतिहासिक क्रम मे हुआ था। प्रारम्भ मे राज्य राजनैतिक व प्रशासनिक स्तर पर तीन क्षेत्रीय इकाइयो मे विभक्त था, यथा—राजा या राव का क्षेत्र, कुल-मुखियो या ठाकुरो का क्षेत्र तथा कबीलो व जातियो का क्षेत्र। १६वी शताब्दी के अन्त तक, यह श्रेणिया परिवर्तित होकर, खालसा, पट्टा व सासण के नाम म प्रसिद्ध हुई। यह वर्गीकरण प्रारम्भ म राज्य की प्रशासनिक आवश्यकताओ के अनुकूल था। कालान्तर मे, प्रशासन के केन्द्रीकरण की बलवती इच्छाओ, सभी श्रेणियो मे समान प्रशासनिक उत्तरदायित्व की भावनाओ, सामन्तो के क्षेत्र म हस्तक्षेप तथा कृषि व व्यापारिक वृद्धि व सुरक्षा की माग के फलस्वरूप राज्य म, प्रशासनिक स्तर पर रद्दोबदल की आवश्यकता अनुभव हुई। परिणामस्वरूप राज्य को, राजस्व व सामान्य प्रशासनिक इकाइयो के रूप मे पृथक् तथा विभक्त किया गया। राजस्व इकाइया, चौरा व परगना कहलाई तथा प्रशासनिक इकाइया, थाणे के नाम स विख्यात हुई। एक ओर राजस्व इकाई मण्डी पृथक् रूप से, थाणो के साथ प्रस्थापित की गयी। यद्यपि खालसा, पट्टा व सासण के गाव बने रहे, परन्तु (अब) वे एक चौरे के अग बन चुके थे।

चौरा-व्यवस्था

चौरा-व्यवस्था वास्तव म, केन्द्रीय प्रशासन द्वारा निर्धारित करो की वसूली की एक सुविधाजनक, क्षेत्रीय राजस्व प्रशासनिक व्यवस्था थी। राजा रायसिंह के काल से राज्य में शासक की दृढ़ सत्ता स्थापित होने के साथ, सामन्ती क्षेत्रो से भी, नियमित रूप से निर्धारित करों को वसूल करने की प्रथा प्रारम्भ हुई, यथा—खेड़ खरच, हबूब, धुआं भाछ, नोता, रूखवाली भाछ, घोडा रेख[1] इत्यादि।

---

१ खड खरच, घाड़ रेख, रुखवाली भाछ सैन्य कर थ, धुआ भाछ गृहकर का नाम था, हबूब सामान्य व विविध कर था तथा नोता राज-परिवार के सदस्यों के विवाह के अवसर पर लगाया गया कर था।

से प्रभावित थी। प्राकृतिक विपदाओ के समय तो 'चीरे' के कई गाव सूने हो जाते थे तथा कभी-कभी पूरा 'चीरा' ही गायब हो जाता था।[1]

राज्य मे विभिन्न 'चीरो' के नाम इस प्रकार थे—चीरा नोहर, रीणी, सीहागोटी, गधीली, बुधणाऊ, सीहवागो (राज्य के उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र मे) गुसोईसर, शेखसर, खेदडो, महाजन (मध्य क्षेत्र मे) जसरासर, वीदाहद, राजाहद, (पूर्वी क्षेत्र मे) अनूपगढ, पूगल (पश्चिमी क्षेत्र मे) तथा मगरा खारी पट्टी (दक्षिणी क्षेत्र मे), 'चीरे' के ये नाम उनकी भौगोलिक स्थिति व बसने वाली मुख्य जाति के नाम पर तथा क्षेत्र के सास्कृतिक एवम् व्यापारिक महत्त्व के आधार पर रखे गये थे।[2] विभिन्न 'चीरो' के नामकरण से राज्य के इतिहास मे एक विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इससे पूर्व सभी क्षेत्रीय इकाइया जाति-विशेष के नाम से विख्यात थी। लेकिन अब राठोडो की सत्ता स्थापित होने के बाद अन्य कारण प्रभाव मे आने लगे थे। इन 'चीरो' का वर्गीकरण क्षेत्रीय समानता के आधार पर नही किया गया था। यहा तक कि इसकी कुल आय भी समान न थी।[3] 'चीरो' का मुख्य केन्द्र खालसा भूमि मे ही स्थापित होता

---

१. सन् १७२६ ई० म चीरा खेदडा म ३८ गाव खालसा के थे, जो सन् १७१६ ई० मे, उजड जाने के कारण केवल एक गाव रह गया तथा उसी गाव के नाम पर चीरे का नाम बदल कर पुनसीसर हो गया था। सन् १७५६ ई० मे गधीली व सीहागोटी के चीरे सूने हो गये थे। बचे हुए आबाद गाव चीरा नोहर मे मिला दिये गये थे। चीरा बुधेणाऊ भी घटकर चीरा राजाहद नाम से विख्यात हुआ था

—वही खालसा रे गाव री, वि० स० १८३०/१७७३ ई०, कागदो की बही, वि० स० १८११/१७७४ ई०, न० १, पृष्ठ ४-८; वि०स० १८३८/१७८१ ई०, न० ५, पृ० ५६-५८; वि० स० १८३६/१७८२ ई०, न० ६, पृष्ठ ४४-४६

२ धुआ रोकड बही, वि० सं० १७५०/१६६३ ई०, न० ८८; कागदो की बही, वि० सं० १८६३। १८०४, न० १४, पृष्ठ ११४—राजधानी के दक्षिण भाग की भूमि ककरीली व सख्त है तथा मगरे के नाम से विख्यात है, इस कारण इस क्षेत्र का चीरा मगरा कहलाया। राजधानी के दक्षिण-पश्चिम भाग की भूमि लवण की विशेषता रखने के कारण वहां का चीरा खारी-पट्टी नाम से विख्यात हुआ। कुछ चीरे अपने क्षेत्र के प्रमुख गाव या कस्बे के नाम स प्रसिद्ध हुए थे। उदाहरणार्थ—जसरासर, नोहर, शेखसर के चीरे। पुराने नगरो व कसबो के सास्कृतिक व व्यापारिक महत्त्व को देखते हुए उनके नाम पर चीरो का नामकरण किया गया, जैसे—रीणी, नोहर के चीरे—सेन्सस रिपोर्ट, बीकानेर, पृष्ठ १८(बी), सन् १९४४ ई०

३. धुआं रोकड बही, वि० १७५०/१६६३ ई०, न० ८८; धुआ माछ गृहकर था जिसे प्रत्येक गुवाडी से वसूल किया जाता था। जहा चीरा रीणी की कुल आय २०८६६८।।) वार्षिक थी वहा चीरा गन्धीली की आय रु० १६४२।) वार्षिक थी

था।[1] चीरा महाजन व पूगल पूर्णतया पट्टा क्षेत्र से निर्मित थे। अतः वे अपवाद थे। पट्टा क्षेत्र को तभी चीरा स्तर प्रदान किया जाता था जब उसमें लगभग १०० गाव बसे होते थे।[2]

चीरे का प्रशासन चलाने के लिए दो तरह के अधिकारी नियुक्त होते थे जो अपने अलग अलग दायित्वों को निभाते हुए भी एक दूसरे के सहयोगी कार्य कर्त्ता के रूप में कार्य करते थे। प्रथम वर्ग में एक तो वे अधिकारी आते थे जो अनुबन्ध वेतन पर चीरे में करों को वसूल करने के लिए समय समय पर भेजे जाते थे तथा दूसरे वे अधिकारी थे जो स्थायी रूप से वार्षिक वेतन पर नियुक्त किये जाते थे। द्वितीय वर्ग में वे स्थायी स्थानीय अधिकारी आते थे जिनकी स्थिति व कार्यकाल उनके वंशानुगत अधिकारों के आधार पर निर्धारित होता था।[3] ये स्थानीय तत्त्व राज्य प्रशासन में घुल मिलकर उसके अविभाज्य अंग बन गये थे।

राज्य द्वारा नियुक्त अधिकारियों का मुखिया चीरायता या हाकिम कहलाता था। अनुबन्ध वेतन वाले अधिकारी हवलदार के नाम से विख्यात थे। अधिकांशतः ये तीनो पद एक ही व्यक्ति को दे दिये जाते थे। तब ये अपना वेतन अलग अलग दायित्व के अनुसार पाते थे। इन पदों का मुख्य सहायक दरोगा होता था जो अपनी पुलिस शक्तियों के प्रयोग से हवलदार को कर वसूली में सहयोग देता था तथा हाकिम व चीरायत के लिए क्षेत्र में व्यवस्था रखता था। कर्मचारियों में लेखणियें मुख्य होते थे जो निर्धारित करों की आय व्यय का हिसाब किताब रखते थे। खजाची का गुमास्ता एकत्रित धन को खजाने में जमा करवाता था।[4] चीरे के स्थानीय स्थायी अधिकारियों में गाव का चौधरी जमींदार व पटवारी मुख्य होते थे जो हवलदार को उसके दायित्वों की पूर्ति में पूर्ण सहयोग देते थे। चौधरी गाव का मुखिया होता था। जमींदार नव स्थापित गाव का मुख्य स्थानीय

---

१ यह सम्भवतः इस कारण हुआ हो क्योकि केन्द्रीय प्रशासन खालसा भूमि पर ही बिना किसी बाधा के सीधे नियन्त्रण की प्रशासकीय नीतिया लागू कर सकता था।

राज्य चीरों का मुख्य स्थान का चुनाव करते समय अपनी व्यापारिक मण्डियों व मार्गों का भी ध्यान रखता था। अनूपगढ़ रीणी नोहर महाजन बीदासर जसरासर के कसबे व गाव व्यापारिक मार्गों पर स्थित थे तथा यहां मण्डियां स्थापित थी।—सावा बहीयां—रामपुरिया रिकार्ड्स बीकानेर।

२ परवाना बही वि० स० १७४९/१६९२ ई०।

३ चीरे की बहिया न० २७ ३१ बीकानेर बहियात बीकानेर

४ चीरा नोहर रे लेखे की बही वि० स० १७४९/१६९२ ई० न० २८ धान की चौथाई की बही वि० स० १८३९/१७८२ ई० रा० अ० बी०

धिकारी होता था व 'पटवारी' का मुख्य दायित्व गाव की आय का ब्योरा खना व सामान्य प्रशासन मे सहयोग देना था।[1]

परगना

चीरो के समान ही 'परगना' भी एक स्वतन्त्र प्रशासनिक इकाई था। परगनो का प्रशासनिक इकाई के रूप मे पृथक् रूप से गठित होने के मुख्य कारण, ऐतिहासिक शक्तिया थी।[2] परगना मुख्यत वे क्षेत्र थे, जो बीकानेर शासको को मुगल सम्राट द्वारा 'तनख्वाह् जागीर' के रूप मे प्राप्त हुए थे। ये बीकानेर 'वतन जागीर' की सीमाओ पर स्थित थे। मुख्य रूप से, ये 'परगने' भटनेर बेणीवाल, पूनया, सिवराण के क्षेत्र तथा फलौदी व हिसार के कुछ भाग भी थे।[3] मुग़लो के पतन के काल मे, बीकानेर राज्य मे इन्हे स्थायी रूप से सम्मिलित कर लिया गया था, लेकिन इनके नामो मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही किया गया। इन्हे किसी क्षेत्र म शामिल न किये जाने के कारण पृथक् प्रशासनिक इकाई के रूप मे, इनका अस्तित्व बना रहा।[4] १६वी शताब्दी के प्रारम्भ मे, चीरो के कुछ क्षेत्रो को विभाजित करके 'परगनो' का नाम दिया गया था, फिर भी ये चीरा की अधीनस्थ इकाई नही बने। इस काल से ही परगने तहसील के नाम से जाने जाने लगे।[5]

'परगनो' के प्रशासन का स्वरूप लगभग वैसा ही बना रहा, जैसाकि मुगल नियन्त्रण के समय था। केवल उनके कुछ अधिकारियो के नामो मे परिवर्तन किया गया। राजस्व वसूली के लिए 'आमिल' के स्थान पर 'हुवलदार' कार्य करता था। 'अमीन' भूमि-मापन व कर-निर्धारण के दायित्यो को निभाता था और 'पोतदार' करो को जमा करता था। इन परगनो मे कानून व व्यवस्था के स्थापित करने के लिए 'फौजदार' की नियुक्ति की जाती थी। इनकी सहायता के लिए गावो के स्थानीय अधिकारी 'चौधरी', 'पटवारी' व 'कानूनगो' सदैव तत्पर

१. खालसा गांव रे लेखे री बही, वि० स० १७२६/१६६६ ई०, न० ६५; देस रे खालसा बही, वि० स० १७४०/१६८३ ई०, न० ६७—बीकानेर बहियात
२. राज्य के इतिहास ग्रन्थो मे परगनो को चीरा की छोटी इकाई माना गया है। इन परगनों का आगे चलकर नाम तहसील रखा गया था, और ये निजामत के अन्तर्गत बने थे। उसी प्रभाव में इन्हें चीरो की इकाई के रूप म स्वीकार कर लिया गया था।—पाउलट पृष्ठ १०२, सोहनलाल—तवारिख, पृष्ठ २५-२७
३. राजा सूरजसिंघ रै जागीर री विगत, पृष्ठ ६०-६१, महाराजा अनूपसिंघजी रे मुसनब नै तलब री विगत, पृष्ठ ८८-६० फुटकर बात
४. देशदर्पण, पृष्ठ १२०-२२, न० १८६/८—अ० स० प० बी०
५. पाउलेट, पृष्ठ १०२; सोहनलाल—तवारिख, पृष्ठ २५-२७

रहते थे।[1] इस प्रकार इन इकाइयो म मुगल प्रभाव पूणतया छाया रहा।

अन्य प्रशासनिक केन्द्र

चीरा क्षत्र मे मण्डी व थाणा स्वतन्त्र राजस्व तथा प्रशासनिक केन्द्र के रूप मे स्थापित किये गये जिन पर चीरा अधिकारियो का कोई नियन्त्रण नही होता था।

मण्डी

राज्य ने सीमा कर व व्यापारिक कर की वसूली के लिए सीमा पर स्थित गावो मे तथा व्यापारिक मार्गों के केन्द्रो पर मण्डिया स्थापित की थी। राजधानी की सदर मण्डी' राज्य की मुख्य मण्डी थी और उसकी आय भी अन्य की तुलना मे अधिक थी। अन्य मण्डियो म रीणी नोहर अनूपगढ राजगढ नूणकरणसर बीदासर महाजन गधीली व पूगल की मण्डिया प्रसिद्ध थी। भटनेर का राज्य का स्थायी भाग बन जाने पर उत्तरी पश्चिमी भारत की यह प्रसिद्ध मण्डी भी राज्य की आय का एक महत्त्वपूण स्रोत बन गयी। इन मण्डियो की सहायक मण्डिया भी थी जो कसबो क आसपास के गावो म स्थित होती थी। उन्हें बाहरली चौकी[2] कहा जाता था।[3]

इन मण्डियो का प्रशासनिक सगठन इनके अलग अलग व्यापारिक महत्त्व को देखते हुए किया गया था। साधारणतया प्रत्यक मण्डी का मुख्य प्रशासनिक

---

१ परगनो की जमा जोड वही वि०स० १७२६ ५०/१६६६ १६६३ ई० न० ६६ बही ममन र चिठीया र खतावती वि० स० १८६६ ७०/१८१२ १३ ई० न० ३६/२ रामपुरिया रिकाड स बीकानर पी० सरन—दी प्रोविंशियल गवनमेण्ट ग्राफ दी मगल्स पष्ठ १६७ ६६ एशिया १६७३

२ मुख्य-मध्य नगर व कस्ब के बाहर व्यापारिक मार्गों पर ये चौकिया स्थापित होती थी जब व्यापारी नगर या कस्ब म न आकर बाहर स ही सीध माग पर आग बढ जाते थे तो इन चौकियो पर कर जमा करते थे—बही अमल रे चिठीया र खतावती स० १८६६ ७०/ १८१२ १३ (पूव)

३ मण्डी र जमा खरच री बही वि० स० १७८३/१७२६ ई० न० ७८ वि० स० १७६६/ १७४२ ई० न० ७६ वि० स० १८०७/१७५० ई० न० ८०

मण्डी रीणी राजगढ नोहर व चूरू प० भारत के विख्यात व्यापारिक मार्ग दिल्ली भिवाना नागौर फलौदी या पाली-अहमदाबाद माग पर स्थित थी। मण्डी रीणी नोहर भटनेर अनूपगढ प्रसिद्ध दिल्ली मुलतान मार्ग पर स्थित थी। इसी प्रकार सिन्ध के साथ पूगल मण्डी व लूणकरणसर मण्डी का महत्त्व था बीकानर-लूणसरणसर महाजन भटनेर व भटिण्डा एक अन्य महत्त्वपूण माग था—जी एस एल देवडा—सोशियो इकोनोमिक्स हिस्ट्री ऑफ राजस्थान पृष्ठ ३६ ४५ जोधपुर १६८०

अधिकारी 'हुवलदार' होता था। उसका मुख्य सहायक 'दरोगा' था। दरोगा 'छोटी मण्डियों' व 'बाहरली चौकियों' पर, स्वतन्त्र रूप से भी नियुक्त किया जाता था।

'श्रीमण्डी' में खजाची 'गुमास्ता' भी नियुक्त होता था जो खजाने का कार्य सभालता था। अधीनस्थ कर्मचारियों में लेखणिये मुख्य थे, जो आय आदि का ब्यौरा रखते थे।[1]

कस्बों की मण्डियों को 'मुकाते' (ठेके) पर चढा देने की प्रथा पर्याप्त प्रचलित थी। ऐसी अवस्था में 'मुकाती' (ठेकेदार) करों की वसूली करता था। तब वह राज्य द्वारा पूर्वनियुक्त अधिकारियों व कर्मचारियों को वेतन देता था।[2] सभी अधिकारी व कर्मचारी 'महीनदार' होते थे।[3] इसके अलावा 'जगात' (चुगीकर) की वसूली के लिए, प्रत्येक गाव में एक कर्मचारी नियुक्त होता था, जो 'भोला-वणिया' कहलाता था।[4]

थाणा

राज्य की बाह्य सुरक्षा व आन्तरिक व्यवस्था के लिए सीमावर्ती क्षेत्रों व मुख्य नगरों, कस्बों व गाँवों और उपद्रवी स्थानों पर सैनिक, अर्द्धसैनिक व पुलिस स्तर के सुरक्षा केन्द्र स्थापित किये गये थे, जो 'थाणे' कहलाते थे। प्रत्येक चौरे में एक मुख्य थाणा अवश्य होता था। 'चौरे' की स्थिति व उसकी समस्याओं को देखकर, थाणों की सख्या भी बढाई जा सकती थी। इन 'थाणों' की सहायक चौकिया भी होती थी। १८वी शताब्दी में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया था कि प्रत्येक 'मण्डी' के साथ 'थाणा' अवश्य स्थापित हो।[5] इन 'थाणों' के अधिकारी सीधे केन्द्रीय प्रशासन के प्रति उत्तरदायी होते थे।[6]

इन थाणों का दोहरा दायित्व था। वे सामरिक व नागरिक दोनों दायित्वों का निर्वहन करते थे। बाह्य आक्रमणों, आन्तरिक विद्रोहों को रोकने व दमन

---

१ मण्डी रे जमा खरची बही (उपर्युक्त), सोहनलाल—अ. रा. बी.—पृष्ठ २४२-४३
२. कायदा की बही, वि० स० १८४०/१७८३ ई० न० ७, पृष्ठ ४४-४७, ५६-५८
३. मण्डी रे जमा खर्च री बही, वि० स० १७०१/१६४४ ई०, न० ७४—बीकानेर बहियात महीनदार का तात्पर्य मासिक वेतन पाने वालो से है।
४. कागदों की बही, वि० स० १८३८/१७८१, न० ५, पृष्ठ ५३, वि० स० १८६८/१८११ ई०, न० १८, पृष्ठ ५६
५. सावा बही नोहर, वि० स० १८२२/१७६५ ई० न० १, सावा बही रीणी, वि० स० १८५५/१७९८ ई०, न० ८, स० रा० प० बी०
६. कागदों की बही, स० १८२७, न० ३, पृष्ठ ४२; स० १८७४, न० २३, पृष्ठ ५१

करने के साथ-साथ साधारण अपराधो की रोकथाम भी करते थे। मण्डियों म वसूल की गयी 'जगात' को थाणो मे सुरक्षित रखा जाता था। थाणो के अधिकारी फरोही के अन्तर्गत 'गुनेहगारी' व 'चामचोरी' जैसे दण्ड कर भी वसूल करते थे।[1]

साधारणतया, प्रत्येक थाणे म एक मुख्य अधिकारी के रूप म 'हुवलदार' व उसके सहयोगी के रूप मे 'दरोगा', 'पोतदार' की नियुक्ति की जाती थी। इन अधिकारियो के अपने अधीनस्थ 'गुमास्ते' व चाकर ताबीनदार' होते थे। अधीनस्थ कर्मचारियो म कोतवाल', 'तोपची', 'सिपाही' मुख्य थे। मुख्य सैनिक केन्द्रो मे 'हुवलदार' के स्थान पर 'फौजदार' की नियुक्ति की जाती थी।[2] महाराजा सूरतसिंह के काल म ठाकुरो के विद्रोहो को देखकर, प्रत्येक थाणे मे कम से कम १५ बन्दूकचियो की टुकडी रखी गयी थी। इसके अलावा 'सीरबन्धियो' की नियुक्ति भी हुई थी।[3]

स्थानीय प्रशासनिक सेवायें

राज्य की प्रशासनिक सेवाएँ चीरो, परगनो और उनमे स्थित विभिन्न मण्डियो व थाणो के स्तर पर बटी हुई थी। ये सब प्रशासनिक सेवाएँ, अपने-अपने कार्य क्षेत्र मे, एक-दूसरे से स्वतन्त्र थी। इनके सम्बन्धित अधिकारी एक-दूसरे के अधिकार-निरीक्षण मे नही आते थे। वे स्वतन्त्र रूप से शासक द्वारा सौंपे गए दायित्वो को निभाते थे।[4]

अलग-अलग प्रशासनिक इकाइयो की सेवाओ म कोई श्रेणीबद्ध सगठन नही था। एक इकाई की प्रशासनिक सेवा के अन्तर्गत, विभिन्न स्थलो पर

---

१ सावा बही अनूपगढ, वि० स० १७५३/१६९६ ई० न० १, सावा बही नोहर, वि० स० १८२२/१७६५ ई० न १ सावा बही रीणी वि०स० १८५५/१६९८ ई०, न० ८, कागदो की वही, वि०सं० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ १३६, (राज्य के कानूनो व आदेशो का पालन करने पर आर्थिक दण्ड गुनेहगारी के नाम से लगाया जाता था। चामचोरी व्याभिचारिता को दण्डित करने वाला कर था। ये कर तथा साधारण अपराधो पर लगाये गये दण्ड फरोही के नाम से थाण म जमा होते थे।)

२ वही

३ सीरबंधी बही, वि० स० १८१०/१७५३ ई०, न० १९४, बीकानेर वहियात, कागदो की बही, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ १३६। सीरबंधी वे सैनिक-सरदार थे जो राजा द्वारा मासिक वेतन पर राज्य के बाहर से नियुक्त किये गये थे। ये एक तरह से व्यवसायिक सैनिक थे। राजा जब इन्हें सम्मानित करने के लिये पगडी बाधता या प्रदान करता था, तब ये सीरबंधी कहलाने लगते थे।

४ कागदो की बही—हुवाला कागद, वि० स० १८११/१७५४ ई०, न० १, पृष्ठ १४, वि० स० १८३८/१७८१ ई०, न० ४ पृष्ठ १८, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११ पृष्ठ १४

नियुक्त अधिकारी भी, एक दूसरे के हस्तक्षेप से मुक्त थे। कोई किसी के अधीनस्थ नही था। उनके पद का सम्मान व्यक्ति की योग्यता व नियुक्ति के स्थान व महत्त्व पर आधारित था। चूंकि इन पदो के सेवाकाल मे कोई निश्चितता व स्थायित्व नही था; अत. *उनमे श्रेणीबद्ध सगठन का विकास नही हुआ।*[1] सभी अधिकारी अपने पद पर बने रहने के लिए शासक व दीवान की कृपा पर निर्भर थे।[2]

वैसे प्रत्येक मुख्य अधिकारी के साथ उसके सहयोगी व अधीनस्थ कर्मचारी होते थे पर उनकी नियुक्ति भी केन्द्रीय सरकार द्वारा होती थी। वे अपने सेवाकाल मे निर्देश अवश्य अपने मुख्य अधिकारी से प्राप्त करते थे पर उत्तरदायी वे केन्द्रीय सरकार के प्रति ही होते थे। लेकिन एक सेवा मे पारस्परिक सहयोग से कार्य करना, राज्य सरकार की पहली शर्त होती थी।[3]

स्थानीय प्रशासनिक सेवाएँ, मूलरूप से केन्द्रीय सरकार की सेवाओ का ही एक विस्तृत भाग थी। केन्द्रीय सरकार ने राज्य का क्षेत्रीय विभाजन करके सेवाओ के वितरण के स्थान पर, सेवाओ को विभक्त करके विभिन्न इकाइयो मे बाट दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण स्थानीय प्रशासनिक व्यवस्था तत्कालीन आवश्यकताओ से प्रभावित थी। यह एक सरल योजना थी, जो किसी सुनियोजित विचारधारा का परिणाम नही मालूम होती। समय-समय पर इसकी कमियो को दूर करने का प्रयत्न किया गया; किन्तु ऐसा करते समय यह ध्यान अधिक रखा गया कि उन परिवर्तनों से केन्द्र शक्ति मे निरन्तर वृद्धि हो।[4]

स्थानीय प्रशासनिक सेवाओ को पूरा करने के लिए दो विभिन्न लेकिन समानान्तर प्रणालियाँ अपनायी, जिन्हे 'हुवाला सौंपा'[5] तथा 'मुकाता व्यवस्था'[6] की सज्ञा दी गयी।

---

१ कागदा की बही—हुवाला कागद, वि० स० १८११/१७५४ ई०, न० १, पृष्ठ १-४; वि०स० १८३८/१७८१ ई०, न० ४, पृष्ठ १-८; वि०स० १८५७-१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ १-४

२ महाराजा अनूपसिंघजी रो आनदराम नाजर रै नाम परवानो—वि० स० १७४६/१६८२ ई० (पूर्व)

३. कागदों की बही, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ६, पृष्ठ ४१, ५२, ८३, ८६

४. आर्याख्यान कल्पद्रुम, पृष्ठ २२६-२८, १९०/२

५ 'हुवाला' शब्द 'हुवाल' शब्द से बना हुआ है। हुवाला सौंपा का अर्थ यहा किसी को सुपुर्द या हस्तान्तरण कर देने से था।

६ मुकाता का तात्पर्य यहा उस अल्पकालीन अनुबन्ध से है; जिसमे एक दल अपने सम्पत्ति लाभो का प्रयोग किसी अन्य को निर्धारित राशि लेकर प्राप्त करता है। सम्भवत यह शब्द दिल्ली सल्तनत की इक्ता के मुख्य अधिकारी मुक्ता से निकला हुआ है और अपने अर्थ मे राज्य के क्षेत्र मे प्रयोग किया गया।

हुवाला—सौंपा प्रणाली

प्रशासनिक सेवा म यह सबसे अधिक प्रचलित प्रणाली थी। क्षेत्रीय स्तर पर राज्य की सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ इसी प्रणाली के अन्तर्गत की गयी थी। इसके अन्तर्गत नियुक्त व्यक्ति को सौंपी गई सवा को, सनद म उल्लिखित क्षेत्र की इकाई मे, निर्धारित समय म पूरा करना होता था।[1] 'हुवाला—सौंपा प्रणाली' अपन सम्बन्धित अधिकारियो के वेतन माप दण्ड को लेकर दो श्रेणियो म विभाजित की जा सकती है। प्रथम श्रेणी के अधिकारी, निश्चित समय मे निर्धारित कार्य को पूरा करन के बदले, वेतन के रूप में एक निश्चित कुल आय 'रोजगार रकम' पाते थ।[2] द्वितीय श्रेणी के अधिकारी, अपनी सवा के बदले प्रत्येक महीने मे, निर्धारित वेतन प्राप्त करते थे।[3]

प्रथम श्रेणी की 'हुवाला—सौंपा' प्रणाली चौरा व परगना मे प्रचलित थी। इस व्यवस्था का मुख्य अधिकारी 'हुवलदार' होता था, जो सौंपे गये क्षेत्र मे निर्धारित विभिन्न करो की वसूली करता था।[4] लेकिन सभी निर्धारित कर एक 'हुवलदार' ही वसूल नही करता था। प्रत्येक चौरे म विभिन्न करो की वसूली के लिये अलग-अलग 'हुवलदार' थे।[5] एक 'हुवलदार' को एक चौरे मे, दो करो

---

१. हुवालो रे लेखे री बही, वि० सं० १७०४/१६४७ ई०, न० १३०, कागदों की बही, वि० सं० १८२०/१७६३ ई०, नं० २, पृष्ठ ८-१०, हुवाला सोंपा प्रणाली को समझने के लिए प्रत्येक कागदों की बही का हुवाला कागद बहुत सहायक है।

अधिकारी की नियुक्ति की सूचना सम्बन्धित गाव के निवासियों के पास भी भज दी जाती थी।

हुवदारा नू हुवाला सोपीया तरी विगत—

मुसाहसर रे चौरे रे गोवा री भोगता चोधरीया रैत समसुता जोग्य तथा घुबो देस प्रठ मुदसते ने दीयो छे मु चुकाय देजा काम दोनदारी मु करसी छूट दरबार ने कागद मु भर दी जसा नावो दातर मदाय देगी म जोधमल कोठारी कोठारी मोहण नु सोपायो छै मु इतरा भर दीजसी.

१२१) रोजगार—खरच सदागद भरदीजे छे मु भर दीजसी,

—कागदों की बही, भादुवा सुद १०, वि० स० १८२०/१६ सितम्बर, १७६३ ई०, न० २

२. कागदो की बही, वि० सं० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृष्ठ २-६

३ मण्डा रै जमा खरच री बही, वि० स० १७८३/१७२६ ई०, नं० ७८, कागदा की बही सं० १८२७, न० ३, कार्तिक बदी ६, १४ अक्टूबर, १७७० ई०

४. चौरा जमाखरच लेखे री बही वि० स० १७४८/१६९१ ई०, न० २७, बही हुजूर, वि० स० १८०४/१७४७ ई०, हुजूर बस्ता न० १, बीकानेर, रा० रा० अ० बी०.

५. कागदा की बही, वि० सं० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० १-४, भाद्र सुदि १२/१ सितम्बर १७७० ई०

की वसूली के अधिकार भी दिये जाते थे व कभी-कभी एक कर को वसूल करने के लिए दो चौरे भी प्रदान किये जाते थे।[1] दो हुवलदार साथ मिलकर भी कार्य करते थे।[2] हुवलदारो को यह कार्य एक निश्चित समय मे करना होता था व उनके आदेश-पत्र मे 'रोजगार रकम' भी लिख दी जाती थी।[3] हुवलदार का प्रमुख सहायक 'दरोगा' था। वह भी निश्चित 'रोजगार रकम' पर हुवलदार के साथ कार्य करता था। इसके अलावा हुवलदार के अपने 'तावीनदार' व 'गुमास्ते' होते थे।[4]

द्वितीय श्रेणी की 'हुवाला—सौंपा प्रणाली' मण्डी व थाणों मे प्रचलित थी। मण्डियो की 'जगात' को वसूल करने के लिए हुवालदारो की नियुक्ति की जाती थी व थाणो के सामान्य प्रशासन-कार्य को पूरा करने का भार भी हुवलदारों पर छोडा जाता था।[5] राज्य की टकसाल को चालू रखने के लिए भी यही प्रणाली थी।[6] इस व्यवस्था के अन्तर्गत हुवलदार व उसका सहायक दरोगा व अधीनस्थ कर्मचारी सभी महीनदार होते थे। इनका सेवाकाल पूर्व निर्धारित नही होता था।[7] राजस्व खाते की आय के सभी मदो को पूरा करने के लिए हुवाला—सौंपा प्रशासन मे लोकप्रिय थी। यहां तक कि घास कटाई का दायित्व व निरोक्षण भी इसी व्यवस्था के अन्तर्गत था।[8]

इस प्रणाली के अन्तर्गत हुवलदार केवल निर्धारित करों को वसूल करता था। कर निर्धारण मे उसका कोई हाथ नहीं होता था। केन्द्र मे स्थित 'दफ्तर का हुवलदार' चौरो मे नियुक्त हुवलदारो को निर्धारित करो की रकम की सूची भेजता था।[9] राज्य के जिन गावो मे 'जमाबदी' पहले से की हुई होती थी, उसी के आधार पर वे वसूली करते थे।[10] जिन क्षेत्रों मे 'जमाबदी' नही थी, वहा हुवलदार 'गुवाडियों' (परिवारो) की गणना करके रकम वसूल करता था। ऐसी

---

१ कागदो की बही, वि० स० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृ० १-७
२ वही
३. कागदों की वही वि० स० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृष्ठ १-७,
४. हुजदा रो रे लेखे रो बही, वि० स० १७०४/१६४७ ई०, न० १३०
५ मण्डी रे जमा खरच की वही, वि० स० १७०१/१६४४ ई० न० ७१, सावा बही अनूपगढ़ वि० स० १७१३/१६५६-५७ ई०, न० २०/१—रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर
६. कागदा री वही, वैशाख सुदि ५, वि० स० १८२०/१८ अप्रैल, १७६३ ई०, न० २
७ सावा बही अनूपगढ़, वि०स० १७५३-५४/१६९६-९७ ई०, न० १, बही सावा मण्डी सदर, वि० सं० १७८२/१७२५ ई० न० १, रामपुरिया रिकार्ड, बीकानेर
८ वही
९ कागदो री बही, वि० सं० १८५१/१७९४ ई०, न० ६, पृष्ठ ४१, वि० स० १८६६/१८०९ ई०, न० १५, पृष्ठ ३७९
१०. कागदो की बही, वि० १८३१/१७७४ ई०, नम्बर ४, पृष्ठ ३९-४४

अवस्था मे 'दफतन के हुवलदार' द्वारा प्रत्येक गुवाडी पर कर की दर पहले से से निर्धारित कर दी जाती थी।[1] बहुत कम ऐसे स्थान थे, जहा हुवलदार कर निर्धारण करके वसूली करता था। आपात्कालीन स्थिति मे अवश्य ही उसके इस तरह के दायित्व बढ जाते थे।[2]

'हुवाला—सौपा' की सबसे बडी कमी यह थी कि यह कर दाताओ की समृद्धि के प्रति उदासीन थी। इसके अन्तर्गत पूरी वसूली पर जोर दिया जाता था। हुवलदार को इस बात की जानकारी ही नही रहती थी कि कर दाता की स्थिति कैसी है ? और नही उसके कर्तव्य म यह माना जाता था। प्राकृतिक विपदाओ के इस क्षेत्र मे कई बार ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती थी कि कर दाता किसी भी कर को देने की स्थिति मे नही होता था और हुवलदार वहाँ पहुच जाता था। हुवलदार को छूट देने का अधिकार भी नही था। कर दाता को छूट तभी प्राप्त होती थी, जब वह स्वय या उसके कहने पर गाव का 'चौधरी' दरबार मे जाकर प्रार्थना करता था[3] परन्तु यह सब होने से पूर्व हुवलदार अपना कर्तव्य निभा चुका होता था या तनाव की स्थिति मे आ जाता था[4] इससे करदाता व राज्य दोनो की आर्थिक क्षमता पर बुरा प्रभाव पडता था। हुवलदार अपनी नौकरी के भविष्य के लिए अधिक सचेत रहने के कारण भी कर वसूली पर अधिक बल देता था क्योकि ऐसा करने पर ही उसे अगले वर्ष नियुक्ति की आशा हो सकती थी।[5]

इस प्रणाली की अन्य कमी यह थी, कि यह सुनियोजित व सुसगठित नही थी। किसी भी आपात्कालीन स्थिति मे यह टूट सकती थी। १८वी शताब्दी म, जब राज्य बाहरी आक्रमणो व आन्तरिक विद्रोहो का शिकार बन गया तो, यह व्यवस्था सुचारु रूप से नही चल पायी। अव्यवस्था से उत्पन्न स्थिति मे गुवाडिया इधर-उधर भागने लगी। परिणामस्वरूप गाव की जमाबन्दी भग हो

१ कागदो की वही, वि० स० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृष्ठ ६१-६७, माघ बदी १०, वि० स० १८६१, २६ जनवरी, १८०५ ई०
२ भैया सग्रह—भैया नथमल का पत्र, पोष बदी १०, वि०स० १८६६, १ जनवरी,१८०६ ई०, चैत सुदी १३, वि० स० १८६६, २६ मार्च, १८०६ ई०, चैत बदी २, वि० स० १८६६ १८ मार्च, १८१३ ई०
३ कागदो की वही, वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ २७
४ कागदो की बही न० २१, २२ व २३ म इस सम्बन्ध मे बहुत से लिखित व सनद कागद हैं
५ कागदो की बही, वि० स० १८६६/१८०६ ई०, न० १८, पृष्ठ १६, वि० स० १८७२/ १८१५ ई०, न २१, पृष्ठ ४४-४८, भैया सग्रह—भैया नथमल के पत्र—पोष बदी १०, वि०स० १८६६, १ जनवरी, १८१० ई०, भादुवा बदी ३, वि० स० १८७२, २३ अगस्त, १८१५ ई० टाड—पृष्ठ ११४३, ४५, ४७

गयी। हुवलदारो को कर-निर्धारण का दायित्व प्राप्त हो गया तथा उन्हे वसूली मे मनमानी करने का अवसर भी मिल गया। इससे बिगडी हुई अवस्था मे किसाना के कष्ट और बढ गये।[1]

अव्यवस्था व अराजकता की स्थिति से निबटने के लिए राज्य की सैनिक माग बढ गई थी, जिन्हे पूरा करने के लिए नये कर लगाये गये व पुराने करो की दरें बढा दी गयी।[2] हुवलदारो ने इन करो को बडी सख्ती से वसूल किया तो करो के दवाव के कारण, गुवाडियो मे पलायन की प्रवृत्ति बढ गयी।[3] राज्य के पट्टायत उन पर बढाये गये करा को किसी भी दशा म देने के लिए तैयार न थे।[4] गाव की गुवाडिया भी झूठी गणना करवाने लगी।[5] कुछ गुवाडियो ने तो करो को देने से ही मना कर दिया।[6] ऐसी अवस्था मे, हुवलदार एक गाव से दूसरे गाँव मे, अपने खेमे गाढते हुए निराश व हताश घूमने लगे।[7] इन परिस्थितियो मे हुवलदारो ने अपना 'हुवाला' गाव के प्रभावशाली व समृद्ध व्यक्तियो को मुकाते पर सौप दिया।[8] राज्य ने भी अपनी वित्तीय आवश्यकताओ

---

१ कागदा की बही, वि० स० १८६६/१८०६ ई०, न० १५, पृष्ठ १, ७२, ६१, वि० सं०
१८७२/१८१५ ई०, न० २१, पृष्ठ १०६, ११०, ११२; टॉड—पृष्ठ ११५६-६०,
फेगन सेटलमेण्ट रिपोर्ट आफ बीकानेर, पृष्ठ १७, १८, पाउलेट पृष्ठ १०२
२ राज्य मे प्रत्येक हल पर पहले दो रुपये वसूल किए जाते थे, जो बढाकर पाँच रुपये कर
दिये गये। रुखवाली माठ (रखाकर) की दर दो रुपया से बढ़ाकर दस रुपये कर दी
गयी—कागदों की बही, वि० स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृष्ठ २६, ३५, ५६,
वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ ८१, ८६
३ भैया सग्रह, पत्र चैत सुदी १३, वि० स० १८६६, २६ मार्च, १८०६ ई०, कागदो की
बही, वि० स० १८६६/१८०६ ई०, न० १८, पृष्ठ १६, वि० स० १८७१/१८१४ ई०,
न० २०, पृष्ठ २०, वि स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृष्ठ १५, कागदो की बही
न० १८, २० व २२ मे इसस सम्बन्धित अनेक पत्र है
४. कागदो की बही, वि० स० १८७१/१८१४ ई०, न० २०, पृष्ठ २१२-१३, वि० स० १८७२/
१८१५ ई०, न० २१, पृष्ठ ६६-७१, १०३-१०८, १७२
५. भैय्या सग्रह—पत्र—फाल्गुन बदी ७, १८६१, २० फरवरी, १८०५ ई०, कागदा की बही
स० १८७२/१८१५ ई०, न० २१, पृष्ठ ६६-७१
६ कागदा की बही, वि० स० १८६७/१८१० ई०, न० १७, पृष्ठ ६, भैय्या पत्र—फाल्गुन
बदी ७, १८७३/८ फरवरी, १८१७ ई०
७. भैय्या सग्रह-पत्र—माघ बदी १०, वि० स० १८६१, २५ जनवरी, १८०५ ई०; चैत्र सुदी
१३; वि०स० १८६६, २६ मार्च, १८०६, पोष बदी ११, वि०स० १८७३, १५ दिसम्बर,
१८१६ ई०
८ हवूब बही, स० १८५१/१७६४ ई०, बस्ता न० १ (बीकानेर), फगन—सेटलमेण्ट
रिपोर्ट, बीकानेर, १८६४ ई०, पृ० १६

की पूर्ति हेतु हुवाला के स्थान पर मुकाता प्रणाली को प्रोत्साहित किया।[1] हुवाला प्रणाली को मुकाता के साथ-साथ राज्य की खतो पर उधार व सीरबधियो' के वेतन की व्यवस्था से भी धक्का लगा।[2] उन्हे गावो के विभिन्न करो की आय सुपुर्द की जाने लगी। सैन्य अधिकारियो द्वारा 'हाकम' का कार्य करने पर दोहरे उत्तरदायित्व के कारण, सैनिक क्षमता व सामान्य प्रशासन की अवस्था दोषयुक्त हो गयी।

अधिकतर हुवलदार मुत्सद्दी-वर्ग म से चुने जाते थे।[3] हुवाला व्यवस्था के चौपट हो जाने स इनकी स्थिति को बहुत हानि पहुंची। पुराने मुत्सद्दी जीविका की तलाश मे निराश होकर राज्य को छोडकर भागने लगे।[4] वे ही मुत्सद्दी टिके रहे जिनकी आर्थिक स्थिति अन्य व्यवसायो के कारण उत्तम थी व अपनी समृद्धि के बल पर राज्य के धन की माग को पूरा कर सकते थे।[5] इस प्रकार 'हुवाला सोपा' प्रणाली अपनी अन्तर्निहित कमजोरियो, हुवलदारो की लालची प्रवृत्तियो और राज्य की सैनिक व आर्थिक बढती हुई मांगो के दबाव के सम्मुख प्रभावहीन होती गई।

मुकाता प्रणाली

राज्य म हुवाला प्रणाली की भाति राजस्व वसूली के लिए मुकाता-प्रणाली भी प्रचलित थी। प्रशासनिक क्षेत्र म यह प्रणाली १८वी शताब्दी म बहुत

---

१ इस काल मे अर्थात् १८वी शताब्दी के अन्तिम तीन दशको म हम मुकाता प्रणाली के प्रचलन की अधिक सामग्री मिलती है—दखिये कागदा की बही न० ३, ४, ६, ७ १०, १२ के हुवाला व मुकाता कागद, जो वहियो के प्रारम्भ मे ही है।

२ खतो पर उधार का तात्पय यह था कि राज्य कर्ज लेकर नकद रकम देने के स्थान पर लेनदारो को गावों का हासल अथवा कोई आय का मद वसूल करक पूर्ति करने को कह देता था। सीरबधी अर्थात् भाड के सैनिको को भी वेतन नकद न देने की स्थिति पर आय के विभिन्न मद वसूली द्वारा प्राप्त करने हेतु सुपुर्द कर देता था—कागदो की बही स० १८५६/१८०२ इ०, कागद आश्विन वदी १३, २५ सितम्बर, स० १८६६/१८०९ ई०, पृष्ठ ३०२ ३०८, भैय्या सग्रह—फाल्गुन सुदी ५, स० १८७३, २१ फरवरी १८१७ इ०, आश्विन बदी ८ स० १८८४, १३ सितम्बर, १८२७ इ०

३ उदाहरणार्थं १७६३ इ० मे जो हुवाला सौंपा गया, उसमे सभी वैश्य जाति के वशानुगत मुत्सद्दी थे—कागदो की बही स० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृष्ठ १६

४ भैय्या सग्रह—भैय्या जठमल का पत्र, पोष बदी १०, स० १८६६, १ जनवरी, १८१० ई०

५ जी एस एल देवडा—ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान—पृष्ठ ३७-४१, कुछ मुत्सद्दियो ने आय के लिए वसूली के लिए ठके (मुकाता) लेना प्रारम्भ कर दिया—कागदों की बही सं० १८३१/१७७४ ई०, न० ४ पृष्ठ ४, स० १८६५/१८०८ ई०, न० १९, पृष्ठ ६६

लोकप्रिय हुई। यह आधुनिक युग की ठेका-प्रणाली की भांति थी।[1] सबसे पहले इसे मण्डियों के प्रबन्ध में लागू किया गया।[2] बाद में, शनैः-शनैः यह भू-राजस्व के क्षेत्र में भी लागू कर दी गई।[3]

मुकाता-प्रणाली के द्वारा राज्य एक निश्चित अवधि के अनुबन्ध के अन्तर्गत अपनी आय के साधनों को किसी व्यक्ति अथवा एजेंसी को अग्रिम अनुमानित राशि लेकर उपयोग के लिए प्रदान कर देता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति अथवा एजेंसी किसी अन्य की तुलना में ऊँची रकम की बोली बोलकर राज्य की आय के साधनों की वसूली का एक निर्धारित अवधि के लिए, अधिकार प्राप्त कर लेता था। ऐसे व्यक्ति को 'मुकाती' तथा सम्पूर्ण पद्धति को 'मुकाता' प्रणाली कहते थे। 'मुकाती' व राज्य के बीच अधिकारों के हस्तांतरण का समझौता सामान्यतः एक से तीन वर्ष के काल के लिए होता था।[4] समझौते की शर्तें राज्य द्वारा 'मुकाती' को दिये जाने वाले पट्टे या सनद में लिखी होती थीं। इस प्रपत्र में मुकाती का कार्य-काल, राज्य को चुकायी जाने वाली निर्धारित रकम व उसकी किश्तों की दरों का स्पष्ट उल्लेख होता था। 'मुकाती' को, 'मुकाता' लेने पर, जिन दायित्वों को निभाना पड़ता था, उनका विवरण भी उसमें अंकित किया जाता था। मुकातियों के लिए प्रमुख दायित्व थे—राज्य के नियुक्त अधिकारियों को वेतन देना, निर्धारित करों को वसूल करना तथा 'हाकमों की लाग' व 'लेखणीयों का लाजमा' आदि 'कर प्रदान करना'।[5] पट्टे की शर्तों के अनुसार राज्य व मुकाती

---

१. मुकाता प्रणाली भू-राजस्व-व्यवस्था में मुगलों की इजारा-व्यवस्था की भांति थी, पूर्वी राजपूताना क्षेत्र में भी इजारा-व्यवस्था प्रचलित थी, लेकिन पश्चिमी राजपूताना व हाड़ौती में इसका नाम मुकाता प्रणाली था
—एन० ए० सिद्दीकी—लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन अण्डर दी मुगल्स, पृ० ६२-६८, डॉ० एस० पी० गुप्ता—इजारा सिस्टम इन ईस्टर्न राजपूताना—मेडिवल इण्डिया मिसलेनी भाग-२, अलीगढ़ · डा० दिलबागसिंह—लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ ईस्टर्न राजपूताना (अप्र० थिसिस), पृ० १४०-४२ ; जा० एस० एस० देवड़ा—बीकानेर राज्य की मुकाता प्रणाली—राज० हिस्ट्री काग्रेस, ब्यावर, १९७३

२. कागदां री बही, वि० स० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृ० ४-६

३ वही, वि० स० १८५६/१८०२ ई०, न० १२, पृ० २-८

४. वही

५ कागदो की बहियों में ही अधिकतर मुकाता प्रणाली से सम्बन्धित पत्र प्राप्त हुए हैं। प्रत्येक बही हवाला व मुकाता कागदो से ही प्रारम्भ होती है
राज्य द्वारा मुकाती को जो पट्टा प्रदान किया जाता था उसमें समझौते का विवरण इस प्रकार होता था—कागदा की बही, मार्गशीर्ष वदि १५; वि० स० १८२७, १७ नवम्बर, १७७०, न० ३; हाकमों की लाग का तात्पर्य यहाँ चौरा, मण्डी व थाणा के हवलदारों को उनके दायित्वों के बदले दी जाने वाली राशि से है। लेखणीओ का लाजमा का तात्पर्य राज्य के लिपिका के इस कार्य में हुए परिश्रम के बदले राशि से है

के बीच निर्धारित समय के पहले ही अगर कोई अन्य व्यक्ति ज्यादा रकम देकर मुकाता लेने को तैयार हो जाता था, तो पुराने मुकाती का मुकाता रद्द हो जाता था। नया मुकाती, पुराने मुकाती को उसकी सेवा के बदले एक निर्धारित 'रकम रोजगार' के रूप म चुकाता था तथा साथ मे उसके द्वारा उठाये गये प्रशासनिक खर्चों को चुकाने के लिए लागत खर्च भी देता था। नये मुकाती के पट्टे म भी इसी प्रकार की शर्तें जुड़ी होती थी।[1] मुकाती इस प्रकार, अपने कार्यकाल के प्रति आश्वस्त नही हो पाता था। परिणामस्वरूप, उसकी मुकाता क्षेत्र म आय के साधनो के विकास म रुचि उत्पन्न नही हो पाती थी।

साधारणतया एक ही व्यक्ति को मुकाती के अधिकार दिए गय थे। लेकिन दो व्यक्ति भी मिलकर मुकाता-अधिकार प्राप्त कर सकते थे।[2] अगर मुकाती, पट्टायत या हजूरी होता था तो उसके साथ निर्धारित समय का समझौता बीच म रद्द नही किया जाता था।[3]

मुकाती को राज्य की तरफ म स्पष्ट निर्देश मिलते थे कि वह राज्य द्वारा निर्धारित दरो पर करो की वसूली करेगा। उसम वृद्धि करने का कोई प्रयत्न नही करेगा।[4] गाँवो म मुकाती के अधिकार केवल कर वसूली तक ही सीमित थे,[5] क्योंकि प्रशासन यह नही चाहता था कि मुकाती, पट्टायतो जैसे स्वार्थ प्रदत्त क्षेत्र म पनप ले। मुकाती स यह आशा की जाती थी कि वह प्रदत्त क्षेत्र की आबादी बढायेगा एव विपत्ति काल म प्रशासन द्वारा 'रैत'[6] को दी गयी छूट का पालन करेगा।[7]

मुकाता प्रणाली द्वारा अपनी आय के साधनो को ठेके पर चढाकर राज्य एक पूर्व-नियोजित व अनुमानित आय को आशा करता था। मुकाती की अग्रिम राशि उसे इस दिशा म आश्वस्त किये रखती थी। राज्य म उत्पादन के क्षेत्र इतने अधिक नही थे कि जिनके बल पर व्यावसायिक जगत म प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न होती और सरकार उसका लाभ उठाती। अत सरकार ने मुकाता-प्रणाली द्वारा आय

---

१ कागदो की बही, पौष सुदि ८, स० १८२७, २५ दिसम्बर, १७७० ई०, न० ३
२ वही
३ हासल बही श्री राजगढ पूनीयो रे परगनें री, वि० स० १७४६/१६९२ ई०, न० ६, कागदो की बही, वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ ३१
४ वही
५ कागदो की बही वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३ पृष्ठ ३१, वि० स० १८५४/१७९७ ई०, न० १० पृष्ठ ७१, ७४, ७६
६ रैय्यत
७ कागदो की बही वि० स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृष्ठ २५, वि० स० १८४०/१७८३ ई०, न० ७ पृष्ठ ५१, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ ८४

के स्रोतो म व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता को बढाकर राज्य म व्यापारिक गतिविधियो मे वृद्धि की चेष्टा की थी। इस कारण सरकार न सर्वप्रथम उन्ही क्षत्रा म इस लागू किया, जहा आय के साधन निश्चित नही थ तथा आय म घट-बढ़ होती रहती थी। मण्डिया की 'जगात (सीमा शुल्क व चुगी कर) की आय सबसे अस्थिर थी। अत राज्य न श्री मण्डी को छोडकर अन्य सभी मण्डियो म इस प्रचलित कर दिया।[1] व्यापारियो न भी इस क्षत्र म रुचि दिखाई और धीर धीरे यह प्रथा इतनी लोकप्रिय हुई कि सभी छोटी मोटी मण्डिया इस प्रणाली क अन्तर्गत आ गयी। कालान्तर म स्थिति यह हो गई कि मण्डियो के मुकाती शीघ्र बदलने लग। ऐसे भी अवसर आय कि एक मुकाती अपन मुकात अधिकारो को एक महीने स अधिक नही रख पाया और उस हटना पडा।[2] प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप मुकात की राशि बढ़न लगी। सन् १७७० ई० म रीणी चौकी की जगात का मुकाता ८,००० रु० वार्षिक था। सन् १७८२ ई० तक बढ़कर वह १२,६३३ रु० तक पहुच गया। अन्य मण्डियो की भी यही दशा थी।[3] इस वृद्धि के पीछे बीकानर म व्यापारिक मार्गों की सुविधा थी, क्योंकि राज्य क पडोसी क्षेत्रो म मराठा आक्रमणा का आतक छाया हुआ था।

१८वी शताब्दी म यह प्रथा मण्डियो के अलावा अन्य राजस्व क्षेत्रो म प्रचलित होन लगी। हुवाला व्यवस्था म उत्पन्न अव्यवस्था न मुकाता प्रणाली को भू राजस्व प्रशासन म लोकप्रिय बना दिया। चीरो के अनक करो की वसूली-मुकाते पर जान लगी।[4] राज्य की समस्त खानें इसी प्रथा के अन्तगत उठाई जान लगी।[5] यहा तक कि लखण कार्य भी मुकात पर होने लगा।[6]

वास्तव म, १८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म विकट राजनीतिक स्थिति स उत्पन्न प्रशासनिक अव्यवस्ता क वातावरण म आर्थिक सुरक्षा तथा बढती हुई सैनिक मागो की पूर्ति हेतु अग्रिम धनराशि उपलब्ध होने के लालच न ही मुकाता-प्रणाली को भू-राजस्व वसूली के क्षेत्र म भी अधिक प्रचलित करा दिया। प्रशासन

---

१ श्री मण्डी म राज्य की तरफ स हुवलदार नियुक्त होता था। मण्डी रे साहूकारा री बही, वि० स० १७२६/१६६६ ई० न० २३२

२ कागदो की बही मार्गशीर्ष सुदि १२ वि० स० १८२७ २६ नवम्बर १७७०, कार्तिक बदि १० वि० स १८३६ ३१ अक्टूबर १७८२ पौष बदि १०, वि० स० १८३६, २६ दिसम्बर १७८२ ई०

३ वही

४ हासल बही राजगढ रै पुनीया परगने र लेख री वि० स १७४६/१६६२ ई०, न० ६, —कागदों की बही कार्तिक बदि १२ वि०स० १८५४, १७ अक्टूबर १७६७ ई०, न० १०

५ कागदा की बही—ज्येष्ठ सुदि ३ १८४०, ३ जून १७८३ ई०

६ बही—स० १८६३/१८०६ ई०, न १४, पृ० ४-६

'मुकाती' से प्राप्त राशि के बल पर एक बार खर्चों की व्यवस्था जुटाकर निश्चित हो जाता था और सभवत 'लहणायतों' या 'बोहरो' से कुछ समय के लिये ऋण मागने व उसके ब्याज के दबाव से बच जाता था।[1] भू-राजस्व वसूली प्रयोजन हेतु 'मुकाता' प्रणाली १७वी शताब्दी मे भी अपने अस्तित्व मे थी, जब शासक अपने सैनिक अधिकारियो को मुगलो से प्राप्त जागीरो मे उनकी सेवा के बदले मुकाते के रूप मे गाव प्रदान करता था।[2] लेकिन यह मुकाता सैनिक-सेवा व दायित्व के बदले गाव की आय से प्रदान किया जाता था तथा मुकाती मुगल जागीरदारी व्यवस्था (वृहत्तर रूप म) की भाति अपने गाव या क्षेत्र का प्रशासन भी सभालता था।[3] १८वी शताब्दी मे मुकाती सैनिक अधिकारियो के स्थान पर अन्य अधिक होने लगे। ये नये मुकाती दायित्व व सेवा के स्थान पर ठेका प्रणाली की भाति ऊची बोली बोलकर कर वसूली से मुकाता प्राप्त करने लगे। अब भी सैनिक अधिकारी मुकाती के रूप मे रहे परन्तु उनकी सख्या कम थी और वे पुरानी प्रथा के अनुसार ही अपनी सैनिक या प्रशासनिक सेवा के बल पर ही मुकाता प्राप्त करते रहे।[4] भू-राजस्व वसूली मे मुकाता गाव या क्षेत्र मे पूर्व 'जमाबधी' के आधार पर मुकाती के लाभ को जोडकर दिया जाता था।[5] किसी एक कर का मुकाता देने पर 'दफ्तर का हुवलदार' कर की दर पहले ही निर्धारित कर देता था।[6] यह मुकाता भी एक से तीन वर्ष के बीच अस्तित्व मे रहता था।[7]

मुकाता प्रणाली राजस्व-प्रशासन मे व्यवस्था लाने के लिये एक सही समाधान नही थी। यह हुवाला प्रणाली की असगतियो को दूर करने के स्थान पर उसे वैध रूप देने वाली व्यवस्था थी। हुवलदार राज-प्रतिनिधि होने के नियत्रण

१ राज्य मे आय के साधनो की कमी व खर्चों म वृद्धि के फलस्वरूप बजट म जो असतुलन उत्पन्न हुआ, उसकी पूर्ति को सदैव ऋण की सहायता से ही दूर किया गया। मुकाती की अग्रिम राशि ने उन्हे इस दिशा मे कुछ राहत दी। रावले खरच की बही स० १८०५/१७४८ ई०, न० २१३—बीकानेर बहियात, रा० रा० अ० बी०, कागदो की बही न० १, सनदी कागद कार्तिक बदि ५, १८५७, ८ अक्टूबर, १८०० ई०, जमा खरच की बही स० १८६६/१८०९ ई०, भैय्या सग्रह, बीकानेर

२ परगना रै जमा जोड री बही—न० ६६, स० १७२६-५०/१६६९/१६९३ ई०, बीकानेरी बहियात—इसम परगनो के गावा का विवरण देखिए

३. वही

४ कागदो की बही—स १८३१/१७७४ ई०, न ४, पृ० २५

५ कागदो की बही—न० ७, कार्तिक बदि ७, १८४०, १७ अक्टूबर, १७८३ ई०

६ भैय्या सग्रह—पत्र आश्विन सुदि १०, १८७२ ई०, १२ अक्टूबर १८१५ ई०

७ कागदो की बही, स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृ० २५, न० ७, कार्तिक बदि ७, १८४०, १७ अक्टूबर, १७८३ ई०

से मुक्त होकर मुकाती के रूप म अपन काय क्षेत्र म स्वेच्छापूर्वक आचरण के द्वारा प्रशासन व प्रजा के हितो को सुविधा से चोट पहुचा सकता था। जिस पूर्व-नियोजित आय की आशा स यह प्रणाली प्रशासन म प्रचलित हुई थी, वह अव्यवस्था के वातावरण म 'राज' व 'रैत' के स्थान पर मुकाती को ही अधिक लाभ दे सकती थी। इस प्रणाली को सुचारु रूप स चलाने के लिए सदैव निरीक्षण की आवश्यकता थी, जो जिन परिस्थितियो के अन्तर्गत यह प्रणाली भू राजस्व क्षेत्र म लागू की गई थी, क अन्तर्गत सम्भव नही थी। कुछ समय तक राज्य व मुकाती दोनो को निर्धारित आय प्राप्त होनी रही, पर तु मुकाती क्षेत्र म, राज्य म हो रही राजनैतिक अव्यवस्था तथा मुकाती के लालच[1] के परिणाम-स्वरूप गुवाडियो के पलायन स निर्धारित आय गिरन लगी।[2] मुकाती प्रशासन पर समझौते की रकम कम करन पर दबाव डालन लगे।[3] इस प्रकार राज्य को इसस वाछित लाभ न मिल सके, बल्कि मुकाती प्रणाली स मुगलकाल म गठित राजस्व व्यवस्था को धक्का लगा।

मुकाती द्वारा दरो म वृद्धि करन पर चौधरी शिकायत कर सकता था, परन्तु ऐसे अवसरो पर जब मुकाती और चौधरी के बीच मिलीभगत हो जाती थी तो स्थिति दुष्परिणामो से वचित नही हो पाती थी।[4] फिर मुकाती अधिक-तर स्वय मुत्सद्दी वग के अथवा उनक सम्ब धी होते थे, जिनके कारण प्रशासनिक क्षेत्र म, उनका पूरा प्रभाव रहता था।[5] मुकाती पर केवल एक ही नियन्त्रण होता था कि वह गुवाडियो क भाग जान स अपनी मुकाते पर लगी रकम वसूल नही कर पाता था। राज्य द्वारा उम निर्देश प्राप्त होत थ कि वह अपन क्षेत्र म आबादी बढान क प्रयत्न करे।[6] गुवाडियो की सख्या म वृद्धि स, उसकी आय म भी वृद्धि की पूरी सभावना रहती थी। परन्तु १८वी शताब्दी क अन्त म विद्रोहो व लूटमार के कारण गुवाडियो क पलायन स, मुकाती की यह आशा भी

---

१ जी० एम० एन० देवड़ा—बीकानेर राज्य की मुकाती प्रणाली, राज० हिस्ट्री कांग्रेस ब्यावर, १९७३

२ भया सग्रह-पत्र चैत्र सुदि १३ वि० स० १८६६, २६ मार्च, १८०९ ई०, कागदा री बही, वि० स० १८७२/१८१५ ई० न० २१, पृ० १२२ २४

३ भया सग्रह—पत्र, आसोज वदि १३, वि० स० १८७४, ८ अक्टूबर, १८१७ ई०, फगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट बीकानेर पृ० १४

४ फगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट पृ० १४

५ कागदा की बहियो म हवाला व मुकाती कागद म जो नाम आये हैं, उनको पट्टा बहियो म मुत्सद्दियो के नामो के साथ तुलना करने पर यह बात विदित होती है। उदाहरणार्थ परवाना बही न० २ व कागदा री बही न० १०

६ कागदा री बही, वि० स० १८२०/१७६३ ई० न० २, पृ० ५-९

सभव नही थी। केवल करा म वढी हुई दर स लाभ ही उसकी मृगतृष्णा थी।

१८वी शताब्दी के अन्त म मुकाता व्यवस्था को राजस्व प्रशासन म वित्तीय समस्याओ के हल क लिए लागू की गई कामचलाऊ व्यवस्थाओ स भी धक्का पहुँचा, जब 'सीरबन्धियो' का वतन तथा कज क खतो की रकम खजान स न चुकाकर सीधे करो की आय की वसूली क साथ जोड दी गयी तथा सीरबन्धी व कजदार अपना वतन स्वय वसूली करक प्राप्त करने लग थ।[1] वैसे भी मुकाता प्रणाली ने बीकानेर राज्य की भू राजस्व व्यवस्था पर वही दुष्परिणाम छोडा, जैसी कि शिकायत मुगल इतिहासकार खाफीखा ने सम्राट फर्रुखशियर के काल म इजारा व्यवस्था को लकर मुगल प्रशासन पर पडे परिणामो को लेकर की है।[2]

नगर प्रशासन

१७वी व १८वी शताब्दी म राज्य म राजधानी बीकानेर के अलावा नोहर महाजन चूरू, रीणी, हनुमानगढ आदि मुख्य नगर या कस्बे थ। १९वी सदी क प्रारम्भ मे रतनगढ राजलदेशर राजगढ सुजानगढ आदि का विकास हुआ। प्रत्येक नगर या कस्बा मोहल्लो म विभाजित था। हर मोहल्ले म प्राय एक ही जाति या पश के लोग रहते थ। राजा रायसिंह व प्रसिद्ध दीवान कमचन्द को इस बात का श्रय दिया जाता है कि उसने राजधानी को अनक मोहल्लो म विभक्त किया जहाँ अलग अलग जाति व व्यवसाय के लोग रह सकें।[3]

नगर का मुख्य प्रशासक कोतवाल होता था। प्रत्यक मोहल्ल म वह अपने आदमियो द्वारा नियन्त्रण रखता था। कोतवाल मुख्य रूप स नगर पुलिस का अध्यक्ष होता था पर साथ ही साथ वह नगरपालिका क प्रशासक का काय भी करता था। वह छोट फौजदारी मुकदम भी निपटाता था। शहर कोतवाली म जो 'नगर चोतडे' के नाम से जानी जाती थी उसका मुख्य कार्यालय था। उसके मुख्य कार्यों म नगर म शाति व्यवस्था बनाय रखना गश्ती टुकडियो पर नियत्रण रखना, बाजार म मूल्यो बाटो व मापो का निरीक्षण करना आदि आत थे। वह लावारिस सम्पत्ति के निपटार की व्यवस्था करता था और सामाजिक बुराइयो व अपराधो को रोकता था। धार्मिक स्थानो का प्रबन्ध करना भी उसका

---

१ देखिये इसी पुस्तक के पृष्ठ १४० पाद टिप्पणी न० २

२ मुन्तखाब उल लुबाब II पृ० ७७३ बिब्लोथिका इण्डिका कलकत्ता, १८७४

३ कमचन्द्र (पूव) पृ० ३१८, सावा बही हनुमानगढ, वि० स० १८६२/१८०५ ई० न० १५/१ चूरू के घरो व बाजार क लिए देखिये—'मरुश्री' दिसम्बर १९७३ पृ० ४३ ४७ जनवरी-जून १९७९ प० २० ३० चूरू (राज०)

कार्य था।[1]

'कोतवाल' की नियुक्ति दीवान की सलाह पर महाराजाधिराज द्वारा होती थी। वह एक महीनदार के रूप म काय करता था। कातवाल-लाग' के नाम पर एक पैसा वह शहर के माहूकारो के घर स वसूल करता था। उत्सवा के अवसर पर कोतवाल के यहा 'कासा' भेजन की व्यवस्था थी।[1] राजधानी के मुख्य दरवाजो पर चौकसी के लिए जो अधिकारी नियुक्त किय जात थे, उन्ह भी 'हुवलदार' कहा जाता था। उन्ह इस कार्य के लिए १ रुपया रोज मिलता था। वे मोदीखान मे पटीया प्राप्त करते थे। इन्ह पट्टा गाव भी प्रदान किया जाता था। वह दरवाजा के पहरेदारो की हाजरी लेता व दरवाजो की सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था करता था। दरवाजो से गुजरने वाला स वह 'राहदारी' कर वसूल करता था।[3]

अन्य नगरों के कोतवाल भी दीवान द्वारा नियुक्त होत थे। परन्तु वे थाणो क हुवलदार व फौजदार के अधीनस्थ कार्य करते थे। ये भी महीनदार होते थे। इनका मासिक वेतन पाच रुपये मात्र होता था। शहरो मे आने-जाने वाले माल की बिक्री पर वसूल करने के लिए भी मण्डियों के वही अधिकारी होते थे।[4]

ग्राम-प्रशासन

गाव (राज्य) के प्रशासन की सबस छोटी इकाई थी। प्रत्येक गाव कम-से-कम १००० बीघा क्षेत्र म बसा बतलाया गया है।[5] *ग्राम-प्रशासन* को चलाने के लिए मुख्य रूप से दो तरह के अधिकारी होत थे। *प्रथम, राज्य द्वारा नियुक्त* अधिकारी—जो कर-निर्धारण, वसूली तथा कानून व व्यवस्था की स्थापना करत थे। द्वितीय, स्थानीय अधिकारी जो अपन वशानुगत अधिकारा पर नियुक्त किये जात थे तथा जिनका प्रमुख कर्त्तव्य गाव म भेजे गये प्रशासनिक अधिकारियो

---

१. कर्णाविलास (पूव), पृ० १५, कागदो की बही, वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० ५१, वि० स० १८५४/१७९७ ई० न० १०, पृ० १०१, 'खाता व ख्याता का सग्रह', पृ० १७, मोहता रिकाड, बीन न० ८, रा० रा० अ० बी०

२. परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, कागदो की बही, वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ ५१, वि० स० १८५४/१७९७ ई०, न० १० पृष्ठ १०१, न० ४, स० १८३१/१७७४ ई०, पृष्ठ ४

३. भैय्या सग्रह—राहदारी रे हासल मडते व जाधपुर री बही, वि० स० १८६०/१८०३ ई०

४. सावा बही भनूपगढ, वि० स० १७५३ ५४/१६९६ ९७ ई०, न० २०/१, सावा बही हनुमानगढ, वि० स० १८६२/१८०५ ई०, न० १५/१

५. फेगन—सेटलमेन्ट रिपोर्ट, बीकानेर, पृष्ठ १, कागदो की बहियो म जहा भी गांव के क्षेत्र फल का विवरण पाया है, सदैव ही वह १००० बीघा से अधिक का बताया गया है।

की गिनती करके वसूली करता था। वह गाव के पटावरी व लखणीये की सहायता स भूमि मापन करवाता था तथा साहण[1] की सहायता स उपज का कुता[2] करवाता था। उसे गाव की आबादी बनाय रखने के लिए अनेक प्रयत्न करन पडत थे।[3] हुवाला सौंपा के अ तगत हुवलदार और चौधरी राज्य प्रशासन म एक दूसरे की शक्तिया को सतुलित करत थे। चौधरी हुवलदार की शक्तियो पर नियन्त्रण लगाता था। चौधरी का असहयोग उस चिंतित कर देता था। लेकिन जब हुवलदार राज्य को अग्रिम राशि देकर गाव का मुकाता लन लगे तो उनकी शक्ति असीमित हो गयी तथा जगह जगह स उनकी शिकायतें आने लगी। इसस राज्य के सम्मुख एक नयी उलझन खडी हो गयी। करो म आधिक्य और शक्ति स उनकी वसूली के कारण गुवाडिया इधर उधर भागने लगी।[4] राज्य के आर्थिक साधनो पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पडन लगा। अत समस्या से निपटने के लिए राज्य ने शिकायत प्राप्त होन पर हुवलदारो को उनके पद से हटा देन की नीति प्रारम्भ कर दी।[5] परन्तु १८१८ ई० तक कोई स्थायी हल नही ढूढा जा सका।

१८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म जब हुवलदारो ने लहणायतो[6] से कर्ज लकर हुवाला सौंपा के अधिकार उ ह देन शुरू किय तो उनकी उत्तरदायित्वहीन वसूली ने गुवाडियो को बड सकट म डाल दिया।[7] इस युग म मुकाता प्रणाली का प्रचलन भी बढने लगा था। गाव का मुकाती राज्य को अग्रिम राशि देकर

---

१ साहणा गांव का वह स्थानीय अधिकारी था जो उपज का मूल्याकन करके राज्य का भाग निर्धारित करता था।

२ भू राजस्व वसूली की एक प्रणाली जिसम उपज का मूल्याकन करके हासिल को वसूल किया जाता था।

३ खालसा गाव री बही वि० स० १७२६/१६६९ ई० न० ६६ देसरे खालसा वि० स० १७४०/१६८३ ई० न० ६७ खालसा रे हासल वि० स० १७४३/१६८६ ई० न० ६९—बीकानेर बहीयात

४ कागदा री बही वि० स० १८६६/१८०९ ई० न० १६ पृष्ठ ४४ ४६ वि० स० १८७२/१८१५ ई० न० २१ पृष्ठ १४० ४५ भय्या सग्रह—भय्या नथमल के पत्र श्रावण सुदि ७ ११ वि० सं० १८७२ ११ व १५ अगस्त १८१५ ई०

५ कागदों की बही वि० स० १८६६/१८०९ ई०, न० १५ पृष्ठ १ ६१ १३०

६ ऋणदाता

७ बहियात चिठी रे खातो री वि० स० १८२०/१७६३ ई० न० २६/१ रामपुरिया रिकार्ड्स बीकानेर भय्या सग्रह—भय्या नथमल के पत्र श्रावण सुदि ७ ११ वि० स० १८७२ ११ व १५ अगस्त १८१५ ई०

206

निर्धारित मात्रा में गुड़ादि का ... शासन की ओर से वसूल किया जाता था।[1] महाराजा गजसिंह के पूर्ववर्ती शासकों के जमाने में ठाकुर भी गाँव को सुरक्षित करने के लिए इस प्रणाली को राज्य से अधिक अपनाते थे, क्योंकि पड़ौसियों से युद्ध निरन्तर विद्रोहों या उपद्रवों के कारण कोई भी गाँव सुरक्षित नहीं हो पा रहा था।

बड़े-बड़े गाँवों में दुकानदार बार-बार पट्टायत के सामने आते थे। पट्टायतों द्वारा उन दुकानदारों को भी सुरक्षा प्रदान करने पर वहाँ के सामन्त व मुखिया एक निश्चित रकम शासन व अपने लिए वसूल करते थे। राहदारी रकम ... हजार रुपये आते थे।

चौधरी

गाँव के प्रशासनिक स्तर पर स्थायी स्थानीय अधिकारी के रूप में चौधरी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता था। कई गाँवों में वह प्रशासन व रैयत के बीच आवश्यक कड़ी होता था। बीकानेर राज्य में चौधरी का पद ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हुए राजनैतिक उथल-पुथल का परिणाम था। राठौड़ों के आक्रमण से पूर्व वह अपने जनपद का स्वामी या मुखिया या नेता था। १४८८ ई० में उनके आने वाले वर्षों में ... इसकी राजनैतिक व विस्तृत प्रशासनिक शक्तियों के हरण के पश्चात् वह अपनी जाति का मुखिया व गाँव का स्थानीय प्रशासनिक अधिकारी रह गया था जिसका दायित्व राज्य के अधिकारियों को ग्राम प्रशासन के संचालन में सुविधा देना था।[2] नई सर्वोच्च सैनिक व प्रशासनिक सत्ता ने चौधरी या मुखिया व उनके परिवार की विशिष्ट स्थिति को मान्यता प्रदान की तथा उनके पद व भौमिक दावों को स्वीकार करके उनसे सहयोग को मांगा।[3] गाँव की भूमि पर उनके पूर्वजों के दावों को स्वीकृति दी गई तथा उनकी उच्च सामाजिक व प्रशासनिक स्थिति बनाये रखने के लिए तथा ऐतिहासिक दावों को मान्यता देते हुए उस गाँव के अन्य निवासियों से मनवार लाग वसूल करने की स्वीकृति दी। यहाँ तक कि गाँव के ब्राह्मणों को भी अन्य के साथ अपने सामाजिक अवसरों पर उनको कर

---

१ कागदों की बही वि० सं० १८२७/१७७० ई० नं० १ पृष्ठ ३८ फाल्गुन सुदि १४ वि० सं० १८४० ५ मार्च १७८४ ई० नं० ७ वि० सं० १८५४/१७९७ ई० नं० १० पृष्ठ ४१ ४४

२ जी० एस० एल० देवड़ा—सोशियो इकोनोमिक हिस्ट्री आफ राजस्थान पृष्ठ ७० ७३ जोधपुर १९८०

३ वही

४ कागदों की बही नं० १ सं० १८२७/१७७० ई० पृष्ठ ४० इस सम्बन्ध में बहुत से पत्र बहियों में उपलब्ध हैं।

या वस्तु के रूप मे देना पडा ।[1] चौधरी की बदलती हुई परिस्थियों मे भी विशेषाधिकारो की बात यूँ समझ आती है, जब हम देखते है कि वह पुनर्थ कार्यों के लिए ब्राह्मणो को 'डोहली' (अनुदान भूमि) प्रदान करता था, जिसे भग करने का अधिकार पट्टायत को भी नही होता था।[2] नये बसे गावो मे राज्य अवश्य चौधरी नियुक्त करता था, यद्यपि उनका भी पद पुराने चौधरियो की तरह वशानुगत होता था; लेकिन वे उनके किसी प्रकार के भूमि दावे नही माने गये थे तथा वे किसी प्रकार का अनुदान नही दे सकते थे। व मुख्य रूप से एक स्थानीय प्रशासनिक अधिकारी की स्थिति मे थे तथा अपनी ग्रामीण समाज मे सर्वोच्च स्थिति बनाये रखने के लिए अन्य गुवाडियो से 'मलबा' अवश्य वसूल करते थे।[3] इसके अलावा 'नौता', 'ढोल गुवाड' अन्य कर थे, जिन्हे ये सभी चौधरी वसूल करते थे।[4]

चौधरी के मुख्य कर्त्तव्य अपने क्षेत्र मे शान्ति स्थापित करने तथा कर वसूली म राजकीय अधिकारियो को सहयोग देना था। इसके अलावा ग्रामीण जीवन मे उठने वाली समस्याओ से प्रशासन को परिचित कराना था।[5] चौधरी गाव के भूमि सम्बन्धी झगडो को निपटाता था तथा सामाजिक व क्षेत्रीय आर्थिक विवादो मे पच का कार्य करता था।[6] गाव मे चोरी होने पर चोर व माल की खोज का दायित्व भी उसी का था।[7] गाव के ऋणदाताओ को उनकी रकम दिलाने मे सहायता करता था तथा गाव क मजदूरो के पारिश्रमिक तथा उनके अधिकारो की सुरक्षा का दायित्व भी इसी पर था।[8] अपनी इन समस्त सेवाओ

---

१ वही, स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ २७, ४६, स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२; पृष्ठ १६

२ वही, स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ २२७, स० १८७४/१८१७ ई०, न० २२, पृष्ठ १६, न० २३, पृष्ठ ३०

३ जी० एस० एल० देवडा—साशियो इकोनोमिक हिस्ट्री आफ राजस्थान, पृष्ठ ६४-६५ (पूर्व)

४. कागदो की बही स० १८३८/१७८१ ई०, न० ५, पृष्ठ ४८, फेगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट, पृष्ठ १५, १६ (पूर्व)

५ दीवानी पत्र—मोहता सग्रह (बख्तावरसिह के समय के पूर्व)

६ कागदो की बही स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ ४४, स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृष्ठ २४

७ वही, स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ २०८

८. वही, स० १८३८/१७८१ ई०, न० ५, पृष्ठ ४६; फेगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट, पृ० VIII-१४

के बदले राज्य की तरफ से 'नानकर'[1] भूमि प्राप्त होती थी तथा लगान म 'पचोतरा'[2] प्राप्त होता था।

जमीवार

खालसा गावो म 'जमींदारी' गाव अपनी एक विशिष्ट स्थिति रखते थे। ये अधिकतर राज्य क घने रेतीले पश्चिमी भाग म स्थित थे और सरकार की औपनिवेशिक नीति के परिणाम थे। यह जमीदारी गाव इसलिए कहलाते थे; क्योकि प्रशासन गाव बसाने वाले को अथवा मुखिया को पट्टे द्वारा 'जमीदारी' अधिकार प्रदान करता था।[3] जमीदारी अधिकार चौधरी के दायित्वो मे मिलते-जुलते थे, लेकिन जमीदार का चौधरियो की तुलना मे स्थिति व सम्मान अधिक था। वास्तव मे 'राज' ने बस्तिया बसाने हेतु उत्साही व्यक्तियो को राठौड आक्रमण से पूर्व के गावो के चौधरी की स्थिति प्रदान कर दी थी, चूंकि ये बहुत ही निर्जन क्षेत्रो मे अबादी बढा रहे थे और जहा आय के साधन बहुत ही सीमित थे, इस कारण इन्हे कुछ विस्तृत अधिकार दे दिये गये थे। जमीदार को 'नानकर' भूमि व 'पचोतरा' के अलावा कुछ अन्य निजी कर वसूल करने तथा कही-कही तो 'जगात' वसूली के अधिकार भी प्रदान किये गये थे।[4] चोरा अनूपगढ के जमीदारी गावो मे राज्य कई वर्षों तक कोई वसूली नही करता था। ऐसी दशा मे गाव की समस्त आय जमीदार के अधिकार म आ जाती थी।[5] जमीदार गाव के चौधरी, 'पटावरी' व कानूनगो—सभी का कार्य सभालता था।[6] इस प्रकार 'जमीदारी' राज्य की निर्जन क्षेत्र म विशेष औपनिवेशिक नीति का परिणाम थी।

पटावरी

'पटावरी'[7] राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त वशानुगत अधिकारी म युक्त गाव का दूसरा मुख्य अधिकारी होता था। इसका मुख्य कार्य गाव की भूमि, उसका मापन

१ बिना कर की भूमि
२ लगान का पाच प्रतिशत—फगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट, बीकानेर, पृष्ठ सूरत देही VIII-१४
३ कागदो की बही—स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृष्ठ ३३, स० १९६७/१८१० ई० न० १७, पृष्ठ २४८
४ वही, न० १२, मार्गशीर्ष सुदि ६, १५, स० १८५६, ३० नवम्बर, ६ दिसम्बर, १८०२ ई०
५ भैंय्या सग्रह—भैंय्या देईदान पत्र—माघ सुदि ६, १८७७, १० फरवरी, १८२१; माह सुदि १, १८७८, २८ अगस्त, १८२१ ई०
६ कागदो की बही स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, स० १८७४/१८१७ ई०, न० २८, पृ० ९६
७. पटवारी

और हासल वसूली के आलेखो को तैयार करना होता था।[1] गाव की सुरक्षा का दायित्व भी पटावरी पर था।[2] यह पद राज्य के उत्तर पूर्वी क्षेत्र के गावो मे अधिकतर उल्लिखित हुआ है, इतना अन्य भागो म नही। पटावरी भी अपनी प्रशासनिक व सैनिक सवाओ के बदले 'नानकर भूमि व पचोतरा' प्राप्त करता था, पर ऐसा कही उल्लख नही आया है कि वह भी 'चौधरी' की भाति अलग से कोई कर वसूल करता था अथवा गाव की भूमि पर उसका कोई ऐतिहासिक दावा होता था।[3]

चौधरी', जमीदार व 'पटावरी' तीनो के पद वशानुगत थे। तीन कारणो से इनक पद रिक्त हो सकते थे—(१) इनकी मृत्यु पर, (२) दायित्वहीन कार्यवाही पर 'राज' द्वारा इन्ह हटाय जाने पर (३) इनके द्वारा 'राज' की स्वीकृति के पश्चात् अपन अधिकार हस्तान्तरण करने पर। साधारणतया इन अधिकारिया की मृत्यु के पश्चात् इनका बडा पुत्र ही पद का अधिकारी बनता था, पर चाहे तो राज' किसी अन्य पुत्र को भी अधिकार सौंप सकता था। यहा यह महत्वपूर्ण है कि शासक चाहे तो गाव म चौधरियो की सख्या घटा व बढा भी सकता था।[4]

पचायत व्यवस्था

राज्य के सामान्य प्रशासन व न्यायिक सगठन म विद्यमान विभिन्न तरह की पचायते एक अभिन्न अग थी। न्याय के क्षेत्र मे जहाँ केन्द्रीय स्तर पर राजा व दीवान सभी प्रकार क मामलो म निणय देत थे, वहाँ चीरा व गाव स्तर पर फौजदारी मामले चीरो व थाणो के फौजदार व हुवलदार तथा शहर व कस्बे म कोतवाल निपटाते थे, पर अधिकाश नागरिक प्रकृति क विवाद विभिन्न पचायतो के सम्मुख ही आते थे। सामान्य व नागरिक प्रशासन म पचायतो की विद्यमानता इस बात की द्योतक है कि राज्य ने प्रशासन म सत्ता की विकेन्द्रीकरण की शक्तियो को भी स्वीकारा था तथा उन्ह अपने सरक्षण म राजा की निरकुशता पर आच न आते हुए फलने-फूलन दिया था। पचायत व्यवस्था की कार्यप्रणाली क बारे म बीकानेर रामपुरिया सग्रह को कागदो की सभी बहिया विस्तृत

---

१. भैम्या सग्रह पत्र बैशाख सुदि ५ १० व ११ स० १८७३, २, ७ मई, १८१६ ई०

२ वही, भैम्या पत्रा म पटावरी के अध्ययन के लिए विशष तौर पर देखिये—रामगढ गाव की लूट का मामला।

३ कागदा की बही स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृष्ठ १२६, स० १८७४/१८१७ ई० न० २३, पृ० ८५

४ फग्सन—सटलमण्ट रिपोर्ट बीकानेर, पृ० VIII १४, जी० एस० एल० देवडा—सोशियो इकोनोमिक हिस्ट्री आफ राजस्थान, पृ० ६६ ६७

रूप से प्रकाश डालती हैं।[1] इन वहियो मे, जिस ढग से पचायतो का वर्णन आया है, उससे प्रमाणित होता है कि वे प्राचीन मान्यता प्राप्त सस्थायें थी। अधिकाश पचायतें ग्रामीण क्षेत्र में ही प्रभावशाली थी। शहर व कस्बो मे जाति व व्यावसायिक पचायतो[2] की प्रधानता थी।

उपलब्ध अभिलेखीय सामग्री स प्रमाणित होता है कि राज्य म तीन प्रकार की पचायतें प्रचलित थी—(१) गाव-पचायत, (२)जाति-पचायत, (३)व्यवसायो से सम्बन्धित पचायत। राज्य के अधिकाश गाव एक ही जाति की प्रधानता से वस होते थे, इस कारण उन गावो की जाति व गाव-पचायतें एक ही होती थी। अनेक जातियो स बने गावो की जाति व गाव-पचायतें अलग-अलग होती थी। इन गाव-पचायतो म विभिन्न जातियो का कितना प्रतिनिधित्व होता था, इस पर स्रोत मौन हैं। शहर व कस्बो में जाति-पचायतो की प्रधानता थी जैसे सोनारो, मालियो व सुथारो की पचायत। यहा तक कि वहा मुसलमान भी विभिन्न जातियो मे बटकर अपनी-अपनी पचायतो का निर्माण करते थे। गावो मे अनेक व्यवसायो से सम्बन्धित बसने वाले विभिन्न जाति के लोग सख्या मे बहुत कम थे। जाटो की किसी एक शाखा के गाव मे बनिया या सुथार की गुवाडी एक या दो ही होती थी।[3] इस कारण उनकी जाति-पचायतें कई गावो के उनके जाति बन्धुओ स मिलकर बनती थी। शहर व कस्बो मे विद्यमान व्यावसायिक पचायतो मे तात्पर्य किसी जाति विशेष की पचायतो से न होकर व्यापार व वाणिज्य की विभिन्न शाखाओ मे लगे व्यक्तियो के सगठन की पचायत से है। जैसे आढतियो की पचायत, मिश्री क व्यापारियो की पचायत, साहूकारो की पचायत इत्यादि। साधारणतया इन पचायतो के पचो की नियुक्ति व मान्यता दरबार द्वारा पुष्ट की जाती थी।

इन विभिन्न पचायतो म पचो की सख्या कितनी होती थी, इस पर फिर स्रोत मौन है। स्वय राज्य द्वारा नियुक्त पचो के आदेश-पत्रो स ज्ञान होता है है कि यह सख्या लगभग पाँच थी, वैसे सात-आठ व कभी-कभी इससे अधिक

१ पचायती व्यवस्था का सम्पूर्ण विवरण कागदो की बहिया के सनद', 'लिखत' व 'रोठ' कागदो मे उपलब्ध होता है। इस विषय म प्रस्तुत विवरण के लिए कागदो की बही न० १ मे २१ तक चुनी हैं जो स० १८११/१७५४ ई० स स० १८७३/१८१६ ई० की है— रामपुरिया रिकार्ड, बीकानेर—रा० रा० अ० बी०

२ एक व्यवसाय से सम्बन्धित पचायत के कारण ही सुविधा के लिए इन पचायतो का नाम व्यावसायिक पचायत दिया गया है।

३ उदाहरणार्थ चोरा खेवडा का गाव जेतसीसर ओमीयो का जहा कुछ व्यावसायिक जातिया थी, फिर भी वह जाटो की मुख्य जाति के कारण जाटो का गाव कहलाता था—बही हासल रे लेखे री—स०१९४९/१८९२ ई०, न० २८, पृष्ठ २२-२५— रा० रा० अ० बी०

पचों की नियुक्ति के विवरण प्राप्त होते हैं। राज्य द्वारा पंचों की नियुक्ति के अलावा पचायतों के पच किस प्रकार निर्वाचित या नियुक्त होते थे, इसका भी कोई उल्लेख नही मिलता है। राज्य तो पहले से चले आ रहे पंचो को ही नियुक्ति मे चुनता था। हा, गाव का जो चौधरी होता था या उसके परिवार के सदस्य होते थे, वे अवश्य अपने पद की स्थिति व क्षेत्रीय ऐतिहासिक दावो के कारण पंच-समूह मे अवश्य स्थिति पा जाते होगे।

जाति-पंचायत के विषय मे तो स्पष्ट ही है कि इसके सदस्य उसी जाति विशेष से चुने जाते थे, तथा मुख्य रूप से एक जाति से बसे गांव के पच भी वही होते थे। परन्तु बडे गावो की गाव-पचायत के पच किस जाति से चुने जाते थे, इसका विवरण नही मिलता। सम्भवत भू-स्वत्व अधिकारों से युक्त काश्तकारों मे से ही पच चुने जाते थे। क्योंकि गाव मे इन्ही की संख्या सबसे अधिक होती थी। ऐसा अनुमान है कि 'कमीनान' को निम्न जाति का होने के कारण, महत्त्व नही दिया जाता होगा। व्यावसायिक जाति के लोगो की सख्या कम होती थी, पर उसके कुछ सदस्य गाव-पंचायत मे लिये जाते होगे। राज्य मे यह भी आवश्यक नही था कि प्रत्येक गाव मे पचायत हो, छोटे-छोटे गाव पचायती प्रशासन के लिये पास के बडे गाव से जुडे रहते थे। जाति-पंचायतों का क्षेत्र तो बहुत विस्तृत होता था। किसी जाति की विशेष समस्या को सुलझाने के लिए पूरे एक चौरे व यहा तक कि आस-पास के चौरो मे से भी उस जाति के पंच आते थे।

पचायत का मुख्य कार्य ग्रामीण समाज मे नित्यप्रति उठने वाले सामाजिक व आर्थिक विवादो को निपटाना था। पचायत के सम्मुख आने वाले विवाद निम्न प्रकार के होते थे तथा उनसे सम्बन्धित पचायते बैठ कर उन पर अपना निर्णय देती थी।

ग्राम-पचायत के सम्मुख मुख्य रूप से आर्थिक विवाद ही आते थे, जैसे भू-स्वत्व अधिकार, भूमि के रेहन, भूमि के मुकाते, खेत की सीमा के प्रश्न, गाव की सीमा के प्रश्न आदि। इनके अलावा, गाव-पंचायतें साधारण अपराधो जैसे चोरी, मिलावट, अपहरण, बलात्कार आदि के मामलो को भी निपटाती थी।

जाति-पंचायतो के सम्मुख मुख्य रूप से सामाजिक रीति-रिवाजो व परपराओ से सम्बन्धित वाद-विवाद प्रस्तुत किए जाते थे। जैसे विवाह, नाता, पले लगाना, सगाई, गोद लेना, वंशानुगत सम्पत्ति के बँटवारे तथा जाति मे दुराचार आदि के विवाद।

व्यावसायिक पचायतें, जो कस्बों व नगरो मे स्थित होती थी, व्यापारियो के लेन-देन, लेखा-जोखा, साझेदारी, मुकाते के विवादों को निपटाती थी।

उपर्युक्त विवाद या तो सीधे सम्बन्धित व्यक्ति द्वारा पंचायत के सम्मुख लाये जाते थे अथवा प्रशासन द्वारा उन्हे सुलझाने के लिए सौंपा जाता था।

पचायत स्वय भी स्थिति की गम्भीरता का अध्ययन करके मामले को अपने हाथो ले सकती थी तथा शासक व प्रशासन को सूचित किये बिना निर्णय देती थी।

प्रशासन की यह निश्चित नीति थी कि अधिकतर स्थानीय सामाजिक व आर्थिक विवाद पचायतो के ही सुपुर्द किय जायें। शासक स्थानीय सामाजिक व आर्थिक विवाद इसके सम्मुख आने पर पचायतो को सुपुर्द कर देता था। उस समय वह जो आदेश पचो के लिये भेजता था, उसम स्पष्ट रूप स उल्लिखित होता था कि वे ईमानदारी स अपना काय सम्पादित करें तथा निष्पक्ष होकर ही फैसला करें। इसके लिए उन्हे 'दूध-पूत-खेती' की सौगन्ध दी जाती थी। वादी-प्रतिवादी को यह चेतावनी दी जाती थी कि अगर उन्होने पचो के निर्णय को स्वीकार नही किया तो उन पर गुनहगारी' लगगी, जिसकी राशि भी लिखित आदश के साथ लिखी जाती थी।[1]

पचायत का निर्णय अन्तिम नही होता था। उनके फैसल के विरुद्ध दरबार म अपील की जा सकती थी। शासक स्वय भी सुनवाई कर सकता था अथवा पचो को पुन मामले की नये सिरे से खोज-बीन करने के लिए आदेश दे सकता था।

शासक कई बार किसी गांव की सामाजिक व आर्थिक समस्या को सुलझाने के लिए दूसरे गाव के पचो को भी नियुक्त करता था। व पच एक गाव के भी हो सकते थे तथा विभिन्न गावो के पचो म से भी नियुक्त किय जा सकते थे। विशेषकर, सगाई क मामले को लकर उत्पन्न हुए विवाद म एस उदाहरण मिलत हैं।

एक बार तो नागौर के पचो को भी सगाई के विवाद को सुलझाने क लिये आमन्त्रित किया गया था।[2] दो गावो की 'सीव'[3] का विवाद तो तीसरे गाव के पच सुलझाते ही थे।

इन पचायतो के दण्ड, जो राज्य प्रशासन द्वारा अनुमोदित होत थे, अपनी सीमा म साधारण व कठोर दोनो प्रकार क हात थे। प्रायश्चित, क्षमायाचना व जुर्माना साधारण प्रकार के दण्ड थे। जाति स बहिष्कृत करना, सम्पूण जाति को सामूहिक भोज देना आदि कठोर दण्ड थे। शासक अपनी इच्छा स इन दण्डो म

---

१ गो० लूणकरणसर म ईतरो पचो जोग्य तीया बुचे वखते वीजे रे घर रो अमरचो छ सु थे पच छो बडा परमेसरी नीवेड दे जो हर कुरक हीरी राखी तो थोरे दूध पूत री सीख छै

तेरी सरब समझ नीवेड़ दे जो थोहीरो कहो उथपसी तो गुनेगारी लागसी। रामपुरिया चतरू ढोलो बुचो—गुमानो, सुजो, कुमो चौपड़ो।

—कागदो की वही वि० स० १८५७/१८०० ई० न० ११, पृष्ठ २०६

२ कागदों की वही—चैत्र वदि ६, १८३६, २४ मार्च, १७८३ ई०, न० ६

३ सीमा

परिवतन कर सकता था। वह जाति से बहिष्कृत व्यक्ति को पुन जाति म प्रवेश दिला सकता था। ऐसी स्थिति म शासक को नजर भेंट करने का नियम था। इस प्रकार, शासक पचायती व्यवस्था को पूण सम्मान दते हुए भी अन्तिम निणय अपन हाथो मे ही रखता था।

पचायत सस्थाओ की स्थापना प्रजा व सरकार दोनो के लिये लाभदायक थी। सरकारी अधिकारियो का इन सस्थाओ के साथ रहना भी इस अथ म लाभप्रद था कि व ग्रामीण समस्याओ स तथा स्थानीय नियमो स परिचित रहत थ। साथ ही स्थानीय सदस्यो क लिए सरकारी अधिकारियो क साथ रहना एक गौरव का विषय था क्योकि इससे साधारण और सरकारी अधिकारियो के बीच सौमनस्य व सौहार्द बना रहता था। यह स्थिति शासन क सुचारु रूप स चलान म बडी उपयोगी थी। इसम कोई सन्दह नहीं कि जहा तक जाति पचायतो का सम्बन्ध है, व किसी सीमा तक निरपक्ष न्याय दने म सहयोगी सिद्ध हुई। स्थानीय रीति-रिवाजो का इस व्यवस्था द्वारा एक स्तर बन सका और सामाजिक नियमो के परिपालन म समाज म परम्परागत अनुशासन की भावना को दृढ करने का अवसर मिला।[1] इस प्रकार राठौड शासको न भूमि की लम्बी अवधि स चली आ रही सम्मानजनक परम्पराओ को प्रशासन म सहयोगी बनाकर स्थानीय लोगो की प्रशासन के प्रति निष्ठा प्राप्त की न कि उन्ह व्यर्थ का मानकर नष्ट कर दिया।[2]

---

१ डॉ० जी० एन० शर्मा—राजस्थान का इतिहास पृष्ठ ६४४

२ जी० एस० एल० देवडा—पचायत सिस्टम एण्ड आर्केइवल सोर्सेज—शोधपत्र प्रस्तुत सेमिनार, सेण्टर आफ राजस्थान राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, माच १६७७

षष्ठम अध्याय

वित्तीय प्रशासन

आय

मुगल साम्राज्य म बीकानेर वतन जागीर' का मूल्य ३४८, ७५० रु० आका गया था, जिसमे परगना बीकानेर की आय २ ५०,००० रु० थी।[1] बीकानेर के शासको को मुगल साम्राज्य म मनसब के वेतन के बदले जो 'तनख्वाह जागीर' प्राप्त होती थी, उनकी आय भी फिर इसमे सम्मिलित कर दी जाती थी। राजा रायसिंह को 'वतन जागीर' क साथ मुगलो स ८ ६२ ०६८ रु० की जागीर आय प्राप्त हुई थी।[2] राजा सूरसिंह व अनूपसिंह को क्रमश रु० ३,४४,८३४ व रुपये १,१०,५१५ की जागीरी-आय मिली थी।[3] लेकिन इस कुल आय के विभिन्न स्रोतो का स्वतन्त्र उल्लेख कही नही मिलता है। माहाराजा अनूपसिंह राज्य के प्रथम शासक थे, जिनके काल की वहियो म, 'वतन जागीर' की कुल आय, उसम होने वाली खालसा व पट्टा भूमि की आय तथा मुगल जागीर स प्राप्त होने वाली आय का अलग-अलग विवरण मिलता है। इनम वतन जागीर' की आय के विभिन्न स्रोतो का वर्णन भी उपलब्ध है।[4] सन् १६७० ई० से सन् १६९२ ई० तक राज्य के खालसा गावो की, कुल आय रु० १६,९८,७७६ थी। इन २३ वर्षो

---

१ राजा सूरजसिंघजी रे जागीर री विगत, (२०), महाराजा अनूपसिंघजी रे मनसब नै तलब री विगत, २०६/२ (पूर्व), परगना सरकार विगत, सिरकार बीकानेर सुबौ अजमर—२२७/३ अ० स० पु० बी० अकबर के काल से यह राशि बढ गई थी। इसका उल्लेख पूव राजपद अध्याय मे हो चुका है।

२ सम्राट अकबर का राव रायसिंह को फरमान वि० स० १६५६/१५९९ ई० (पूव)

३ राजा सूरतसिंघजी रै जागीर री विगत, महाराजा अनूपसिंघजी रे मनसब नै तलब री विगत (पूव)

४ महाराजा अनूपसिंघजी के समय की समसत गावा री बही, वि० स० १७२७-४५/१६७०-९२ ई०, न० ७१ परगना रै जमा जोड री बही, वि० स० १७२६ ५०/१६६९-१६९३ ई०, न० ९९, परगना रे जमा खर्च की बही, वि० स० १७५०-५१/१६९८-९९ ई० न० ३२, बीकानेर बहियात, रा० रा० अ० बी०

मे पट्टे के गाँवो से होने वाली आय रु० १८,८६,२३१ थी।[1] इसी काल के एक अन्य विवरण से ज्ञात होता है कि सन् १६६६ ई० से सन् १६६३ ई० तक, २६ वर्षों मे राज्य की कुल आय रु० ३८,५०,६०५ थी, अर्थात राज्य को प्रति वर्ष रु० १,५४,०२४ की आमदनी होती थी। इन वर्षों की मुगल जागीरी आय को मिला देन से प्राप्त होने वाली कुल आय रु० ६७,२४,०२४ हो जाती थी।[2] १८वी शताब्दी के प्रारम्भ म, अलग-अलग वर्षों म आय के विभिन्न स्रोतो का वर्णन अवश्य कही-कही मिलता है, परन्तु उनम सम्पूर्ण आय का अनुमान लगाना कठिन है। तदुपरान्त, माहाराजा गजसिंह के काल को 'खाता खजाना वही' मे राज्य की कुल आय रु० १,२०,०४० का वर्णन उपलब्ध है।[3] महाराजा सूरतसिंह के काल मे आय-वृद्धि सन् १७६५ ई० मे रु० १,८६,५५८ था,[4] जो सन् १८०६ ई० मे बढकर रुपये ६,५१,६५३ हो गयी। यह वृद्धि अपने-आपमे अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण थी।[5]

सन् १५७४ ई० मे १८१८ ई० के काल के बीच राज्य की कुल आय मे काफी उतार चढाव आये थे। मुगल-प्रशासन ने, बीकानेर 'वतन जागीर' की आय रु० ३,४८,७५० निर्धारित की थी। परन्तु महाराजा अनूपसिंह के समय, स्थानीय स्रोतो के अनुसार, राज्य की वास्तविक औसत आय प्रतिवर्ष रु० १,५४,०२४ थी। इस प्रकार 'जमा' व 'हासल' के आकडो की सूची मे बहुत अन्तर

---

१. बही समसत गावा री, वि० स० १७२७-४५/१६७०-६२ ई०, न० ७१, परगना रे जमा-जोड री वही वि० स० १७२६-५०/१६६६-६३ ई०, न० ६६—बीकानेर बहियात

२ परगना रै जमा जोड री वही वि० स० १७२६-५०/१६६६-६३ ई० (पूर्व)

३. लेखा वही वि० स० १८१४/१७५७ ई०—बीकानर बहियात, रा० रा० अ० बी०

४. बही खाता खजाना मदर, वि० स० १८५२/१७६५ ई०, बीकानेर रोकड बहियां—रा० रा० अ० बी०

५ जमा खरच री वही, वि० स० १८६६/१८०६ ई०, भैय्या सग्रह, बीकानेर

नोट—इस अध्याय की मूल सामग्री समसत गावा री बही, परगना रे जमा जोड री बही, लेखा बही, वही खाता खजाना सदर व जमा खरच री वही पर आधारित है। आगे के पृष्ठो पर इनकी सूचना के सदर्भ म पाद-टिप्पणी क रूप म बार-बार प्रयोग नहीं किया गया है। इन बहियो से सम्बन्धित वर्ष इनका प्रतिनिधित्व करेंगे। इन वर्षों का विवरण इस प्रकार है—

समसत गावा री बही—१६७० ई० से १६६२ ई० तक
परगना रे जमा जोड री वही—१६६६ से १६६३ ई० तक
लेखा वही—१७५७ ई०
बही खाता खजाना सदर—१७६५ ई०
जमा खरच री बही—१८०६ ई०
सावधानी के लिए इन वर्षों मे किसी अन्य सामग्री का प्रयोग नही किया गया है।

था। यद्यपि इस काल के आय आकडा की सूची से विदित होता है कि राज्य की आय म निरन्तर वृद्धि हो रही थी। सन् १६६६ ई० की तुलना म १६६३ ई० तक यह वृद्धि ३१ ६६ प्रतिशत थी। इन बीच के पच्चीस वर्षों म अधिकतम आय वृद्धि ६६ ८७ प्रतिशत सन् १६८६ ई० म हुई थी। केवल तीन वर्षों, सन् १६७०, १६७२ व १६७४ ई० म ही आय मे गिरावट आई थी। ये वष अकाल व सूखे के वर्ष थे। राज्य की आय म वृद्धि क अनेक कारण थ जिनम प्रमुख करा की दर मे वृद्धि खालसा गावो की सख्या व आय म वृद्धि तथा पट्टायत' क्षेत्र म नये करो को लगाना आदि थे। १६८८ ई० तक खालसा गावो स होने वाली आय निरन्तर बढती गई। १६७० ई० म जहा खालसा गावो स ३७ ५४७ रुपये प्राप्त होते थ, वहा १६८२ ई० म १,६३ ८६६ रु० तथा १६८७ ई० म २,१५,६०५ रुपये प्राप्त हुए।[1] राज्य के रेगिस्तानी वातावरण म, आय के उतार-चढाव को देखते हुए यह उल्लेखनीय प्रगति थी जबकि उन वर्षों म सम्पूर्ण भारतवर्ष म अकाल व महामारी का प्रकोप चल रहा था और मारवाड व दक्षिण भारत युद्ध ग्रस्त था।[2] १६६० ई० के बाद राज्य म अव्यवस्था आ जाने के कारण दूसरे लक्षण प्रकट होन लगे।

१८वी शताब्दी मे राज्य की आय म कमी आने लगी थी। मुगल साम्राज्य क पराभव क परिणामस्वरूप जागीरी आय समाप्त हो गई। इस काल म खालसा गावो की सख्या भी घटने लगी थी।[3] पडौसी राज्य क आक्रमण, ठाकुरो के विद्रोही आचरण व प्रशासनिक शिथिलता न आय म गिरावट को प्रेरित किया था।[4] यद्यपि शताब्दी के मध्य तक राज्य की उत्तर पूर्वी सीमा पर स्थित मुगल परगनो के स्थाई रूप म राज्य म मिल जाने के कारण आय म वृद्धि होनी चाहिये थी, परन्तु अव्यवस्था के वातावरण म वृद्धि की वे सम्भावनाए प्रभावहीन हो गई। सन १७५७ ई० म आय सन १६६६ ई० की तुलना म ५६ ६६ प्रतिशत रह गई थी। सन् १७५७ ई० का वर्ष अकाल व युद्ध का वष भी था।[5] महाराजा सरतसिंह के कठोर प्रशासन तथा नये करा के प्रचलन स, सन् १७६५ म आय १७५७ ई० की तुलना म बढ गई थी, लकिन सन् १६६६ ई० की तुलना म अब भी यह ७१ ४४ प्रतिशत ही थी। महाराजा सूरतसिंह क काल मे राज्य की

---

१ समसत गावा री बही १६७० ६२ ई० (पूर्व) देखिये सारणी म भी

२ सरकार—औरगजब पष्ठ २३२ ३३, डा० इरफान इबीब—दी ऐगरेरियन सिस्टम आफ मुग़ल इण्डिया पृष्ठ १०१-१०३ डा० जी० एन० शर्मा राजस्थान, पृष्ठ ४६१ ६२

३ सन १६६८ ई० म खालसा गावा की सख्या २५५ थी जो १७५६ ई० तक घट कर १५२ रह गई— हासल बहिया —वि० स० १७२५/१६६८ ई० वि० स० १८१३/१७५६ ई० रा० रा० अ० बी०

४ दयालदास ख्यात (अप्र०) २ पृष्ठ २७०-७४, ३१८ २०

५ बीकानेर री ख्यात महाराजा सुजाणसिघजी सूं महाराजा गजसिघजी ताई १८६/११ (पूव)

उत्तरी, पश्चिमी व दक्षिणी सीमाओ म विस्तार हुआ था। भटनेर सदैव के लिए खालसा मे मिला लिया गया था। मीरगढ और फलोधी राज्य नियन्त्रण मे आ गये। महाराजा ने पुराने व नये करो की दरो मे वृद्धि कर दी थी। विद्रोही ठाकुरो से 'पेशकसी' की अधिक रकम वसूल की गई थी। इन सब के परिणाम-स्वरूप सन् १८०६ ई० म राज्य की आय वढकर ६,५१,६५३ रुपये हो गई। सन् १६६८ ई० की तुलना मे यह वृद्धि ४०७ १० प्रतिशत अधिक थी। यह राज्य की आय मे अधिकतम वृद्धि थी।[1] राज्य की इतनी अधिक आय तो राजा रायसिह के काल मे, मुगल जागीरी आय को सम्मिलित करने से भी नही हुई थी। इसके लिये महाराजा सूरतसिह की प्रशासनिक व सैनिक आवश्यकताये मुख्य रूप से उत्तरदायी थी।

राज्य की कुल आय की सूची[2]

(स० १६६६ से १८१८ ई० तक, १०० प्रतिशत के आधार पर)

वर्ष	आय (रुपयो मे)	प्रतिशत (१०० के आधार पर)
१६६६	१,८७,७७५	१००
१७५७	१,१२,०२०	५६.६६
१७६५	१,३४,०७८	७१ ४४
१८०९	६,५१,७६५	५०७ १०२

१. देखिये कुल आय की सारणी

२ राज्य की कुल आय के विवरण से सबधित जानकारी बहुत कम मात्रा म उपलब्ध है। करीब सौ साल से अधिक समय म हुई आय को प्रकट करने वाली सिर्फ चार बहियां प्राप्त हुई हैं। उनके बीच के वर्षों का अन्तर अधिक होने के कारण, सही तथ्यो को खोज निकालना कठिन हो जाता है। लेकिन प्राप्त सामग्री के आधार पर आय की दिशा का पता लगाया जा सकता है। हमने इस अध्ययन के लिए १६६६ ई० को आधार वर्ष चुना है, क्योकि सबसे पुरानी प्रामाणिक सामग्री जो उपलब्ध हुई है, वह इसी वर्ष की है। यह वर्ष हर दृष्टि से सामान्य होने के कारण, अध्ययन की दृष्टि से एक आदर्श वर्ष के रूप म लिया जा सकता है। इस वर्ष न तो अकाल पडा था और न आशा स अधिक उत्पादन ही हुआ था। इससे पूर्व १६६६ ई० की सामग्री भी है, लेकिन आय के पूरे विवरण उपलब्ध न होने के कारण उस 'आधार वर्ष' चुना नही जा सका। फिर, आय की व्यय के साथ तुलना करने के लिए भी १६६६ ई० का वर्ष चुनना आवश्यक है, क्योकि व्यय के विवरण इसी वर्ष से प्राप्त होते हैं। प्राप्त सामग्री म आगे के वर्ष असाधारण हैं। १७५७ ई० का वर्ष सामान्य है, परन्तु १८०६ ई० का वर्ष व्यय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नये करो की आय-वृद्धि स भरा हुआ है। दखिये रेखाचित्र पृष्ठ १६२ पर।

Total Income And Expenditure
And Its Difference
SCALE 2 CM = 100 PERCENTAGE
INCOME
EXPENDITURE
600
500
400
300
200
100
0
1699
1757
1795
1809
YEAR

आय के साधन

आय के स्वीकृति-पत्र
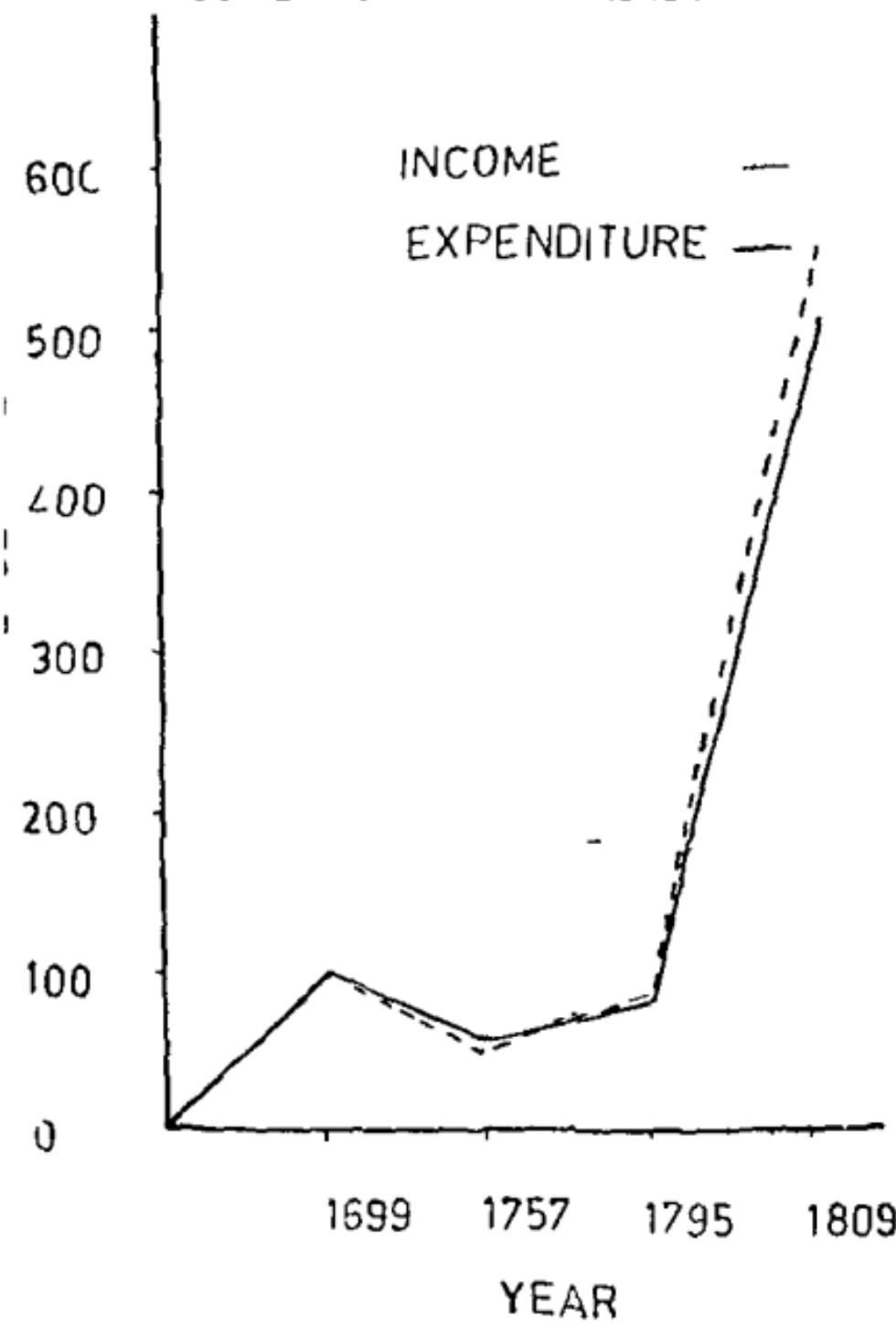
राज्य की आय के विभिन्न स्रोत थे जिन्हे निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

१ भोग या हासल (माल)
२ धुआ भाछ या गृह कर
३ हलगत या हलो पर निर्धारित कर
४ जगात या आयात निर्यात पर कर तथा चुगी कर
५ खड खरच या फौज खरच (सैन्य कर)
६ पेशकसी फरोही, नजराना नजर व जुर्माना कर, गुनेहगारी आदि
७ श्रीमण्डी या राजधानी की मण्डी की आय—श्रीमण्डी की आमदनी के जगात के अलावा ये कर थे—
 (अ) खोला (गोद लेने पर कर)
 (ब) चौथ जमीन (जमीन की बिक्री का कर)
 (स) गईवान (लावारिस सम्पत्ति)
८ मण्डियो की जमा—श्रीमण्डी के अलावा राज्य की मण्डियो की आय
९ कोयला दलाला री भाछ (सौदा दलाली भाछ)
१० साहूकारा री भाछ
११ कौरायत लोको री भाछ—(शहर मे रहने वाली विभिन्न जातियो पर लगाया गया कर)
१२ टकसाल
१३ राजकीय कारखाने
१४ कसूर (जुर्माना)
१५ साल सीलडी की भाछ (कारीगरो पर लगाया कर ब्राह्मणो से भी इसे वसूल किया जाता था)
१६ नौता (शादी ब्याह पर लिया जाने वाला कर)
१७ हाकमो का रोजगार (अधिकारियो का पारिश्रमिक कर)
१८ मेला (त्योहार)
१९ मुकाता (ठेका)
२० रीठ (पुनर्विवाह कर)
२१ जोड रे साहे (शहर का चराई कर)
२२ बहेलिया री खेल (चरवाहो पर कर)
२३ कोरड, मुरज, घास-चारा (घास कर)

२४ सीगोटी (भड चराई कर)
२५ पान-चराई कर (चराइ कर)
२६ अग भाछ (जानवरो पर लगाया गया कर)
२७ लेखणीयो का लाजमा (लिपिको के लिए लगाया गया कर)
२८ ठाकुरजी गुसोइ का लाजमा (देवी देवताओ का कर)
२९ हवक (विविध कर)
  (अ) कीयाडी भाछ (प्रत्येक घर के दरवाजे का कर)
  (ब) देसप्रठ (गाव म बसने का कर)
  (स) ऊठो की भाछ (ऊटो का कर)
३०. मुगा कर (बाहर के जानवरा पर लगाया गया चराई कर)
३१ मापा (बिक्रीकर)
३२ रुखवाली भाछ (रक्षा का कर)
३३ घोडा रेख (पट्टदारो स लिया गया सैनिक कर)
३४ धान की चौथाई या आधीया (धान बिक्री कर)
३५ कामदारो की भाछ (कर्मचारियो स लिया गया कर)
३६ हजूरियो की भाछ (निजी सेवको स लिया गया कर)
३७ बीरामणो की भाछ (ब्राह्मणो स लिया गया कर)
३८ पोखाण—(खानो पर कर)
३९ लूण—(नमक कर)
४० चौधर बाब पटवारी बाब (चौधरी व पटवारियो स लिया गया कर)
४१ बीदाहदो का बधा (बीदावत राठौडो पर लगाया गया कर)
४२ थाणो का कर
४३ अदालत रे साहे (न्याय कार्यों के लिए लिया गया कर)

इनमे से बहुत स कर एक साथ वसूल नही किए जाते थे। कुछ कर अन्य करो के भाग थे। महाराजा अनूपसिह, गजसिह व सूरतसिह ने कई नये करो को लागू किया। अकेले सूरतसिह ने १० नये कर लगाये थे।

विवरण

राज्य की आय का मुख्य भाग 'हासल' स ही प्राप्त होता था, परन्तु इसके अलावा अन्य महत्त्वपूण कर भी थे जो राज्य की आय के पूरक थे।

१ भूमि कर या हासल—राज्य की आय का प्रमुख स्रोत भूमि कर या 'हासल' ही था। जो भू राजस्व या हासल वसूल किया जाता था, वह मुख्य तौर पर तीन भागो स गठित होता था— भोग'(भाल), रोकड रकम (सहायक

कर) व 'वाजा रकमे" (अन्य कर)। 'भोग' या 'भाल' वास्तव मे कृषि कर होता था तथा साधारणतया हासल का प्रमुख अग होता था।[1] 'भोग' कृषक की कुल उपज म राज्य के निर्धारित भाग के रूप म वसूल किया जाता था। 'रोकड-रकम' या सहायक कर बीकानेर राज्य मे हासल के गठन म भोग' के समकक्ष व बल्कि उससे भी महत्त्वपूर्ण अग क रूप मे होते थे जबकि राजस्थान के अन्यत्र क्षेत्रो व मुगल परगनो मे हासल म सहायक करो की ऐसी स्थिति नही थी।[2] यहा गावो की जमावधी' भी रोकड रकमो' की होती थी। 'भोग' की वसूली के समय निर्धारण करके ले लिया जाता था। भोग' व 'रोकड रकमो' की वसूली म जो प्रशासनिक खर्चे आत थे, उनक तथा मन्दिरो व अन्य धार्मिक कृत्यो के नाम से जो अन्य कर वसूल किय जाते थ, उन्हे वीजा रकम' कहा जाता था।[3]

बीजा रकमे' हासल के पाँच प्रतिशत भाग का निर्माण करती थी।[4] लेकिन 'भाग व रोकड रकम' हासल क कितने प्रतिशत भाग होग यह भू राजस्व की विभिन्न प्रणालियो पर निर्भर करता था, क्योकि राज्य म कुछ प्रणालिया ऐसी थी, जिसम 'भोग' वसूल ही नही किया जाता था जैस पसाइती', मुकाती' व 'बोली-यार पद्धति। केवल हाली पद्धति म भोग व रोकड रकम साथ साथ वसूल की जाती थी। एक अन्य पद्धति वीघडी म प्रति बीघा लगान नकदी मे ले लिया जाता था, जबकि भोग जिन्स' म वसूल होता था। भीत की भाछ' पद्धति मे घरो या गुवाडियो की गिनती करके निर्धारित पर स हासल वसूल कर लिया जाता था।[5] इस प्रकार इस रेगिस्तानी क्षेत्र म कुछ ऐस क्षेत्र व पद्धतिया प्रचलित थी जिनमे हासल का सम्बन्ध कृषि से बिल्कुल नही होता था। भू राजस्व पद्धति व हासल का निर्धारण भूमि की उपजाऊ शक्ति, प्रशासनिक ढाचे तथा काश्तकार की जाति के आधार पर मुख्य तौर पर होता था। ऊचे वर्ण की जातिया रियायती दरो पर लगान चुकाती थी, वैसी ही स्थिति कमीनान्' की

---

१ लेखा बही वि० स० १८१४/१७५७ ई० बही खाता खजाना सदर वि० स० १८२२/१७६५ ई०

२ परगना रे जमा जोड री बही सन् १६३६/१६६३ ई० (पूव)

३ हासल भाछ री बही वि० स० १७४०/१६८३ ई० न० १, परगना वणीवाल [illegible] बही वि० स० १७४५/१६८८ ई०, न० २, बीदावता रै—गावा रै हासल रै [illegible], वि० स० १७४५/१६८८ ई० न० ७, हासल बहिया बीकानेर रा० रा० अ० बी०

४ वही

५ वही खालसे रे गावा री व परगने रे जमा जोड री स० १७५०/[illegible] ई०, न० [illegible] रा० रा० अ० बी०

६ हासल बही रीणी री स० १७५२/१६९५ ई० न० १२, [illegible] री, स० १८२७/१७७० ई०, बस्ता न० १ रा० रा० अ० बी०

थी। करो का पूरा बोझ कृषक जातियो पर पडता था। शासत्रीय जाति व चारण तो करमुक्त खेती बोते थे।[1]

हासल म 'रोकड रकम' से होने वाली आय साधारणतया भोग' की आय स अधिक रही है। सम्भव है कि किसी पद्धति या क्षेत्र म भोग की आय अधिक आ गई हो, पर हासल की कुल आय म भोग' की तुलना मे रोकड रकम ही अधिक भारी पडी है। स० १७२६/१६६९ ई० स स० १७५०/१६९३ ई० के बीच हासल की कुल आय के उपलब्ध आकडो मे जहां भोग स होन वाली आय ४५ ४४ प्रतिशत रही है, वहा 'रोकड रकम' की आय ४८ प्रतिशत हुई है। बीजा रकमो' की आय ६ ५६ प्रतिशत आई है।[2] ऐस भी कुछ वर्ष हैं जब भोग की आय 'रोकड रकम की आयस अधिक बढ गई। उदाहरणाथ स० १७४५/१६८८ ई० मे जब हासल म 'रोकड रकम का प्रतिशत ३८ ४१ प्रतिशत था जबकि 'भोग' की आय का प्रतिशत ५४ ४० प्रतिशत था। पर अधिकतर भोग की आय 'रोकड रकम' की तुलना मे कम ही रहती थी। स० १७३१/१६७४ ई० म तो यह उससे आधी रह गई थी।[3]

'रोकड रकम' का प्रचलन महाराजा अनूपसिंह के काल स प्रारम्भ हुआ था क्योकि उसस पूर्व राजस्व खातो म इसका विवरण नही आया है। सभवत महा राजा अनूपसिंह ने मुगल जागीरो से गिरती हुई आय (१७वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म) तथा राज्य मे विद्रोहो के फलस्वरूप बढती हुई सैनिक मागो के कारण वित्तीय स्थिति सुधारने हेतु इनका प्रचलन किया हो। रोकड-रकम लागू होने से ही राज्य की भू-राजस्व म पूणता भी आई, उसस पूर्व पट्टायत जाति व कबीलो के मुखिया भू राजस्व का अधिक भाग रखते थे। रोकड रकमो के लागू होने के बाद उनक हिस्सो मे कमी आई। इससे जहा राज्य के खजाने की आय बढी वहा 'मध्यस्थो' की स्थिति कमजोर हुई।[4]

---

१ बही खालसा र गावा री स० १८२७/१७७० ई०, बस्ता न० १ रा० रा० अ० बी०

२ बही खालसा रे गावा री व परगने रे जमा जोड री (पूर्व) देखिये हासल की सारणी, पृ० १६७

३ वही

४ वित्तीय समस्याओ व समाधान के अध्ययन के लिए देखिए—बही खालसा रे गावा री व परगने रे जमा जोड री (पूव) वही समसत रे गावा री (पूर्व) परगनो रे जमा खरच री बही न० ३२ स० १७५० ५१/१६९३ ९४ ई०—बीकानेर बहियात—रा० रा० अ० बी० जी० एस० एस० देवडा—नेचर एण्ड इसीड स आफ रोकड रकम इन दी लेण्ड रेवेन्यू सिस्टम आफ दा बीकानेर स्टेट (१६५०/१६०० ई०)—इण्डियन हिस्ट्री काग्रस प्रोसिडिंग्स कालीकट १९७६

सारणी—ग्र

भू-राजस्व के प्रमुख स्रोतों की व कुल आय की सूची

(१६६९ ई० से १६९३ ई० तक)

कुल आय (रुपयो मे)	वर्ष ई०	रोकड रकम (रुपयो मे)	भोग (रुपयो मे)	बीजा रकमे (रुपयो मे)		कुता (जिन्स मे)
११४४८५	१६६९	६८४२८	४३७८७	६०६०	मन	२४४८१३
९९०१२	१६७०	५९२२१॥	३०१२६।	९६६४	"	१३७६३०
१६२०७८	१६७१	७०१३८॥।	८३६९९	८२०४।	"	३६८०१०
१०८०९३	१६७२	७५५८४	२००५१	९४५८	"	७१३९५
१५९४८८	१६७३	७२४८६	६८६६०	१८३४२	"	३७६५७०
९०६८३	१६७४	६१०९८	२७५५५	२०३०	"	२०७१११
१३७५०३	१६७५	६०४१८॥	५९१३०।	१७९५४।	"	४२८२०३
११८४४८	१६७६	६ ८-३॥	४४३५४।	१७२५६।	"	२२१८६५
१७४५३७	१६७७	६७६४४	१०५३३८॥	१५५४॥	"	४३७७९५
१७४०५७	१६७८	६९९३६	१०२२३१	१८९०	"	३७२८६७
१३४०७१	१६७९	६७२५६	६३७१४	३१०१	"	२५१०९२
२१४२८६	१६८०	८३१७४॥	१२४७७०॥	६३४१	"	५८६२६६
१११९७५८	१६८१	७८११९	३९५१७	२११८	"	१२२६
११६५६१	१६८२	७२३१६॥	४३६७९।	५६५।	"	१६८४०
१५४४०२	१६८३	८३८००॥	६०१९९।	११००२	"	६३५००९
१२६८०१	१६८४	७१३७३॥	५४४६८	९५९॥	"	५५४२५०
११८५३८	१६८५	६९४७३	३०६५१	११८१०	"	१८६६२६
२०९६२४	१६८६	७५७१७	११२०८७	२१८२०	"	७४२९८०
२१६५७४	१६८७	८८८२७।	११८३०१०	१३४४४	"	६३४४०१
२२२९२४	१६८८	८९८०२	१२१२८९	१२२३४	"	६८२६५६
२२८८२२	१६८९	८५६२६	९८३३१	४८८६६	"	७४६४२१
१७२३१२	१६९०	७९१०६	८६७६३	६४८३	"	७५३६८५
१६७९८०	१६९१	८२१५८	७७५०९	८२९३	"	६९५६५५
१६१४८७	१६९२	८१०४५	७७७३२	२७१०	"	५९७१८८
१५११११३	१६९३	८४७८४	६३९२७	२४०२	"	३७२८२६
३८५०६०५		१८५१८१२	१७६५६७२	२३३१२१।	मन	१०३२६९०१
प्रतिशत १००%		४८%	४५.४४%	६.५६%		

सारणी—ब

हासल आय की सूची

(१६६६ ई० १८०६ ई०)

वर्ष	हासल रकम (रुपयो मे)	प्रतिशत १०० के आधार पर	राज्य की कुल आय प्रतिशत मे
१६६६	३४ ३८६	१००.००	१८.३२
१७५७	१४,४३५	४१.६७	१३.१५
१७६५	५६ ६३६	१६४७०	४२ २६
१८०६	४३,६४७	१२६ ६२	४ ५६

धुआ भाछ

'रोकड रकम', जो अनेक सहायक करो का सामूहिक नाम था, के गठन मे 'धुआ भाछ' मुख्य थी। 'धुआ भाछ' गाव के प्रत्येक घर मे जलने वाले चूल्हे की सख्या पर लगाई जाती थी। यह एक किस्म का गृह कर था। धुआ भाछ प्रति चूल्हा अथवा प्रति गुवाडी १ रु० की दर से वसूल होती थी जो १८वीं शताब्दी के अन्त तक बढकर १ रु० २५ टका हो गयी थी। चूँकि इसकी रकम 'रोकड' मे मिल जाती थी व रोकड की रकम हासल मे, इस कारण इसकी रकम को अलग से आकना कठिन है। महाराजा अनूपसिंह के काल मे 'रोकड' की रकम पट्टा क्षेत्र स भी वसूल की गई, तब इसका 'चीरा' स्तर पर अलग स खाता बनाया गया। तब 'धुआ भाछ' को अलग से आका गया। सन् १६६३ ई० मे राज्य को इस भाछ मे ४०,३६७ रुपये की आय हुई थी। 'रोकड' की अन्य रकमो की तुलना मे धुआ भाछ की रकम, कुल रोकड की आय मे ४० से ५० प्रतिशत के बीच निर्धारित होती थी।[1] इस प्रकार 'रोकड रकम' का यह सर्वप्रमुख भाग थी।

रोकड की अन्य रकमो म 'देसप्रठ', 'ठाकुरजी', 'गुसोईंजी', 'मेला पाडखती'[2] आदि मुख्य थे। इसके अलावा 'घास-चारे' पर भी कर लगाया जाता था, जो

---

१ धुआं बही—स० १७४६/१६८६ ई०, न० ४५, बही धुआ देस पर—स० १७८६/१७२९ ई०, न० ६०, रोकड बही स० १७६६/१७३६ ई०, न० २२३—बीकानेर बहियात। बही परगना रै जमा जोड री, १६६६/१६६३ ई०, (पूर्व) टाड-२, पृ० ११५७

२ देसप्रठ—बसने का कर; 'ठाकुरजी'—क्षेत्रीय देवी देवताओ के नाम का कर, गुसोईंजी—साधु-सन्तों का कर, मेला पाडखती—त्यौहारो का कर।

कि अलग-अलग घास के नाम पर ही वसूल की जाती थी, जैसे—'कोरड', 'भुरज' 'घास-चारा', 'सहत' आदि।[1] इन करो को अधिकतर महाराजा अनूपसिंह, गजसिंह व सूरतसिंह ने लागू किया था तथा घास-चारे के करो को छोडकर, शेष को चीरा स्तर पर वसूल किया जाता था। घास-चारा केवल खालसा मे ही वसूल किया गया था। पट्टे के क्षेत्र मे वसूली के अधिकार पट्टेदार के ही हाथ मे रखे गए।[2] राज्य इन करो को प्रति-गुवाडी वसूल नही करता था, बल्कि गाव की आर्थिक दशा के आधार पर जमाबधी करके रकम को निर्धारित किया जाता था, जिसे हुवलदार व चौधरी गुवाडियो मे बराबर बाट कर वसूल करते थे।[3] साधारणतया इन सभी करो की आय 'रोकड रक़म' म 'धुआ भाछ' के समकक्ष या उससे कुछ अधिक होती थी। देसप्रठ', 'ठाकुरजी', 'गुसोईजी', 'मेला पाडखती' की कुल आय धुआ भाछ' से लगभग आधी होती थी। १८वी शताब्दी के उतरार्द्ध म 'घास, चारा, भुर. व कोरड' की आय अवश्य 'धुआं भाछ' के समकक्ष या उससे कुछ अधिक हो गई थी। 'रोकड-रक्म' म 'धुआ भाछ' निकल जाने पर बाकी कर 'रोक्ड रक़म' के नाम से जाने जाते थे। १६६३ ई० म कुल 'रोकड रकम' की आय जो ८,३६,१८१ रु० थी, धुआ भाछ की आय का भाग ४०,२६७ रुपये था व बाकी सब करो की आय ४३,८४७ रु० थी।[4]

---

१ राज्य म उत्पन्न होने वाले विभिन्न प्रकार की घास व चारे का नाम है। कोरड—सूखे मोठ व तिल की घास, भुरज भुरट की घास (कटीली), सेहत—सेवण नाम की घास—धुवे री गिणती री जमा, वि० स० १७४८/१६७१ ई०, न० ८७, बही हासल री, वि० स० १८१०/१७५३ ई०, बस्ता न० १—रा० रा० अ० बी०, टाड—पृष्ठ ११५७

२ वही

३ गो० रोणी रे 'चीरे म गो० नवलसरी री जमा इण भात बाध दीवी छै' धूवो५), देसप्रठ ३), श्रीठाकुरजी ।।), गुसोईजी ।।), मेलो पाडखती ५), दसप्रठ रोजगार।), कोरड ४।।), भुरज जखीरो ३) चारो १।)—२२।।।), कागद, मगसर सुदी १, ७ अक्टूबर, कागदो की बही, वि० स० १८२०/१७७३ ई०, न० २—रा० रा० अ० बी०
आर्थिक दशा से यहा तात्पर्य गाव की भूमि की उपज शक्ति, कृषि-क्षेत्र, चरागाह भूमि तथा कृपको की दशा से है—हुवाला सौंपा कागदो म इस प्रकार निर्देश दिया गया है—हुवाला सौंपा कागद—कागदो की बही, स० १८२७/१७७० ई०, न० ३

४ धुआ रोकड बही, वि० स० १७५०/१६६३ ई०, न० ८८ (पूव), रोणी रै चीरै रै धुवें देसप्रठ रो लेखो, वि० स० १८११/१७५४ ई०
आसामी—धुवो ८२१) ५।, देसप्रठ २४८।) २४८/१२६, ठाकुरजी ४६।) ३।, २१५६।) गुसोईजी ४५।।।) मे० पाडखती २३२।) आसामी ४८), देसप्रठ—२१५६।।) २५६/३७ २५।१/२, दुलो चौपलाणी २५।।) हथलेवो ६६।।) कनूगो ४३।) २४०।।) २३।) १२७) २८ खरच बधा रै
—बही हासल री, वि० सं० १८११/१७५४ ई०, बस्ता न० १, रा० रा० अ० बी०

हासल की आय म 'रोकड रकम' की प्रधानता के उपरान्त भी 'भोग' की आय म वृद्धि के कारण उसका प्रभाव बना रहा। सन् १६६६ ई० स १६६३ ई० के बीच के काल मे राज्य को हासल की आय म वृद्धि के पीछे एक कारण भोग की आय म वृद्धि होना था। 'भोग' की आय मे इन वर्षों क बीच ४५ ७७ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। भोग की अधिकतम आय के वर्ष सन् १६८०, १६८६, १६८७ व १६८८ ई० थे, इनम क्रमश: १८४ ६५ प्रतिशत, १५५ ६८ प्रतिशत, १७० ७० प्रतिशत व १७६० ६६ प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। भोग आय की वृद्धि के पीछे मुख्य कारण फसल के उत्पादन तथा भोग के प्रतिशत म वृद्धि होना था। उत्पादन इन वर्षों म ५२ २६ प्रतिशत बढ गया था। अच्छी वर्षा के वर्षों में उत्पादन १०० से २०० प्रतिशत के बीच भी बढा था। सन् १६६० ई० म उत्पादन ३०३ ८६ प्रतिशत होकर २०६ ८६ की वृद्धि क अधिकतम बिन्दु पर पहुच गया था।[1] फसल उत्पादन म यह वृद्धि राज्य के लिए इसलिए उत्साहवर्द्धक थी, जबकि इन वर्षा म भारत बुरी तरह स अव्यवस्था का शिकार था।[2] 'भोग' के प्रतिशत म भी वृद्धि उपज क १/५, १/६, १/७, १/८, के स्थान पर १/३, १/४ व १/५ पर बल देने स हो गई थी।[3] भोग वृद्धि के साथ साथ महाराजा अनूपसिंह द्वारा रोकड रकमो म नये करा क निर्धारण म भी हासल की आय को वृद्धि-लाभ प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त इन वर्षों म खालसा गावो की सख्या भी २०० स बढकर २५० क लगभग पहु गई थी।[4]

१८वी शताब्दी म भी हासल की आय म निरन्तर वृद्धि होती रही थी। सन् १६६६ ई० की आय के आधार पर हासल आय सन् १७६५ ई० तक ६४ ७० प्रतिशत बढ़ गइ थी। सन् १८०६ ई० म भी इसकी वृद्धि २६ ६२ प्रतिशत थी। प्राप्त आकडो म केवल सन् १७५७ ई० का वर्ष ही ४६ ३ प्रतिशत की कमी जतलाता है।[5] यह वर्ष अकाल व सैनिक गतिविधियो का वर्ष था। हासल आय म वृद्धि क मुख्य कारण भूमि क विस्तार, कृषि क्षेत्र म वृद्धि, करा की दरा म वृद्धि इत्यादि थ।[6] इसक साथ राज्य प्रशासन द्वारा छूट आदि देकर कृषि को प्रोत्साहन देना भी था। यह छूट कृषको का अत्यधिक कर दबाव स

---

१ समसत गाव रो बही (पूर्व) टाँक २, पृष्ठ ११५७ देखिए सारणी ४

२ सतीश चन्द्र—उत्तर मुगलकालीन भारत—प्रथम अध्याय, इरफान हबीबी—दा एगरेरियन सिस्टम आफ मुगल इण्डिया—नवम् अध्याय

३ हासल बही रोका री स० १७५२/१६६५ ई० (पूर्व)

४ हासल बही स० १७४५/१६६८ ई० (पूर्व)

५ देखिए सारणी—४

६ राज्य की मुगल परगनो क मिल जाने से सीमा विस्तार, विस्तृत व गहन खेती का विकास, तथा रोकड रकमा विशेषकर कोरड, भूरज व घुमा माछ म वृद्धि आदि कारण थ।

मुक्त कर फिर कृषि व्यवसाय म जुटा देती थी।[1]

१७वी शताब्दी म हासल आय राज्य की आय का सर्वप्रमुख साधन थी, लेकिन १८वो सदी म 'पेशकसी' की आय हासल से अधिक बढ गयी थी। पूरी शताब्दी म कुल आय म हासल की स्थिति मे काफी उतार-चढ़ाव आये थ। सन् १६६६ ई० म जहा इसकी स्थिति कुल आय मे १८ ३२ प्रतिशत थी वहा १७५७ ई० म १३ १५ प्रतिशत रह गयी। सन १७६५ ई० म कुल आय की ४२ २६ प्रतिशत होने पर हासल की आय सर्वप्रमुख आय के रूप म सम्मानित हो गयी। इसी प्रकार १६वी सदी के प्रारम्भ म १८०६ ई० म हासल की आय घट कर केवल ४ ५६ प्रतिशत रह गई थी जो कि इसका निम्न बिन्दु कहा जा सकता है। इस वष राज्य की आय मे पाच गुना स भी अधिक वृद्धि हुई थी। इस कमी का मुख्य कारण यह नही था, कि हासल की आय म गिरावट आयी हो, बल्कि प्रशासन ने कृषि का छोडकर अन्य उपायो स आय म वृद्धि की थी। नये करो तथा बढती हुई पुराने करो की दरो का दबाव इस पर नही डाला जाता था, ताकि काश्तकार अधिक से अधिक भूमि जोतने का लालच न छोड सके।

(१) पेशकसी-फरोही—शासक के अधीन जितने भी ठाकुर कबीलो के मुखिया, गाव के चौधरी पटावरी, 'जमीदार', तथा मुत्सद्दी व हजूरी थे, वे शासक को विभिन्न अवसरो पर नजराना' देते थे, जिस पेशकसी' कहा जाता था। 'नजर इससे भिन्न होती थी। प्रत्येक नया पट्टेदार पट्टा प्राप्त करने पर, चौधरी, पटावरी' व जमीदार अपन पद की सनद प्राप्त करने पर तथा मुत्सद्दी व हजूरी अपने पद की नियुक्ति का परवाना प्राप्त करने पर शासक को पेशकसी देते थे। इसके अलावा शासक क सिंहासनारोहण पर, जन्म-दिन, विवाह, पुत्र-जन्म, राज परिवार म विवाह उनस मिलन के समय आदि अवसरो पर भी भेंट की जाती थी नजर' कहलाती थी। इसकी आय भी पेशकसी मे गिनी जाती थी। इन सब रकमो का निर्धारण किस आधार पर होता था, इसका विवरण उपलब्ध नही है। साधारणतया यह स्थिति व सम्मान के अलग अलग मापदण्डो पर १००० स १० ००० रुपय के बीच तय होती थी।[2] वास्तव म यह कर एक

---

१ करो म छूट का ताप्पय यहा करो मे कटौती तथा अल्पकाल के लिये उनकी समाप्ति से है। कागदो की प्रत्येक बही म अलग से छूट के पत्र मिलते हैं। उदाहरणाथ न० ३, ७ ६ १० १७ देखिय। छूट के महत्त्व के लिए इसी अध्याय मे 'छूट शीपक के अन्तगत विवरण को देखिये।

२ पट्टा बही वि० स० १६८२/१६२५ ई० न० १ वि० स० १६६२/१६३५ ई० न० २, वि० स० १७०४/१६४७ ई०, न० ३, बही खालसा रे गावा री, वि० सं० १७६१/१७०४ ई० न० १०१ बही पेशकसी वि० स० १८१४/१७५७ ई०, वि० स० १८१७/१७६० ई०, वि० स० १८२०/१७६३ ई०, वि० स० १८६०/१८०३ ई०—महकमा पेशकसी, रा० रा० अ० बा०

शासक की सर्वमान्य निर्णायक शक्ति का प्रतीक था। महाराजा अनूपसिंह ने महाजन के ठाकुर को पट्टा देते समय ८०,००० रुपये की पेशकमी वसूल की थी।[१] १८वी शताब्दी मे पेशकसी एक नियमित कर की भांति हो गई थी, जो प्रत्येक राज्य-निवासी से वसूल की जाने लगी थी। साहूकारो व व्यापारियो से विभिन्न उत्सवों पर, झगडो मे दण्ड के रूप मे व अन्य किसी अपराध में 'गुनेहगारी' के रूप मे पेशकसी वसूल की जाने लगी। 'फरोही कर', जो दण्ड व 'गुनेहगारी' का मिश्रित रूप था, को भी पेशकशी म सम्मिलित कर दिया गया।[२]

१६वी व १७वी सदी मे पेशक्सी की आय राज्य की कुल आय का एक मुख्य अग थी, परन्तु १८वी शताब्दी मे यह आय का सर्वाधिक स्रोत बन गई। इस काल मे, इस आय मे, निरन्तर वृद्धि हुई थी। सन् १६६६ ई० की तुलना मे यह, शताब्दी के अन्त तक, ६५ ८७ प्रतिशत बढ़ गई। १६वी शताब्दी के प्रारभ मे १८०६ ई० मे यह अपनी वृद्धि के अधिकतम बिन्दु ६७५ ५७ प्रतिशत पर पहुच गई। इस काल मे महाराजा सूरतसिंह ने, विद्रोही ठाकुरो से पेशक्सी की रकम बढा-चढाकर सख्ती से वसूल की थी। फिर भी नियमित कर के रूप मे प्रत्येक जाति से वसूल की गई।[३] गावो मे भी पेशकसी एक करके रूप मे प्रत्येक गुवाडी से वसूल की गई।[४] यहा तक कि 'नजराना' भी एक 'भाछ' (कर) के रूप मे वसूल किया गया।[५] सरकारी व अर्द्ध-सरकारी अधिकारियो व कर्मचारियो को तो यह कर सदा म ही नियमित रूप से देना पडता था।[६] इन सब कारणो से १८५७ ई० के वर्ष को छोडकर जो आर्थिक आपत्ति का वर्ष था, इस शीर्षक के अन्तर्गत राज्य की आय सदैव बढती रही। १८०६ ई० मे यह बढ़कर २,०३ ७१७ रुपये हो गई थी, लेकिन १७६५ ई० की कुल आय की तुलना म २३ प्रतिशत गिर गई थी क्योकि इन वर्षों म, राज्य को अन्य करो से भी बहुत

१ परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई० (पूर्व)

२ बही पेशक्सी, वि० स० १८१४/१७५७ ई०, वि० स० १८१७/१७६० ई०; वि० स० १८२०/१७६३ ई०, वि० सं० १८२३/१७६६ ई०, वि० स० १८३४/१७७४ ई०, वि० स० १८४३/१७८४ ई०, वि० स० १८६०/१८०३ ई०—महकमा पेशकमी (पूर्व) गुनेहगारी के लिए— बही पेशकसी रैं लेखे री वि० स० १८३३/१७६६ ई० बीकानेर—रा० रा० अ० बी

फरोही के अन्तर्गत आने वाले सभी कर आर्थिक दण्ड के स्वरूप होते थे।

३ कीरायत लोगो की भाछ—कागदो की बही—स० १८५१/१७६४ ई०, न० ८, छूट के कागद, स० १८५६/१८०२ ई०, न० १२, पृष्ठ ४०२, स० १८६६/१८०६ ई०, न० १५, पृष्ठ ३३, स० १८६७/१८१० ई०, न० १६, पृष्ठ १५, ३२

४ कागदो की बही—न० १०, भाद्र सुद १३, १८५४/४ सितम्बर, १७७७ ई०

५ वही—स० १८७०/१८१३ ई०, पृष्ठ ८५, १७६, स० १८७२/१८१५ ई०, पृष्ठ १२, १४

६. वही—स० १८३५/१७७८ ई०, न० ५, पृष्ठ ३१, स० १८७३/१८१६, पृष्ठ ४६

आय हुई थी। यहा यह उल्लेखनीय है कि करो के रूप मे पेशकसी से होने वाली आय राज्य के खजाने मे जमा होती थी, शासक को व्यक्तिगत दी गई भेंट का कोई उल्लेख नही होता था।[१]

पेशकसी की कुल आय की सूची

वर्ष	रकम (रुपयो म)	कुल आय म प्रतिशत	आय का प्रतिशत (१०० के आधर पर)
१६६६	३०,१५८	१६ ०६	१०० ००
१७५७	३३,५५८	०७ ६४	२८ ६१
१७६५	५६,०८३	४४ ०६	१६५ ६७
१८०६	२,०३,७१७	२१ ४०	६७५ ५७

(३) जगात —वस्तुत, यह सीमा शुल्क, आयात-निर्यात कर तथा चुगी कर का सामूहिक नाम था जो कि मुख्य रूप स इन वस्तुओ पर लिया जाता था, जो बाहर स आती थी, बाहर जाती थी, राज्य क्षेत्र स गुजरती थी या यहा बिकती थी।[२] मुगल काल म 'वतन जागीर' के क्षेत्र स इस तरह की होन वाली आय को 'राहदारी' कहते थे।[३] सम्राट अकबर ने राजा रायसिह को बीकानेर क्षेत्र म होने वाली सीमा-शुल्क की आय को लेने स मना कर दिया था। केवल 'मार्गो' की चौकसी व सुरक्षा हेतु लगने वाले आवश्यक खर्चे के लिए राहदारी शुल्क, लेने की स्वीकृति दी थी।[४] 'श्रीमण्डी' म इसे वसूल किया जाता था। सन् १६६८ ई० मे इसकी कुल आय केवल १२२५ रु० थी। मुगलो के वैभव के लुप्त होने के पश्चात् इस शुल्क की आय बढने लगी। राज्य के क्षेत्र मे दिल्ली-मुलतान,

---

१ महाराजा अनूपसिह न महाजन क ठाकुर स जो ८०,००० रुपये लिये थ, उसका खजाने की रसीदो मे कोई उल्लेख नही है—परवाना वही स० १८००/१७४३ ई०

२ जगात खरच वही, वि० स० १७५४/१६६७ ई०, न० ७५, वही मण्डी जगात, वि० स० १८०६/१७५२ ई०, न० ८३, वही जगात आमदनी, वि० स० १८२२/१७६५ ई०, न० ८४—जगात बहिया, बीकानेर, रा० रा० प० बी०

३ सम्राट अकबर का रायसिह को फरमान दि० १२, रजब-उल-मुराज्जब ६६०, हि० स०, २५ अप्रैल, १५६८ ई० (पूव), डा० ए० एल० श्रीवास्तव—अकबर, भाग २ (पूव), पृष्ठ २३४, डा० जी० एन० शर्मा—राजस्थान स्टडीज (पूव), पृष्ठ १६२-६६

४ सम्राट अकबर का राव रायसिह का फरमान—१२ रजब उल मुराज्जब ६६० हि० स०, २५ अप्रैल, १५६२ ई०

मुलतान-पाली, जयपुर-सिन्ध के शहर, दिल्ली-रीणी पाली के मार्ग गुजरते थे।[1] राजस्थान के अन्य क्षेत्रो मे मराठो के आतक से, व्यापारियो के लिए इन मार्गों का महत्त्व बढ गया था। 'श्रीमण्डी' के अलावा राज्य मे नोहर, रीणी, चुरू, पूगल, महाजन अनूपगढ हनुमानगढ, लूणकरणसर की मण्डिया मुख्य थी, जो 'जगात' वसूली करती थी। इनके अलावा इन मण्डियो की चौकिया भी होती थी। राज्य मे जसरासर, पुनरासर राजलदेसर, गधीली, रावतसर, खारबारा, झझू व कालू की प्रमुख चौकिया थी। बडे गावो मे जगात' वसूली के लिए 'भोलावणियो की नियुक्ति की जाती थी।[2] मण्डियो की 'जगात' मुकाते' पर भी चढा दी जाती थी।[3] 'आसामीदार चाकर पट्टेदार' भी अपने क्षेत्र मे, शासक की स्वीकृति के पश्चात्, जगात' की वसूली करते थ।[4] साधारणतया राज्य म जगात का शुल्क, वस्तु के मूल्य का ३ प्रतिशत होता था।[5] पट्टायतो को कुल शुल्क का एक तिहाई प्रदान किया जाता था।[6] मुगल साम्राज्य के सशक्त प्रशासन-काल मे राज्य को, इसके अन्तर्गत बहुत कम आय प्राप्त होती थी।[7] सन् १६९६ ई० म जगात से राज्य को केवल १२२४।।) रु० की आय हुई थी। १८वी सदी म राजपूताने के अन्य क्षेत्रो म परस्पर सघर्ष व मराठो के निरतर आक्रमणो

---

१ बही समसता रै जमा खरच री, वि० स० १७५८/१७०१ ई०, न० ७७—बीकानेर बहियात, सावा बही रीणी वि० स० १८१४/१७५७ ई०, न० १, सावा सूरतगढ़, वि० स० १८४४/१७८७ ई०, न० १, सावा अनूपगढ, वि० स० १७५३/१६९६ ई०, न० ६, सावा नोहर, वि० स० १८५५/१७९८ ई०, न० ८—रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर—रा० रा० अ० बी०, पाउलट—गजेटियर (पूर्व), पृष्ठ ९६-९७, डा० जी० एन० शर्मा—राजस्थान स्टडीज, पृष्ठ १६२ ६६ (पूर्व), जी० एस० एल० देवडा—सोशियो-इकोनोमिक हिस्ट्री आफ राजस्थान (पूर्व), पृष्ठ ३६-४५

२ बही जगात आमदनी स० १८२२, न० ८३, सावा नोहर, रीणी, भादरा, गधीली, चूरू, जसरासर, पूगल, अनूपगढ हनुमानगढ़ की बहियां, न० १-५, रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर—रा० रा० अ० बी०, भोलावणीया का अर्थ यहा निगरानी रखने वाले अधिकारी स है।

३ कागदो की बही—मुकाता जगात—आश्विन बदि ११, वि० स० १८२७, १५ सितम्बर, १७७० ई०, न० ३, लिखत के कागद—वि० स० १८६६/१७८२ ई०, न० ६

४ महाजन का पट्टा—परवाना बही, वि० स० १७४९/१६९२ इ०, भैय्या सग्रह—महाजन रे पट्टे री विगत, वि० स० १८५१/१७९४ ई०

५ बही जगात आमदनी, वि० स० १८२२/१७६५ ई०, न० ८३; कागदों की बही, वि० स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृष्ठ २२; वि० स० १८५१/१७९४ ई०, न० ८, प्रचुण

६ महाजन का पट्टा—परवाना बही, वि० स० १७४९/१६९२ ई०, कागदो की बही, वि० स० १८५४/१७९७ ई०, न० १०, पृष्ठ ४६

७ इसकी अधिकतर आय मुगल खजाने मे जाती थी—डा० ए० एल० श्रीवास्तव—अकबर, २, पृष्ठ १६८

के कारण, बीकानेर क्षेत्र के व्यापारिक मार्ग अधिक प्रयोग मे लाये जाने लगे थे। १७५७ ई० मे यद्यपि 'जगात' की आय कुल आय की, १.८२ प्रतिशत थी; परन्तु सन् १६६१ ई० की तुलना मे इसमे ८८ ८५ प्रतिशत की वृद्धि हो गई थी। सन् १७६५ ई० मे 'जगात' की आय २४४५.६३ प्रतिशत की आश्चर्य-जनक प्रगति के रूप मे रही तथा उस वर्ष की कुल आय मे भी इसकी स्थिति २२.३० प्रतिशत की रही। सन् १८०६ ई० म विद्रोह व संघर्ष की स्थिति के बावजूद, सन् १६६६ ई० की तुलना मे यह वृद्धि २०५०.०४ प्रतिशत की हुई। परन्तु कुल आय मे इसका प्रतिशत केवल २.६६ प्रतिशत रह गया। १८वी शताब्दी मे राज्य की आय को बढाने म 'जगात' का प्रमुख योगदान था, क्योंकि उससे पूर्व, राज्य की आय मे इसका नाममात्र का ही भाग रहता था।

जगात वसूली के लिए 'श्रीमण्डी' मुख्य केन्द्र था। लेकिन 'श्रीमण्डी' से होने वाली आय म, 'जगात' के अलावा अन्य कर भी वसूल किये जाते थे; जैसे—

१. **जमीं चौथ या धरती की चौथाई**—जो कि जमीन की बिक्री के मूल्य का चौथा भाग होती थी।

२ **खोला**—गोद लने पर कर, यह व्यक्ति की समृद्धता के आधार पर आका जाता था।

३. **दलाली कर**—विभिन्न वस्तुओ से सम्बन्धित दलाली कर, जो साधा-रणतया 'मुकाते' पर चढा दिया जाता था।

४. **गईवाल**—लावारिस सम्पत्ति, जिस पर राज्य का अधिकार माना जाता था।

५. **सोना-चादी की छदामी**—जोकि स्वर्ण तथा रजत की बिक्री पर लगता था।

६. **स्पोटा**—यह दुकानदारो पर लगाया गया कर था तथा ऊटो की बिक्री आदि पर लगाया जाता था।

७. **जुए का मुकाता**—यह जुआ खेलने वालो पर लगाया जाने वाला कर था, जो मुकाते पर चढाकर मुकाती मे रकम लेकर वसूल किया जाता था।

८ **रूतरी, छदोमो तथा अफीम का सौदा**—यह अफीम तथा वर्षा की सभावना के सट्टे पर लगाया जाने वाला शुल्क था।

६. **कीरायत लोगों की भाछ**—इसे 'सूरसागर की भाछ' कहा जाता था तथा शहर की प्रत्येक जाति से इसे वसूल किया जाता था।

१० **हुवलदार-दरोगा का लाजना**—'श्रीमण्डी' के प्रमुख अधिकारी तथा दरोगा के नाम से यह कर वसूल होता था।

११ **तालाब घड़सीसर री भाछ रा**—घडसीसर तालाब म पानी पीने पर यह कर लगाया जाता था।

१२ मेग की खाण,रा—यह मुलतानी मिट्टी के उत्पादन का शुल्क था।

१ चुगी बिछाइती माल री—खुल मे वस्तुओ को बेचने वाला पर यह कर था।

१४ सेहर कोट की जगात—किले की मरम्मत आदि के लिए यह कर लिया जाता था।[1]

श्रीमण्डी के अलावा अन्य मण्डियो की आय का ब्यौरा भी इसी प्रकार था, उनमे जगात के साथ साथ कसूर फरोही व गुनेहगारी की रकम भी जमा कर ली जाती थी।[2]

(४) सैन्य कर—राज्य मे सेना के खर्च के नाम पर जो कर वसूल किया जाता था वह खड खरच या फौज खरच के नाम से विख्यात था। शासक की अपनी कोई निजी विशाल सेना नही थी जिसस कि उसे सेना के एक वड खर्चे का भार वहन करना पड। राज्य की सनिक आवश्यकताओ की पूर्ति ठाकुरो की जमीयत से पूरी होती थी। लडाई के समय खालसा व पट्टा क्षत्र से खेड खरच भाछ वसूल कर ली जाती थी। महाराजा रायसिंह ने इसे एक स्थायी कर का स्वरूप प्रदान कर दिया था।[1] इससे होने वाली आय अधिक नही थी। १७५७ ई० मे यह कुल आय की ० १३ प्रतिशत थी तथा सन १७६५ ई० मे इसकी स्थिति ० २६ प्रतिशत की थी। सन १८०१ ई० मे यह फौज खरच के नाम से वसूल की गयी थी जो कि कुल आय की १ १६ प्रतिशत थी। वसूल होने वाली आय १७६५ ई० मे ३६६ रुपये की तुलना मे ११ ३८७ रु० थी। १८वी शताब्दी मे विभिन्न सनिक आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु खड खरच की भाछ देश मे घाती

---

१ मण्डी वहिया वि० स० १७८३/१७२६ ई० वि० स० १७६६/१७४२ ई० वि० स० १८०७/१७५० ई० न० ७८ ७६ ८० जगात री साहवा बही वि० स० १८५७/१८०० न० २४६—बीकानेर बहियात कागदो की बही—न० २ चत्र बदि १४ १८२० ३१ मार्च १७६४ ई० न० १२ बशाख बदि १२ भाद्र बदि ४ चत्र बदि ११ १८५६ २६ अप्रल १६ अगस्त १८०२ ई० १६ माच १८०३ ई० सोहनलाल—तवारिख राजश्री बीकानेर पृष्ठ २४१ ४३

२ सावा बही अनपगढ वि० स० १७५३/१६६६ ई० न० १ सावा बही नौहर वि० स० १८२२/१७६५ ई० न० १ सावा बही चरू रे थाण री वि० स १८२६/१७७२ ई० न०१ सावा बही रीणी वि० स० १८५५/१७६८ ई० न० ८—रामपरिया रिकार्ड्स भय्या सग्रह—बही री नोहर र थाण री जमा खरच वि० स० १८७३/१८१६ ई० बही अनापगढ र जमा खरच री वि० स० १८७७/१८२० ई०—बस्ता न० ४ बीकानेर

३ कामगारो व वकाला के रोजगार की बही वि० स० १७५३/१६६६ ई० न० २०६ बही हजर रे खड री वि० स० १८०३/१७४६ ई० न० २०८—बीकानेर बहियात कागदो की बही—न० २ अश्विन बदी ७ १८२० २६ सितम्बर १७६३ ई० न० १४ स० १८६३/१८०६ ई० पृष्ठ १३३

नाम का, कर अलग से भी वसूल किया गया था। सन् १७७४ ई० में राज्य को इससे २६,८४४ रु० की आय हुई थी।[1] सन् १७८१ ई० में यह राजपूतों की अलग-अलग शाखों से वसूल की गई थी।[2] सन् १८०६ ई० में मारवाड़ आक्रमण के कारण फौज खर्च प्रति-गुवाड़ी २० रु० की दर से वसूल किया गया था।[3] सन् १८१८ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा, महाराजा सूरतसिंह को सैन्य सहायता देने के परिणामस्वरूप, उस सेना का खर्च वहन करने हेतु प्रति-गुवाड़ी १५ रु० की दर से, एक लाख रुपये प्रजा से वसूल किये गये।[4]

घोड़ा व रुखवाली भाछ—महाराजा सूरतसिंह के समय कई नये सैन्य करो की शुरुआत हुई थी। उनके शासनकाल में जब राज्य में राठो, सिवखो, जोहियों तथा ठाकुरो के विद्रोह व लूट से उत्पात मच गया था, तब उन्होंने देश में उन्हें रोकने के लिए बढ़े नये सैनिक दायित्वो की पूर्ति हेतु 'रुखवाली भाछ' (रक्षात्मक कर) लागू किया।[5] सन् १७९५ ई० के आस-पास इस कर को सर्वप्रथम वसूल किया गया। यह कर न केवल व्यक्तियों पर बल्कि पशुओं पर भी लगाया गया था।[6] पहले इसकी दर प्रति-गुवाड़ी २ रु० थी, जो सन् १८०० ई० के बाद प्रति-गुवाड़ी १० रु० हो गई।[7] इस खालसा व पट्टे के गावो में समान रूप से वसूल किया गया था। पट्टायतो को इस कर व इनकी दर के प्रति भारी असतोष था, अतः इस कर की वसूली में कठिनाईयां आती रहती थी।[8] सन् १७९५ ई० में इसकी कुल रकम १६,२३५ रु० की थी, जो कुल आय का १४ ३५ प्रतिशत थी। सन् १८०६ ई० में यह घटकर १७ ७०३ रु० हो गयी, जोकि कुल आय की १ ८६ प्रतिशत रह गयी।

महाराजा सूरतसिंह ने ठाकुरो के विद्रोही रुख को देखते हुए, उनकी सैन्य शक्ति पर निर्भर रहना छोडकर, उनकी 'जमीयत' की चाकरी बन्द कर दी थी, तथा उसके स्थान पर शासक की निजी सेना तैयार की थी। उसके खर्च को

---

१ हवूब बही, वि० स० १८३१/१७७४ ई०, बस्ता न० १, बीकानेर
२ हवूब बही, वि० स० १८३१/१७७४ ई०, बस्ता न० १, बीकानेर
३ भैंय्या सग्रह जेठ सुदी २, वि० स० १८६६, १६ मई, १८०६ ई०, बस्ता न० २
४ भैंय्या सग्रह—बही फौज रे भाछ री, वि० स० १८७५/१८१८ ई०, छापरा कागद पोष बदी १२, १८७५, २४ दिसम्बर, १८१८ ई०
५ टाड-२ पृष्ठ ११५६; सोहनलाल—तवारीख (पूर्व), पृष्ठ ३०२
६ गुवाड़ी १ रु० १, ऊठ १ रु० २, बलद १ रु० ॥,२५, भैंस १ रु० १, गाय १ रु० ॥,२५, कैण २० रु० ॥ २५—हवूब बही, वि० स० १८५४/१७९७ ई०, कागदो की बही, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ २६
७ कागदो री बही, वि० स० १८६३/१८०६ ई०, न० १४, पृष्ठ १६६, वि० स० १८७१/१८१४ ई०, न० २०, पृष्ठ ३२२
८ भैंय्या सग्रह—आश्विन सुदी ८, १८६४, ९ अक्टूबर, १८०७ ई०

वहन करने के लिए ठाकुरो से सवारो के स्थान पर नगदी रकम, 'घोडा-रेख' के नाम से, वसूल करनी प्रारम्भ की ।[१] इस 'रेख' का प्रारम्भ भी सन् १७६४ ई० के लगभग हुआ था ।[२] प्रारम्भ में प्रति घोडा ५० रुपये के लगभग लिये गये,[३] जो १८०० ई० के बाद बढकर प्रति घोडा रुपये १००) निर्धारित किए गये ।[४] यह कर केवल पट्टायतो से वसूल किया जाता था ।[५] बाद में यह कर रुखवाली की भाछ के साथ मिल जाने पर केवल 'रेख' कहलाया । बाद में १९वी शताब्दी के मध्य में 'दरबार की रकम' कहलाया, जो पट्टे की कुल आय का तिहाई हिस्सा होती थी ।[६] इस कर व कर की दर को लेकर शासक व ठाकुरो के बीच सम्बन्धो में सदैव तनाव बना रहता था ।[७] सन् १८०९ ई० में इससे होने वाली आय ४६,१४३ रु० थी, जोकि कुल आय का ४ ८५ प्रतिशत थी ।

प्रशासन ने उपरोक्त करो के अलावा कभी-कभी 'थाणो की भाछ' तथा 'सिपाही-भाछ', जोकि शासक के निजी सैनिको से ली जाती थी, को भी वसूल किया था ।[८]

(५) **कसूर या जुर्माना**—राज्य अधिकारियो द्वारा कर्त्तव्य की अवहेलना करने पर, चोरी के माल पर, जाली सिक्के बनाने पर, कर न देने पर, पट्टायतो द्वारा उत्तरदायित्वो को भली भांति न निभाने पर, राजाज्ञा की अवहेलना करने पर तथा विभिन्न सामाजिक व आर्थिक अपराधो के दण्ड व 'गुनहगारी' के रूप में, जो जुर्माना लगाया जाता था, उसे 'कसूर' कहा जाता था ।[१] यह कसूर' दीवानी व फौजदारी दोनो प्रकार का होता था । इस कर की प्रकृति को देखते हुए इसकी आय घटती-बढती रहती थी । सन १६६८ ई० मे जहा यह १६५१ रु० थी, वहा सन् १७५७ ई० मे ४१६ रु० ही थी । सन् १७६५ ई० में यह कुल आय की १ ६९ प्रतिशत थी, और सन् १८०९ ई० में ५,३६५ रु० की आय होने पर भी ० ५६ प्रतिशत मात्र ही थी । सामाजिक क्षेत्र में व्यभिचार, रीति-रिवाजो

१ टाड (पूर्व), पृष्ठ ११५६, सोहनलाल, (पूर्व) पृष्ठ ३०२
२ कागदो की बही, वि० स० १८५१/१७९४ ई०, न० ८, प्रचुण कागद
३ कागदो की बही वि० स० १८५४/१७९७ ई०, न० १०, छूट कागद
४ कागदो की बही, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११ छूट कागद, भैय्या संग्रह—पत्र पौष बदी ११, १८६४, २५ दिसम्बर १८०७ ई०, कागदो की बही, स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृष्ठ १०१-१०८
५ राज्य की तरफ से स्पष्ट निर्देश के लिए देखिये—कागदो की बही, सं० १८७३/१८१६ ई० न० २२, पृष्ठ १०१
६ देशदर्पण, पृष्ठ ६४ (पूर्व)
७ दयालदास ख्यात, (अप्र०) २, पृष्ठ ३१४-१८
भैय्या संग्रह—खजाना बही, वि० स० १८६६/१८०९ ई०
बही पेशकसी रै लेखे री, वि० स० १८३३/१७७६ ई०

के उल्लघन पर तथा नय सम्बन्धो व उपलक्ष म नगाया गया 'रीठ' का कर भी इसी के अन्तगत वमूल किया जाता था। मुकदम स सम्बधित पक्ष विपक्ष के लोगो और शासक, दीवान तथा पचो के निर्णयो की अवहेलना करने पर लगाया गया दण्ड भी इसी म सम्मिलित किया जाता था। न्यायिक प्रक्रिया म लिया गया शुल्क अवश्य 'अदालत रे साह' म जमा होता था।[1]

(६) विक्री-कर—राज्य म विक्री कर को 'मापा' कहते थे। जानवरो के क्रय विक्रय पर खूटा फिराई तथा रपोटा कर लिया जाता था जोकि १ रु० प्रति पशु की दर से वसूल होता था। लेकिन यह कर मण्डियो की जगात म सम्मिलित हो जाता था।[2] विक्री कर म अनाज की विक्री का कर मुख्य था, जोकि धान की चौथाई या 'आधीय' के नाम से विख्यात था। यह कर पहले साहूकारो स वसूल किया जाता था, लेकिन बाद म गाव के प्रत्येक आसामी से इस वसूल किया जाने लगा। राज्य ने इसस होन वाली आय पर भी पूरा ध्यान दिया था।[3] सन् १७६० ई० म जसरासर म ही इसस होन वाली आय २८,६६६ रु० थी। एक चीरे में इतनी अधिक रकम का मुख्य कारण यह था कि मारवाड के साहूकार व आसामी अपने धान को दक्षिणियो (मराठा) की लूट स बचाने क लिये बीकानेर के गावों म छपा रहे थे व राज्य उनस चौथाई की रकम वसूल कर रहा था।[4] सन् १८०६ ई० म इस कर स होने वाली आय २,२५,२८७ रु० थी जोकि कुल आय की २३ ६८ प्रतिशत थी। इस प्रकार यह कर राज्य क आय स्रोता का महत्त्वपूर्ण भाग बन गया था।

(७) टकसाल—महाराजा गजसिंह क समय स राज्य म अपने सिक्को का प्रचलन शुरू हुआ था। इन सिक्को के पीछे एक तरफ मुगल सम्राट मोहम्मद शाह आलम का नाम खुदा होता था, व दूसरी तरफ बीकानेर के शासक का। ये सिक्के गजसाही व सूरतसाही कहलाते थ।[5] चादी का रुपया तीन प्रकार का [illegible]

---

१ कागदा की बही, वि० स० १८११/१७५४ ई० न० १, वि० स० १८३१/[illegible], न० ४ वि० स० १८६१/१८०४ ई०, न० १३—रीठ के कागद, [illegible]

२ मण्डी रे जमा-खरच री बही, वि० स० १७०१/१६४४ ई० न० ५८, [illegible] वि० स० १७५४/१६९७ ई०, न० २२६ बही जगात री बही, वि० स० [illegible] ई० न० २४८

३ धान री चौथाई री बहियां—वि० स० १७६३/१७४६ वि० स० [illegible], वि० स० १८२०/१७६३ ई०, वि० स० १८४७/१७९० ई०, [illegible] ई०—महकमा धान की चौथाई, बीकानेर

४ धान री चौथाई बही सवत १८३६/१७८२ ई० बीकानेर

५ कागदा की बही, बसाख सुदी ५ वि० स० १८२० [illegible] नाल तवारीख (पूर्व)—पृष्ठ २६७ ६८ डा० जी० [illegible] १६७-७२, बीकानेर एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट—१८६१ [illegible]

शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे यह भाछ राज्य की समस्त जातियो (राजपूत, ब्राह्मण व साहूकारो को छोडकर) से वसूल की गयी। बीकानेर नगर के लिए इसे 'सूरसागर की भाछ' भी कहा जाता था। माली व सिक्के अलग से 'कोहूर की भाछ' भी देते थे।[1] सन् १७६५ ई० में कुल आय मे इस कर की आय १४० प्रतिशत थी। सन् १८०६ ई० मे यह १४,१२८ रु० थी, जोकि कुल आय का १.४६ प्रतिशत थी। इसके अलावा 'ब्राह्मणों की भाछ' को ब्राह्मणों से वसूल किया गया, जिसे महाराजा सूरतसिंह ने प्रथमबार लागू किया था। राजपूतों से 'खेड खरच की भाछ' वसूल की जाती थी।[2]

व्यावसायिक जातियो मे अलग से 'साहूकारो की भाछ' भी थी, जो व्यापारियो, विक्रेताओ तथा सूदखोरो से वसूल की जाती थी। साहूकारो की भाछ भी 'सात-हजारी', 'साठ हजारी', दो लाख की' के नाम से जानी जाती थी। साहूकारो की गुल्लक पर भी यह भाछ लगायी जाती थी। सम्भवत यह प्रत्येक साहूकार की आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर निर्धारित की जाती थी।[3] महाराजा गजसिंह व सूरतसिंह के समय मे, साहूकार इस भाछ के दबाव स देशनोक चले जाते थे[4] या राज्य छोड़कर बाहर भी निकल जाते थे, तब उन्हे पुन राज्य मे आने को प्रोत्साहित करने के लिए करो मे छूट प्रदान की जाती थी।[5] सन् १७५७ मे इसकी आय १३,५७७ रु० थी, जोकि कुल आय की १२ ३८ प्रतिशत

---

१. बही घडसीसर तालाब री, स० १७४५/१६८८ ई०, न० ५५, बही अनोपसागर—स० १८११/१७५४ ई०, न० २३३, कागदो की बही—माघ वदि १, स० १८५१, ६ जनवरी, १७५४ ई०, न० ८, इस बही के छूट के कागद भी देखिए, न० १२, ज्येष्ठ बदि ८, १८५६, २४ मई १८०२ ई०, स० १८६६/१८०६ ई०, न० १५, पृ० ४०२, १४, ३२, ३३, ४२, पाणी पीछ री जमा खरच बही, स० १८७७/१८२० ई०, न० २५०-बीकानेर बहियात। यहा तक कि ब्राह्मणो, बैरागियों व स्वामियो से भी इस कर को वसूल किया गया जबकि ये लोग इस कर से मुक्त रहते थे—कागदो की बही, स० १८६६/१८०६ ई०, न० १५, पृ० ४१, ४२

२ बही हूबूब री, स० १८३१, १८५४/१७७४, १७९७ ई०, हूबूब बस्ता—बीकानर

३ मण्डी रे साहूकारा री बही, स० १७२६/१६६९ ई०, न० २३२, साहूकारा र गुल्लक री बही, स० १८६१/१८०४ ई०, न० १९०; साहूकारा रे भाछ री बही, स० १८६५/१८०८ ई०, न० १५६-बीकानेर बहियात; कागदों की बही, स० १८६६/१८०९ ई०, न० १५, पृ० १९

४ देशनोक बीकानेर शहर से ३० किलोमीटर दक्षिण म बीकानेर-जोधपुर मार्ग पर स्थित है, यहा राज्य की कुलदेवी करणीजी का मन्दिर है। सत्ता के प्रकोप से बचने के लिये यहा शरण पाते थे।

५ कागदा की बही, न० ७, पोष बदि ७, १८४०, १६ दिसम्बर, १७८३ ई०, स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० १२०, जी० एस० एल० देवडा—ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान, पृ० ७८

थी व सन् १८०९ ई० मे २१,४७८ रु० थी, जो कुल आय की २·२६ प्रतिशत थो।

(११) अधिकारियो व कर्मचारियो की भाछ—राज्य का प्रत्येक अधिकारी व कर्मचारी अपनी नियुक्ति के अवसर पर, शासक को पेशक्सी व नजर भेंट करता था। महाराजा सूरतसिह ने इसे एक नियमित कर के रूप मे परिवर्तित कर दिया। मुत्सद्दियो से 'कामदारी भाछ', 'हजूरियो' से हजूरियो की भाछ' चौधरियो स 'चौधरवाव' तथा पटवारियो से पटावरवाव' वसूल की। साधारणतया यह प्रति व्यक्ति १५ रु० की दर से वसूल की गयी।[1] कामदारो की भाछ व हजूरियो की भाछ, राज्य की कुल आय का ३ प्रतिशत तथा चौधरी व पटावरीवाब मिलकर कुल आय का ० ५८ प्रतिशत भाग पूरा करती थी।[2] महाराजा सूरतसिह ने हुवलदारो स 'हुवलदार भाछ', नियमित सेना के 'सिरबन्धीयो' से 'सीरवधीयो की भाछ' तथा 'परदेसी' सिपाहियो स 'परदेसियो की भाछ' भो वसूल की थी, परन्तु ये कर नियमित नही थे।[3]

(१२) चराई—'पडत' की जमीन व 'जोड' मे पशुओ के चरने पर 'पान चराई' कर वसूल किया जाता था। यह प्रति ऊट ५ रु०, बैल १ रु०, गाय १ रु०, बकरी।) आना की दर से वसूल की जाती थी। पट्टा क्षेत्र मे चराई कर को 'मूगा' कहा जाता था। कर प्रति जानवर १ रु० की दर से उन पशुओ पर लिया जाता था, जो अन्य क्षेत्र से पट्टा के क्षेत्र मे चरने के लिए जाते थे। 'सींगोटी' एक अन्य चराई कर था जो भेडो पर लागू होता था, जिसकी दर १४ भेडो पर १ रु० थी।[4] इसस होने वाली आय सन् १७९५ ई० म कुल आय की ० ४३ प्रतिशत थी तथा सन् १८०६ ई० म १·०० प्रतिशत थी।

(१३) नोता—यह शादी-ब्याह के आमन्त्रण पर कर था। राज-परिवार के कुवर और कुवराणियो की शादी पर पट्टे व खालसा के गावो स यह वसूल किया जाता था। प्रति-गुवाडी इसकी दर २ रु० थी। इस कर को पट्टायत व चौधरी भी अपने-अपने गाव मे वसूल करते थे। यह कोई नियमित कर नही था।[5]

---

१ कामदारो व वकीलो के रोजगार री बही (पूर्व), बही पेशक्सी वि० स० १८१४/१७५७ ई०, वि० स० १८६०/१८०३ ई०, महकमा पेशकसी, कागदो की बही, वि० स० १८६६/१८०९, न० १५, पृ० २३०, २३५, २४३, भैय्या सग्रह-पत्र, आश्विन बदि १४, १८७१, १२ अक्टूबर, १८१४ ई०, ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान, पृ० ३९

२. सन् १८०९ ई० की कुल आय के आधार पर

३ बही पेशकसी री, स० १८६०/१८०३ ई० (पूव)

४ कागदा की बही, कार्तिक बदि ३, वि० स० १८५४, ८ अक्टूबर, १७९७ ई०, न० १०, वि० स० १८६३/१८०६ ई०, न० १४, पृ० ७, २७४, २९४

५. बही सरदार कवर रै ब्याह री, वि० स० १७७६/१७१९ ई०, न० १४४—बीकानेर बहियात, कागदा की बही, वि० स० १८२७/१७७७ ई०, न ३, पृ० ३९ ४०, भैय्या सग्रह—नोतापत्र—वि० स० १८६३/१८०६, बस्ता न० २

(१४) बीदावतों की भाछ—महाराजा गजसिंह ने बीदावत ठाकुरों के विद्रोही आचरण को देखते हुए सन् १७६६ ई० में, बीदावतो पर प्रतिवर्ष ६,००० रु० की बीदावतो की भाछ' लगा दी।[1] हालांकि इस रकम मे घटोतरी-बढोतरी होती रहती थी, परन्तु हर शासक ने इसे सख्ती से वसूल किया था। महाराजा सूरतसिंह के समय इस रकम की राशि ५०,६९३ रु० थी, जोकि कुल आय का ५ ३२ प्रतिशत थी। बीदावतो को इस भाछ के कारण 'घोड़ा-रेख' व 'रुखवाली की भाछ' मे सुविधाए दी गयी थी रुखवाली भाछ प्रति-गुवाडे ८ रु० की दर से और घोडा रेख प्रति घोडा ८० रु० की दर से वसूल की गई थी।[2]

इसके अलावा अन्य कई छोटे-बडे कर थे, जिन्हे वसूल करने मे राज्य उतनी ही तत्परता दिखाता था। चरवाहों[3] पर लगाया गया कर, 'बहैलियो की भाछ' 'वनो का कर', 'जोड की भाछ',[5] देवस्थान व पुनर्थ' के लिए 'ठाकुरजी व गुसांईजी की भाछ', घोडो के लिए 'घी की भाछ', 'घास कटाई की भाछ, अधिकारियो का परिश्रम—'हाकमो का रोजगार', विभिन्न मेलो पर लगी जगात' इत्यादि अन्य प्रमुख कर थे। शासक को नजर व उपहार भेंट की जाती थी, जो पेशकसी मे शामिल हो गई थी।[6]

छूट—अब तक उल्लिखित सभी करो के विवरण के साथ राज्य की वित्तीय व्यवस्था मे एक स्थायी अग 'छूट' का उल्लेख करना भी आवश्यक है अन्यथा करो के दबाव को समझना कठिन होगा। इन वर्णित करों में करदाताओं को सहायता व निस्तार देना ही यहा छूट' का अर्थ था। राजकीय वहियो मे इससे सम्बन्धित पत्र—'छूट के कागद' कहलाते थे। ये पत्र प्रशासन की ओर से सम्बन्धित व्यक्तियों को व सरकारी अधिकारियों को भेजे जाते थे। उन पर सरकारी मुहर अकित होती थी, जिन्हें वे वसूली के अवसर पर

---

१ कागदो की वही, वि० स० १८६६/१८०९ ई०, न० १५, पृ० ३७९, बीदावतो का बधा—भाछ बमता; दयाल दास ख्यात (अप्र०) २, पृष्ठ ३१०; बीदावता की ख्यात, भाग १, पृष्ठ २२७

२ वही खाता खजाना सदर, १७९५ ई०, कागदो की वही, वि० स० १८६६/१८०९ ई०, न० १५, पृ० ३७९

३ पशु चराने वालो पर

४ गाडीवानो पर कर

५ घनी घास के जगल का चराई कर

६ हवूब वहिया, वि० स० १८०१/१७४४ ई० से वि० स० १८२०/१७६३ ई० तक, बस्ता न० १

दिखाते थे।[1]

राज्य का प्रशासन निम्न परिस्थितियो मे विभिन्न करो मे छूट की सुविधाएं प्रदान करता था—(१) 'अकाल', (२) 'सूखा', (३) महामारी, (४) गाव का लूटमार या शिकार होने पर, (५) लडाई का क्षेत्र होने पर, (६) गाव के 'नीवला'[2] होने पर, (७) गाँव 'सूना'[3] होने पर, (८) 'बेतलब'[4] गाव होने पर, (९) नये गाव बसाने पर, (१०) गाव मे नये व्यक्तियो को बसाने पर, (११) पुरानी गुवाडियो को वापस बसाने पर, (१२) व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहन देने के लिये, (१३) व्यावसायिक जातियो को गाव मे बसाने के लिये, (१४) 'पेशकसी' वसूली के समय, (१५) गुवाडी की 'नीवली' स्थिति होने पर आदि।

प्रशासन इन परिस्थितियो से जूझने के लिए जो उपाय जुटाता था, उन्हें अध्ययन की दृष्टि से तीन स्तरो मे विभक्त कर सकते हैं—

(१) गाव मे सामूहिक स्तर पर।
(२) व्यक्ति व उसके परिवार के स्तर पर।
(३) चीरा स्तर पर।

प्रथम प्रकार की छूट का लाभ, एक गाव के सभी निवासियो को, समान रूप से प्राप्त होता था। इस प्रकार की छूट मे 'जमाबन्धी' का बडा महत्त्व था, जिसके अनुसार गाव मे लगाये गये विभिन्न करो मे निश्चित समय के लिये कमी करके राहत दी जाती थी।[5] सम्बन्धित अधिकारियो को कडे निर्देश दिये जाते थे कि वे अधिक वसूली न करें। इस सम्बन्ध मे सावधानी बरतने हेतु, उनका रोजगार व उनके जानवरो का खर्च आदि नियत कर दिया जाता था। 'जमाबधी' के अलावा चीरा स्तर पर वसूल किये गये करो मे भी, इसी प्रकार कमी कर दी जाती थी। करो मे छूट की मात्रा तीन प्रकार की थी—(१)चौथाई, (२) आधी, (३) पूर्ण समाप्ति। साधारणतया पिछली 'बकाया'

---

१. नोट—इस अध्याय मे छूट से सम्बन्धित सम्पूर्ण वर्णन कागदो की बहियो के छूट के पन्नो पर आधारित है। ये पन्ने प्रत्येक बही मे अलग से 'छूट' के नाम से लिखे गये हैं। उपर्युक्त वर्णन के लिये वि० स० १८११/१७५४ ई० से वि० स० १८७२/१८१५ ई० तक की बहियो का जो सख्या मे २१ हैं, का प्रयोग किया गया है।
रामपुरिया रिकार्डस, बीकानेर, रा० रा० अ० बी०; देखिये—जी० एस० एल० देवडा, बीकानेर की मध्यकालीन अर्थव्यवस्था में महायता व निस्तार का प्रतिरूप—राज० हिस्ट्री काग्रेस, पाली अधिवेशन, १९७५

२. आर्थिक दृष्टि से कमजोर
३ खाली होना, उजाड होना
४ कर-रहित क्षेत्र
५ उदाहरणार्थ—कागदा की बही, न० २, मार्गशीर्ष सुदि० १०, १८२०, १४ दिसम्बर, १७६३ ई०

को समाप्त करने के साथ-साथ आने वाले एक से तीन वर्षों के बीच कटौती का प्रावधान रखा जाता था। गाव से पेशकसी की वसूली के समय सभी कर स्थगित कर दिये जाते थे। प्राकृतिक विपदाओ व 'पेशकसी' के समय ऋण-दाताओ का भी यह आदेश भेज दिया जाता था कि वे अपने ऋणो की वसूली निर्धारित वर्ष म स्थगित कर दें। आवश्यकता पडने पर राज्य गाव मे सैनिको की नियुक्ति भी करता था, ताकि गाव सूने न हो जायें।

नये गाव के बसने पर कुछ वर्षों तक करो मे पूरी छूट दी जाती थी, तदुपरात करो मे क्रमश बढोत्तरी करके कर वसूल किया जाता था। गाव के चौधरी को बस्तिया बसाने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु उसे हमेशा के लिए 'नॉनकर' भूमि प्रदान की जाती थी, तथा उपज का पाच प्रतिशत दिया जाता था।

दूसरे प्रकार की छूट व्यक्ति व उसके परिवार अर्थात् 'गुवाडी' से सम्बन्धित होती थी। राज्य मे निरन्तर अकाल व सूखे का भय बना रहने के कारण, गुवाडिया 'मऊ'[1] चली जाती थी। इनमे से कुछ लौटकर भी नही आते थे। राज्य, उन्हृ बसाने के लिए, उदार नीतिया अपनाता था। तीस से चालीस वर्ष बाद भी अपने गाव म वापस आकर बसने वाला व्यक्ति, विभिन्न करो मे, आने वाले दो-तीन वर्षों तक कटौती का लाभ उठाता था।[2] राज्य ने कही-कही तो ऐसे किसी व्यक्ति को पूरे जीवन-भर की कटौतिया भी प्रदान की। समकालीन स्रोतो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, राज्य की ओर से तीसरी पीढी तक कटौतियो का लाभ भी दिया गया। 'बेगार' को भी समाप्त कर दिया जाता था। व्यावसायिक जातिया— सुथार, तेली आदि को, जिनकी आवश्यकता ग्रामीण जीवन मे अनुभव की जाती थी, उन्हृ गावो मे बसाने के लिये राज्य अनेक करो मे छूट प्रदान करता था।

इसी प्रकार विपत्तिकाल मे साहूकारो के माल पर 'जगात' म भी छूट दी जाती थी। जब साहूकार, 'साहूकार भाछ' को देने मे असमर्थ पाकर 'देशनोक' चले जाते थे, तो राज्य उनके करो मे कमी करके उन्हे वापिस बुलाता था। व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहन देने के लिये शासक हुण्डियो के भुगतान की सुविधा व्यापारियो को देता था।

तीसरे प्रकार की छूट चौरा स्तर की थी। 'धुआ भाछ', 'रुखवाली भाछ,' 'चौधर-पटावरी वाब' 'नोता' आदि करो म एक स तीन वर्ष के बीच ४ प्रतिशत स ४२ प्रतिशत तक छूट दी जाती थी। यह छूट अपने-आप मे महत्वपूर्ण थी,

१ परदेश

२ गुवाडियों के ६५ व १०० वर्ष बाद वापिस आकर बसने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। कागदा की बही, स० १८५७/१८००, न० ११, पृ० ११, २०१

और निश्चित रूप से निवासियो को प्रोत्साहित करती होगी।

इस क्षेत्र की प्राकृतिक विभीषिका तथा करो के प्रकोप से बचने के लिये प्रशासन द्वारा समय-समय दी गई वर्णित छूट इस तथ्य की ओर निश्चित रुप से इंगित करती है कि थार मरुस्थल के उजाड क्षेत्रो मे निवासियो को बसाने के लिये राज्य सदैव सक्रिय रहा था। प्रशासन इस डर से सदैव शकित रहता था कि गुवाडिया कही अन्यत्र जाकर न बस जायें। यही कारण है कि राज्य की कोई भी वही बिना छूट के पत्रो के पूर्ण नही है और कोई गाव इस सुविधा से वचित नही है। इन पत्रो के माध्यम से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि सभी करो की पूर्ण वसूली शायद ही कभी होती थी। यहा जिस स्तर तक करो मे सुविधायें प्रदान की गई हैं, उसका विवरण भी अन्यत्र नही मिलता है। यहा यह 'छूट' अपने-आप म एक आकर्षण है। यह केवल विकास की अवस्थाओ के लिये निर्धारित नही थी, वल्कि सामान्य जीवन तथा बसने की हर अवस्था मे प्राप्त थी। सभवतः उत्तर-मुगल काल में यही कारण, जमीदारी क्षेत्र के कृपको को जागीरी क्षेत्रो के कृपको से कुछ उत्तम स्थिति मे ला देता होगा। इस 'छूट' का पूर्ण व व्यापक प्रभाव दो कारणो से सम्भव नही हो पाता था। प्रथम, विपत्ति का प्रभाव पडने के पश्चात प्रशासन द्वारा छूट की घोषणा तथा द्वितीय, सैन्य व प्रशासनिक मागो के फलस्वरूप नये कर लगाकर पुराने करो की छूट के महत्त्व को समाप्त कर देना, जैसा कि १८वी शताब्दी के अन्तिम चरणो मे हुआ था। पर, इसके पश्चात भी राज्य द्वारा इस दिशा मे किये गये प्रयत्नो के प्रभाव को नकारा नही जा सकता।

भाग २

व्यय

राज्य मे व्यय से सम्बन्धित सर्वप्रथम वर्णन महाराजा अनूपसिह के काल की, सन् १६७० से १६९२ ई० की 'समसत गावा री वही' से प्राप्त होता है; परन्तु उससे राज्य के कुल व्यय का अनुमान लगाना कठिन है। सन् १६९८-१६९९ ई० की 'परगना की जमा-खरच बही', प्रथम बही है जो कुल व्यय के साथ साथ व्यय के विभिन्न सूत्रों की जानकारी भी देती है। सन् १६९९ ई० मे राज्य के कुल व्यय की राशि २,१५,०२५ रु० थी। इसके उपरान्त १८वी शताब्दी म खर्च की राशि मे भारी कमी हुई। सन् १७५७ ई० मे राज्य की व्यय राशि घटकर १,२०,०८० रु० रह गयी। कमी का एक मुख्य कारण मुगल जागीरी आय की समाप्ति से प्रशासन द्वारा अपने खर्चों मे कटौतिया करना था। इस काल मे

राज्य के बाह्य सैनिक दायित्व भी कम हो गये थे तथा मुगल दरबार में खर्च की जाने वाली राशि भी सदैव के लिए समाप्त हो गई थी। सन् १७५७ ई० के पश्चात् व्यय में वृद्धि के लक्षण फिर प्रकट होने लगे। सन् १७६५ ई० में यह बढ़कर ८६.७४ प्रतिशत पर पहुंच गया, यद्यपि सन् १६६६ ई० की तुलना में यह अब भी १३.२६ प्रतिशत कम था। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में खर्च राज्य-इतिहास में सबसे अधिक बढ़ा। सन् १८०९ ई० में खर्च की होने वाली राशि ११,६६,६४० रु० थी, जो सन् १६६६ ई० की तुलना में ४५७.६४ प्रतिशत बढ़ गई थी। सन् १७६५ ई० से लेकर सन् १८०९ ई० के बीच चौदह वर्षों में, यह वृद्धि ४७१.२० प्रतिशत थी। इस वृद्धि के पीछे प्रशासनिक व सैनिक खर्च मुख्य रूप से उत्तरदायी थे, फिर मूल्यों में भी वृद्धि हो रही थी।

राज्य के कुल व्यय की सूची[1]

वर्ष	व्यय की राशि (रुपयों में)	प्रतिशत (१०० के आधार पर)
१६६६ ई०	२१,५०,६५	१००.००
१७५७ ई०	१२,००,८०	५५.८३
१७६५ ई०	१ ८६ ५५८	८६.७४
१८०९ ई०	११ ६६ ६४०	५५७.६४

व्यय सूची

मुख्य रूप से राज्य के व्यय के मुख्य विवरण इस प्रकार थे—[2]

१ मन्दिरात व पुण्य दाखल (धार्मिक कार्यों पर लगा खर्च)
२ रावलोक खाता (राज परिवार का खर्च)
३ कारखाना लेखे (विभिन्न कारखानों की लागत खर्च)
४ कमठाना लेखे (निर्माण कार्यों पर खर्च)
५ चाहर लेखे (कुओं का खुदवाना व उसके सामान का खर्च)

---

१ नोट—व्यय का पूरा विवरण वि० सं० [illegible] की बहियों पर आधारित है। इसमें से सन् १६६६ ई० को १०० आधार मानकर अध्ययन किया गया है। देखिए आय व व्यय का रेखाचित्र भी।

२ नोट—इस काल के उपलब्ध पत्रों का विवरण दिया गया है जो राज्य खर्च में सम्मिलित होते थे। राजा की निजी खर्च व उनके व्यक्तिगत खर्चों का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

६. महीनदारो व रोजीनदारो का खरच	(वेतनभोगी सरकारी अधिकारियो व कर्मचारियो का वेतन खर्च)
७. सिलावटो लेखे	(राजमहल के कारीगरो का खर्च)
८. मोदीखाने लेखे	(शाही भण्डार का खर्च)
९. पेटीये लेखे	(यात्रा भत्ता तथा अन्य भत्तो का खर्च)
१०. टकसाल लेखे	(सिक्के ढलवाने के विभाग का खर्च)
११. सिरेपाव रा	(पारितोषिक, इनाम, भेंट इत्यादि)
१२ सीरबधी दाखल	(शासक की निजी-सेना का खर्च)
१३. सीलेपासी दाखल	(अस्त्र-शस्त्र व सैनिक खर्च)
१४. थाणो का खरच	
१५. कासीदा दाखल	(सदेश-वाहक खर्च)
१६. घोडा खरीद बाबत खरच	
१७. कोठार लेखे	(भण्डार गृह खर्च)
१८. पातसाह् साहै रो खरच	(मुगल दरबार का खर्च)
१९. परचूण खरच	(विविध खर्च)
२०. खरीद दाखल खरच	(बाहर से मगाई गई वस्तुओ का खर्च)
२१. ब्याज-हुडावण खरच	(प्रशासन द्वारा लिये गये ऋण का ब्याज तथा बाहर से ऋण ली आई हुण्डी पर खर्च इत्यादि)
२२. कर्जे लेखे	(ऋण को चुकाने की रकम)

उपर्युक्त खर्चों को समान प्रकृति की कई इकाइयो मे विभाजित किया जा सकता है। जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) **राज-परिवार से सम्बन्धित खर्चे**— राज परिवार के खर्च मे न केवल श्री जी का परिवार, बल्कि उनके सभी निजी सम्बन्धियो व 'जनानी ड्योढी' का खर्चा सम्मिलित होता था। यद्यपि 'राज-लोकों' की मुख्य आवश्यकताए 'मोदीखाने' से पूरी हो जाती थी, पर इसके बाद भी, उनके 'सेवकों' व 'चाकरो' के खर्च तथा उनके सम्मान को बनाए रखने हेतु, खर्चों की पूर्ति राजलोक खर्च से की जाती थी। सन् १६७० ई० से सन् १६९३ ई० तक राजलोक का खर्च, ३,७४,९५१ रु० था। राजलोक खर्च मे महाराजा के पितामह पिता के परिवार, उनकी '. वासो', 'पासवानो', श्री जी की 'महाराणियो', 'राणियों', 'खवासो,' 'पासवानो', 'बडारनो'[1] तथा 'राणियों' व 'कुवराणियोंनी सहेलियो', 'धाय बहन-भाईयो', 'महाराज कुमारो', उनके 'प्रधान' तथा 'माणस'[2] व राज-परिवार के

१. जनानी ड्योढी की मुख्य अधिकारिणी
२. व्यक्ति

समस्त चाकरों का वेतन आदि का खर्च सम्मिलित होता था। 'कुंवराणियों' को 'मोदीखाने' के खर्चे के साथ प्रतिमाह करीब ३० रु० मिलते थे। कई कुंवराणियों को पट्टे भी प्राप्त होते थे। बाई अणद कुंवर ने 'भाणसो' को ३२,१३३ रु०, २३ वर्ष में वेतन के रूप में दिये थे। साधारणतया 'पातरों' व 'खवासों' को प्रतिमाह ५ रु० से ३० रु० के बीच मिलते थे। कोई 'खवास' महाराज की कृपापात्र होने पर, अधिक भी पा सकती थी। महाराजा अनूपसिंह की खवास बसंतराय को तथा महाराजा गजसिंह की खुवासन को एक मास के १०० रु० तथा उनकी सहेलियों को एक मास के ३ रु०, चाकरों को २ रु० से ६ रु० तक, 'नाजरों' को प्रतिमाह ८ रु० से २० तक वेतन प्रदान किया गया था। महाराणियों व रानियों को वेतन व पट्टे प्रदान किये जाते थे।[1] महाराजा अनूपसिंह की रानियों को, सन् १६७० ई० से १६९२ ई० तक, ४,१३,२७१ रु० खर्च के लिये दिये गये थे। सन् १०५७ ई० में 'रावलों' का कुल खर्च राज्य के कुल खर्च का ३ १६ प्रतिशत था, जो सन् १६६५ ई० में बढ़कर १२ ७८ प्रतिशत हो गया। खर्च की कुल राशि २३,८४३ रु० थी, जो सन् १८०६ ई० में बढ़कर ६२,७५० रु० हो गयी, लेकिन यह राशि कुल खर्च की ५ २३ प्रतिशत थी। 'रावलों खरच' में यह बात विशेष देखने में आयी है कि खर्च में किसी तरह की कोई वृद्धि नहीं हुई थी। सन् १६६३ ई० में लगे खर्च की तुलना में सन् १८०६ ई० तक केवल ० ५८ प्रतिशत की ही कमी आयी थी।

(२) कारखाना खर्च – दरबार व राजमहल की विभिन्न आवश्यकताओं हेतु, जो विभिन्न विभाग स्थापित किये गये थे उन्हें 'कारखाना जात' कहा जाता था। राज्य में मुख्य कारखाने ये थे—'रसोड़ा' (रसोई), 'सगाजलखाना' (पेय विभाग), 'कारखाना वस्त्रा' (आभूषण व फैशन की अन्य वस्तुओं का निर्माण विभाग), 'दवाईखाना' (औषधि), 'मोदीखाना' (रसद व अन्य आवश्यक वस्तुओं का वितरण विभाग), 'फीलखाना' (हाथीखाना) 'शुतरखाना' (ऊंट विभाग), 'रथखाना' (रथ विभाग), 'तोपखाना' (तोप विभाग), 'तबेला' (घोड़ों का विभाग), 'कोठीखाना' (उद्यान विभाग), टकसाल' (मुद्रा विभाग)', 'मरम्मतखाना' (लकड़ी विभाग) फराशखाना' (डेरा या पड़ाव विभाग), सिरसिरखाना' (पानी जलघरा का विभाग), सिलाहखाना', सिलाहपोशखाना या बड़ा कारखाना (ये अस्त्र-शस्त्र विभाग थे), इनमें 'मोदीखाना व बड़ा कार-

---

१ गडंको

२ बही कमठा रै बासा रो, सन् १६७०/१६६२ ई०, नं० ७१, जनाना पट्टे-पट्टा बही, वि० सं० १७४२/१६८५ ई०, नं० ६

खाना' मुख्य थे।[1]

'कारखानाजात'[2] के खर्च म केवल 'मोदीखाना', 'दवाईखाना', 'मरम्मतखाना', 'फराशखाना', 'किरकिरखाना' तथा 'कीलीखाना' के खर्च ही सम्मिलित होते थे। बल्कि कहना यू चाहिये कि 'कारखाना जात' का खर्चा मुख्य रूप से मोदीखाना का खर्च ही था। अन्य कारखाने के खर्चे 'मोदीखान' म सम्मिलित कर दिये जाते थे। 'मोदीखान' के मुख्य खर्चे ये थे—सरकारी हाथियो, घोडो, चाकरो का रसद व खर्च, शासक की यात्रा पर आया खर्च, राजमहल के दिन-प्रतिदिन के धार्मिक व पुनर्थ कार्यों का खर्च, दूतो का खर्चा, राज-परिवार की स्त्रियो व लडकियो के सामाजिक व धार्मिक उत्सवो पर खर्च, शिकार खर्च, सरकारी अधिकारियो व कर्मचारियो के घोडो की रसद का खर्च, विदेशी मेहमानो पर आया खर्च, 'गगाजल खर्च'[3] इत्यादि। बाकी कारखाना 'फौज खरच', 'उचत खरच',[4] 'टकसाल खरच' कोहरो का 'खर्च'[5] आदि अलग स 'लेखे' मे दिखाये जाते थे।[6]

'कारखानाजात' मे काम करनेवाले कर्मचारियों को नकद वेतन व 'पेटीया'[7] मोदीखाने से प्राप्त होता था। इन कारखानो का मुख्य अधिकारी 'हुवलदार' व उसका सहायक 'दरोगा' कहलाते थे, जिन पर अधिकतर 'मुतसद्दियों व हजूरियों' की नियुक्ति की जाती थी। मोदीखान म सन् १६६८ ई० म ११,३६८ रु० का खर्चा हुआ था। यह राशि सन् १७५७ ई० के विपत्ति वर्ष मे ३,७६१ रु० ही रह गयी, जोकि राज्य के कुल खर्च की ३.१६ प्रतिशत थी। तदुपरात यह राशि बढती ही गयी। सन् १७९५ ई० म तथा सन् १८०६ ई० म, इस पर

---

१ परगना री जमा जोड बही, वि० सं० १७२६-८०/१६६९-६३, न० ६६, बही समनत रे जमा खरच, वि० स० १७५८/१७०१ ई०, न० ७७, सोहनलाल-तवारीख, पृ० २६१-७२, राज्य म इस बात का बहुत प्रचलन रहा है कि बीकानेर राजा ३६ कारखाना के स्वामी रहे हैं, पर यह केवल उसकी समृद्धि को बतलाने के लिये तुगलक व मुगल शासको की तरह प्रसिद्ध कर दिया था, अन्यथा, इस सख्या की किसी भी समकालीन स्रोत से पुष्टि नही होती।

२ कारखाना जात का तात्पर्य राजा क निजी कारखाना के नाम से है

३ पीने के पानी पर आया खर्च

४ ऊपरी खर्च

५ कुओं का खर्च

६ कोठार बहियां, वि० स० १७४२/१६८५ ई० न० ३४, कोठार रे लेखे री बही, वि० स० १७४६/१६६२ ई०, न० ३५, बडे कोठार रे खरडे री बही, वि० स० १७५३/१६९६ ई०, न० ३६, कोठारे रै जमा खरच री बही, वि० सं० १७५५/१६९८ ई०, न० ३८, लेखे का तात्पर्य यहा आय-व्यय के हिसाब से है।

७ भत्ता

क्रमश २३,८८३ रु० व ६२,७८० रु० खर्च किये गये। मोदीखाने के अलावा अन्य कारखानों का खर्च भी बढ़ता जा रहा था। सन् १७ ७ ई० में जहां इन पर १४,८१४ रु० का खर्च हुआ, वहां यह सन् १८०६ ई० तक बढ़कर १,१० ७३० रु० तक पहुंच गया। इस वर्ष ६५,६३६ रु० की तो रकम पचासीन ही खरी गई थी।

कारखाना जात का खर्च

वर्ष	खर्च रकम (रुपयों में)	प्रतिशत (१०० के आधार पर)	कुल आय का प्रतिशत
१६६६	१५,५७०	१०० ००	७ २४
१७५७	२५ २३७	१६२ ०६	२१ ०२
१७६५	५१,११३	३२८ २८	२७ ४०
१८०६	७ ५० ५७२	१ ६०६ ३२	२० ८८

खर्च सूची से ज्ञात होता है कि विभिन्न कारखानों पर लग व्यय म निरन्तर वृद्धि हो रही थी। सन् १६६६ ई० के आधार पर यह वृद्धि १८वी शताब्दी के अन्त तक सन् १७६ ई० म ३२८ २८ प्रतिशत तक बढ़ गयी थी, और १९वी शताब्दी के प्रारम्भ म सन् १८०६ ई० म १६० ३२ प्रतिशत तक पहुंच गई थी। कुल खर्च की रकम म भी इनका प्रतिशत सन् १६६६ ई० म ७ २४ प्रतिशत से सन् १८०१ ई० तक बढ़कर २० ८८ प्रतिशत हो गया था। मोदीखाने म यह वृद्धि ४८० ७१ प्रतिशत तथा अन्य कारखानो म ६१ ८ ६३ प्रतिशत थी। वृद्धि का मुख्य कारण सीरवधी तथा विदेशिया के पटीया खच तथा विलासिता की सामग्री की खरीद थी। महाराजा गजसिंह व सूरतसिंह के काल म उनके भाईयो पर लगा खर्च भी मोदीखाने के खर्च म सम्मिलित कर लिया गया था। अलग म बढ़ते हुए सैनिक खर्चों के साथ 'कारखानाजात' का बढ़ा हुआ खच वित्त की गम्भीर समस्याओं के प्रति लापरवाही का द्योतक था तथा राज्य की समस्याओ मे वृद्धि करने वाला था।

(३) प्रशासनिक खच राज्य खजाने म प्रशासनिक खच के रूप म एक बडी रकम निकल जाती थी। इसम राजकीय सेवाओ के सभी वर्गों तथा सभी तरह के अधिकारियो व कर्मचारियो के वेतन सम्मिलित थे। उस समय नागरिक व सैनिक सेवाओं म कोई विशेष भेद नही था। विभिन्न कारखानो के थाणों', मण्डियो के हुवलदार', उनके सहायक दरोगा', कोतवाल' अधीनस्थ कर्मचारियो म लेखणिये', गुमास्ते', तावीनदार महीनदार' तथा रोजीनदार'

के रूप म वेतन पाते थे। मत्रियो व उच्च-अधिकारियों को भी कुछ 'नकदी वेतन' मिलता था। मत्रिया व उच्च अधिकारियो के 'तावीनदारो' व उनके 'तवेले' का खर्च भी राज्य वहन करता था।[1] चौरो तथा खालसा गावा के हुवलदारो का वेतन अधिकाश रूप मे, करा की वसूली के साथ 'रकम-रोजगार' के नाम से निर्धारित होता था। राज्य मे अधिकारियो का वेतन प्रतिमाह १५) रु० स ३०) रु० के बीच था। सहायको का वेतन प्रतिमाह ५) रु० स १५) रु० के मध्य था। अधीनस्थ कर्मचारी प्रतिमाह १) रु० स ५) के बीच पाते थे। प्रत्येक अधिकारी व उसके कर्मचारी को अपना कर्त्तव्यपालन न करने पर जुर्माना देना पड़ता था, जो उसके वेतन स काट लिया जाता था।[2] सन् १६७० ई० से १६६३ ई० के बीच बाईस वर्षो म, राज्य का लगभग एक लाख रुपया वेतन के रूप म खर्च हो गया था। सन् १६६६ ई० के एक वर्ष म खच की रकम ४२२१ रु० थी।

महीनदारों व रोजीनदारों का खर्च

वर्ष	खर्च रकम	प्रतिशत १०० के आधार पर	कुल खर्च रकम मे प्रतिशत
१६६६	४,२२१	१०० ००	—
१७५७	२,३४८	५६ ६६	१.६६
१७६५	१५,५६८॥=)	३५८ ४६	८.३६
१८०६	४७,८७२	१,१०० २५	३ ६६

सन् १७५७ ई० म अवश्य खर्च की रकम म कमी आई थी परन्तु उसके उपरान्त इसम निरन्तर बढ़ोतरी होती रही। सन् १७६५ ई० म ३५८ ४६ प्रतिशत तथा सन् १८०६ म १,१०० २५ प्रतिशत तक यह खर्च पहुच गया। इस काल म न केवल चौरो के हुवलदारो को 'रकम-रोजगार' चुकानी पडी, बल्कि दीवान म लेकर तावीनदार तक के वेतन म वृद्धि हो चुकी थी।[3] महाराजा सूरतसिंह के काल म नये प्रशासनिक केन्द्रो की स्थापना स भी खर्चा बढ गया था।[4]

---

१ कामदारो व वकीलो के रोजगार की बही, वि० स० १७५३/१६६६ ई०, न० २०६

२ वही

३ तुलनात्मक अध्ययन क लिय देखिये—पट्टा बही, वि० स० १६८२/१६२५ ई०, न० १, परवाना बही, वि० स० १७४६/१६६२ ई०, दीवान का वतन १७वी शताब्दी म १०,००० रु० था, जो १८वी सदी के अ त तक १४,००० रु० हो गया था। हुवलदार का वेतन ५ रु० से बढकर प्रतिमाह १५ रु० हो गया था।

४ रतनगढ़ चूरु, भादरा, मोरगढ़, फलोदी फुलडा, हनुमानगढ़ मे नये केन्द्र स्थापित किये गये थे।

महीनदारा का खर्चा राज्य का कोई महत्त्वपूर्ण खर्चा नही था। कुल खर्च की रकम मे इसकी स्थिति ८ प्रतिशत से अधिक कभी नही बढ पाई थी।

(४) श्रीमण्डी का खर्च—श्रीमण्डी के 'हुवलदार, दरोगा व ताबीनदारों' का खर्च राज्य मे सदैव अलग से अंकित होता था।[1] श्रीमण्डी का अपना ही लेखा जोखा था। इसका अपना महत्त्व ही था, कि जहा सन् १७५७ ई० मे अन्य खर्चों मे कटौतिया की गई वहा मण्डी के खर्च पर कोई प्रभाव नही पडा। उस वर्ष यह कुल खर्च की रकम की ९.६० प्रतिशत थी, अर्थात् मण्डी का खर्च महीनदारा से अधिक होता था। श्रीमण्डी के अधिकारियो व कर्मचारियो की सख्या तो महीनदारो से कम थी, परन्तु इन्हे वेतन अधिक मिलता था। श्रीमण्डी का हुवलदार प्रति माह ६० रु० से १०० रु० के बीच वेतन पाता था।[2] परन्तु १८वी शताब्दी के अन्त तक राज्य की सीमावर्ती मडियो के विकसित होने के फलस्वरूप इसका महत्त्व घटने लगा, जिससे श्रीमण्डी के खर्चे मे भी कमी आने लगी।[3]

श्रीमण्डी का खर्च

वर्ष	खर्च रकम रुपयो मे	प्रतिशत १०० के आधार पर	कुल खर्च मे प्रतिशत
१६९९	७,२२६॥)	१०० ००	३ ३६
१७५७	११,८६२	१६४ ५४	९ ६०
१७९५	८३१॥।=)	११ ५१	० ४५
१८०९	३३७७)	४६ ७२	० २८

इस प्रकार राज्य ने प्रशासनिक खर्चों को सदैव नियन्त्रण मे ही रखा। यह खर्च कभी भी राज्य के कुल खर्च मे ९ प्रतिशत से अधिक नही बढ पाया, बल्कि अधिकतर ५ प्रतिशत से कम ही रहा। इस कमी के पीछे मुख्य कारण यह था कि मुकाता प्रणाली के प्रचलन मे हवाला व्यवस्था की वेतन वाली रोजगार प्रथा समाप्त सी होती जा रही थी। फिर बहुत से प्रशासनिक खर्चे मोदीखाने से पूरे हो जाते थे। पर, शासको ने जिस प्रकार अपने निजी खर्चों मे वृद्धि की, उसके स्थान पर अगर इस खर्च मे कुछ और वृद्धि करते तो राज्य मे बाहर से आने वाले योग्य व्यक्तियो का वहा बसने का आकर्षण बना रहता। इसके

---

१ श्रीमण्डी के जमा खरच की बही वि० स० १७०१/१६४४ ई०, न० ७४
२ वही
३ सावा बहियां—रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर

अभाव मे, राज्य का मुत्सद्दी वर्ग सम्पूर्ण ही पुराने प्रशासकों के वशजों से भरा रहा।

(५) सैन्य-खर्च...राज्य म सिलेपोस' (अस्त्र शस्त्र) शालाबारूद, सैनिक सज्जा व सैनिकों के वेतन के रूप म, सैन्य खर्च किया जाता था। प्रारम्भ म सैन्य खर्च बहुत कम था, क्योंकि सेना के अधिकाश भाग की पूर्ति सामन्तो की सेनाओं से होती थी; जिसका खर्च व स्वय वहन करते थे।[1] महाराजा अनूपसिंह के काल से शासक की निजी सेना पर बल दिया जाने लगा था।[2] महाराज गजसिंह के समय तो शासक की स्थायी सेना के निर्माण हेतु निजी सेना का और गठन और विस्तार किया गया।[3] इससे तथा सेना के विभिन्न अगो विशेषकर तोपखाने' के विस्तार म सैन्य खर्चो मे वृद्धि होने लगी।[4] १८वी शताब्दी के अन्तिम चरण में कई नई टुकडियो को भरती किया गया तथा राज्य में 'थाणो' की सख्या मे भी वृद्धि हुई।[5] इन सबने राज्य के सैन्य खर्च को नई ऊचाइयो

राज्य का सैन्य खर्च

वर्ष	खर्च रकम (रुपयो म)	प्रतिशत खर्च का (१०० के आधार पर)	प्रति (कुल खर्च) मे
१६६६	१,१५,३५४	१०० ००	५२.६४
१७५७	७४,४१६	६४ ५१	६१.६७
१७६५	१,१३,०८३	६८ ००	६०.५६
१८०६	६,७८,६२०	५२८ २२	५६.५५

१ रिसाला बही, वि० स० १६८७/१६३० ई०, दयालदास ख्यात (प्र०) २, पृष्ठ ८, १८, २५, ५४

२ बही वकीलो व कामदारा र रोजगार री (पूर्व); खालसा रै गावा री बही, न० ६८, स० १७४३/१६८६ ई०

३. व ि नकल री—लि० १६४, स० १८१०/१७५३ ई०, खाता खजाना सदर बही, स० १८१४/ १७५७ ई०

४. बही लसकर री, वि० स० १७२६/१६६६ ई०, न० २४१; तबेला खरच बही, वि० स० १७५६/१६६६ ई० न० २३४, बही घाडा खरीदरी, वि० स० १७४६/१६८६ ई०, न० १३५—बीकानर बहियात

५ बही कूचमुकाम रै कागदा री, वि० स० १८१०/१७४३ ई०—रामपुरिया रिकार्ड्स, बीकानेर, कागदो की बही, स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० ६६, स० १८६१/१८०४ ई०, न० १३—रावत सर थाणा के कागद। इस सदभ मे भैय्या सग्रह के मोहर से भैय्या नथमल के पत्र अध्ययन म बहुत सहायक है।

पर पहुचा दिया, जिसके फलस्वरूप राज्य भयकर वित्तीय कठिनाइयो म फस गया।[1]

उपर्युक्त सारणी स स्पष्ट है कि सैन्य खच राज्य का प्रमुख खच था और कुल खच म आधे से अधिक राशि इसी पर खच की जाती थी। कुल खर्चे के ६० प्रतिशत के साथ साथ सामन्तो का भी सैन्य खर्च अगर ध्यान म रखा जाये तो राज्य की समस्त आय का ८० प्रतिशत से अधिक तो केवल सेना पर ही खच हो जाता था।

सैन्य खच की सारणी स दो तथ्य मुख्य रूप स उभरते है। प्रथम १७वी शताब्दी के प्रारम्भिक दशको की तुलना म १८वी शताब्दी म सैन्य खच म कमी आ गई थी, जो १६९९ ई० के आधार पर १७५७ ई० म ६४ ५१ प्रतिशत थी। इन वर्षों मे बीकानेर शासको क मुगल सवा स हट जान स तथा खर्च म भारी कटौतिया लागू करने पर यह कमी आई थी। फिर इन वर्षो म राज्य की घटती हुई आय के साथ सतुलन भी स्थापित करना था। द्वितीय, राज्य के कुल खच म सैन्य खच के प्रतिशत मे कमी नही वृद्धि हुई थी। १६९९ ई० म, जहा कुल खच म सैन्य खर्च का प्रतिशत ५३ ६४ प्रतिशत था, वहा १७५७ ई० म यह ६१ ७७ प्रतिशत बढ गया और यही स्थिति १८वी शताब्दी के अन्त तक बनी रही। इसस प्रतीत होता है कि राज्य की सैनिक मागो म वृद्धि ही हुई थी, जो १८वी शताब्दी के राजस्थान की राज्यो के अन्दर व बाहर पारस्परिक कलह के अविवेकपूर्ण सम्बन्धो को देखते हुए समझ मे भी आती है। इन वर्षो म शासको ने भी सैन्य खर्चों म वृद्धि की ही इच्छा की थी, न कि घटोतरी की। १८वी शताब्दी के अन्त व १९वी शताब्दी क प्रारम्भ म राजा व ठाकुरो तथा पडोसी शक्तियो क साथ सघर्ष न राज्य के सैन्य खच को १६९९ ई० की तुलना म पाच गुना अधिक बढा दिया। महाराजा सूरतसिंह न केवल भाड के सैनिको पर एक वष म ३,५९ ११६ रुपये खर्च किये। अस्त्र शस्त्रो का खच अवश्य कमी २ प्रतिशत म अधिक नही बढा, क्योकि भाडे क सैनिक अपन हथियार स्वय लात थे। वैस यह खच महाराजा गजसिंह के काल स ही प्रारम्भ हो गया था, उन्होने भी कुल सैन्य खर्च का ५६ ३६ प्रतिशत सीरबन्धीया पर खर्च कर दिया था।

महाराजा गजसिंह व सूरतसिंह न सना के सभी विभागो को दृढ करन के लिय नई खरीद की। १७५७ मे तोपखाने', तवेले', फीलखान' पर १३८६ रु० खर्च किये जो १७९५ ई० म बढकर ११ ९८२ रुपय की राशि तक पहुच गये। १८०९ ई० म इस बाबत २४ ६०० रुपये की खरीद हुई। इस वष फौज खरच' भी बहुत बढ गया। अकेल मारवाड अभियान म १,४३,९८१ रुपये के

१ सैनिको को वेतन न दे पाने की दु खद स्थिति के लिये देखिये—भैय्या सग्रह के भैय्या नथमल के पत्र, ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान—पृ० ७०-७७

खर्च का दबाव पड़ा था। राज्य के उत्तरी भागों में हो रहे विद्रोहों को दबाने के लिये राजगढ़ में जो सेना रखी थी, उस पर १६,६८३ रुपये का खर्च आया था। इसी प्रकार विभिन्न स्थानों पर नियुक्त टुकड़ियों के खर्चे को मिलाकर यह राशि १,८६,११६ रुपये तक पहुच गई थी।

१८वीं शताब्दी के अन्तिम चरणों से राज्य हर प्रकार से एक सैनिक शिविर बन गया था। थाणों का खर्च भी स्थायी रूप से बढ़ रहा था। पहले जहा दस मुख्य थाणे थे, वहाँ महाराजा सूरतसिंह के काल में सत्ताईस, उच्च-स्तर के थाणे स्थापित किये गये।[1] १७६५ ई० में इन थाणों पर ४६,३६० रुपये की राशि खर्च की गई, जोकि १८०१ ई० में बढ़कर १,०७,०१७ रुपये की हो गई। यहा यह उल्लेखनीय है कि इन समस्त खर्चों के पश्चात् भी महाराजा सूरतसिंह ने आय के साधनों को बढ़ाकर राज्य के कुल खर्च म सैन्य खर्च को ६० प्रतिशत से अधिक नही बढ़ने दिया, *बल्कि १८०१ ई० में जब वैसे सैन्य खर्च पाच गुना बढ़ गया था*, पर कुल खर्च में पहले से कम अर्थात् ५६·५५ प्रतिशत रहा। इस प्रकार बजट में खर्चों के बीच काफी सतुलन स्थापित करने के यत्न किये। लेकिन यह सतुलन राज्य के लिये बहुत महगा व कष्टदायक सिद्ध हुआ। सैन्य खर्चों में निरन्तर वृद्धि ने राज्य को विवश किया कि वह नये कर लगाकर आय के साधनों में वृद्धि करे अथवा ऋण लेकर व्यवस्थित करे। इन दोनों ही प्रयत्नों ने राज्य के आर्थिक साधनों को निचोड़ दिया तथा प्राकृतिक विपत्ति के मारे लोग इस विपत्ति को न सहन कर पाने पर यहा से भाग खड़े हुए।[2]

(६) मुगल सेवा में खर्च—बीकानेर शासकों द्वारा मुगल दरबार में जाने पर, *साम्राज्य में किसी स्थान पर नियुक्ति होने पर, जागीर व पद की प्राप्ति* पर तथा विभिन्न उत्सवों आदि पर निर्धारित खर्च करने पड़ते थे। महाराजा अनूपसिंह ने अपने दक्षिण-सेवाकाल में इस तरह के कई खर्च किये थे। उन्होंने सन् १६८१ ई० में सन् १६६२ ई० के बीच १,६६,०५६॥=) रुपये दुयब दाखल[3] करवाए थे। इसी प्रकार इन्हीं वर्षों में जो अन्य खर्च हुए थे, वे इस प्रकार

१. दयालदास ख्यात (ग्र प्र) २, पृ० ३०२-२०
२. टॉड ने जो उस समय राजस्थान में ही था, इस स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है टॉड, भाग २, पृ० ११४५-५०
३. खुराके-दवाब—बादशाह के अस्तबल खर्च व पशुओं के भोजन के लिए मनसबदारों के वेतन म कटौती। ऐसा प्रतीत होता है कि 'दुयब दाखल' में न केवल खुराके दवाब की कटौती *बल्कि अन्य छोटी-बड़ी सभी कटौतियां भी शामिल थीं।* वजा-ए दाम-ए-चौथाई की कटौती राशि भी अलग से नहीं मिलती, जबकि उसका नाम 'वहीयों' में दुयब दाखल के साथ मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि चौथाई भी 'दुयब दाखल' में सम्मिलित थी। इन कटौतियों के अध्ययन के लिये देखिये—अतहरअली, मुगल नॉबिलिटी अण्डर औरंगजेब (पूर्व), पृ० ५०-५२, इस काल में अनूपसिंह को मुगल जागीरों से कितनी आय हुई, इसका निश्चित विवरण नहीं मिलता है।

पर पहुंचा दिया, जिसके फलस्वरूप राज्य भयंकर वित्तीय कठिनाइयों में फंस गया।[1]

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि सैन्य खर्च राज्य का प्रमुख खर्च था और कुल खर्च में आधे से अधिक राशि इसी पर खर्च की जाती थी। कुल खर्च के ६० प्रतिशत के साथ-साथ सामन्तों का भी सैन्य खर्च अगर ध्यान में रखा जाये तो राज्य की समस्त आय का ८० प्रतिशत से अधिक तो केवल सेना पर ही खर्च हो जाता था।

सैन्य खर्च की सारणी से दो तथ्य मुख्य रूप से उभरते हैं। प्रथम, १९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों की तुलना में १८वीं शताब्दी में सैन्य खर्च में कमी आ गई थी, जो १६९९ ई० के आधार पर १७५७ ई० में ६४.५१ प्रतिशत थी। इन वर्षों में बीकानेर शासकों के मुगल सेवा से हट जाने से तथा खर्च में भारी कटौतियां लागू करने पर यह कमी आई थी। फिर, इन वर्षों में राज्य की घटती हुई आय के साथ संतुलन भी स्थापित करना था। द्वितीय, राज्य के कुल खर्च में सैन्य खर्च के प्रतिशत में कमी नहीं वृद्धि हुई थी। १६९९ ई० में, जहां कुल खर्च में सैन्य खर्च का प्रतिशत ५३.६४ प्रतिशत था, वहां १७५७ ई० में यह ६१.७७ प्रतिशत बढ़ गया और यही स्थिति १८वीं शताब्दी के अन्त तक बनी रही। इससे प्रतीत होता है कि राज्य की सैनिक मांगों में वृद्धि ही हुई थी, जो १८वीं शताब्दी के राजस्थान की राज्यों के अन्दर व बाहर पारस्परिक कलह व अविश्वासपूर्ण सम्बन्धों को देखते हुए समझ में भी आती है। इन वर्षों में शासकों ने भी सैन्य खर्चों में वृद्धि की ही इच्छा की थी, न कि घटोतरी की। १८वीं शताब्दी के अन्त व १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में राजा व ठाकुरों तथा पड़ोसी शक्तियों के साथ संघर्ष ने राज्य के सैन्य खर्च को १६९९ ई० की तुलना में पांच गुना अधिक बढ़ा दिया। महाराजा सूरतसिंह ने केवल भाड़े के सैनिकों पर एक वर्ष में ३,५९ ११९ रुपये खर्च किये। अस्त्र-शस्त्रों का खर्च अवश्य कभी २ प्रतिशत से अधिक नहीं बढ़ा, क्योंकि भाड़े के सैनिक अपने हथियार स्वयं लाते थे। वैसे यह खर्च महाराजा गजसिंह के काल से ही प्रारम्भ हो गया था, उन्होंने भी कुल सैन्य खर्च का ५६.३६ प्रतिशत 'सीरबन्धीयों' पर खर्च कर दिया था।

महाराजा गजसिंह व सूरतसिंह ने सेना के सभी विभागों को दृढ़ करने के लिये नई खरीद की। १७५७ में 'तोपखाने', 'तबेले', 'फीलखाने' पर १३८६ रु० खर्च किये, जो १७९८ ई० में बढ़कर ११,९८२ रुपये की राशि तक पहुंच गये। १८०९ ई० में इस बाबत २४,६०० रुपये की खरीद हुई। इस वर्ष फौज खरच' भी बहुत बढ़ गया। अकेले मारवाड़ अभियान में १,४३,९८१ रुपये के

---

१. सैनिकों को वेतन न दे पाने की दुःखद स्थिति के लिये देखिये—भैय्या संग्रह के भैय्या नथमल के पत्र, ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान—पृ० ७०-७७

खर्च का दबाव पडा था। राज्य के उत्तरी भागो मे हो रहे विद्रोहो को दबाने के लिये राजगढ मे जो सेना रखी थी, उस पर १६,६८३ रुपये का खर्च आया था। इसी प्रकार विभिन्न स्थानो पर नियुक्त टुकडियो के खर्च को मिलाकर यह राशि १,८६,११६ रुपये तक पहुच गई थी।

१८वी शताब्दी के अन्तिम चरणो से राज्य हर प्रकार से एक सैनिक शिविर बन गया था। थाणो का खर्च भी स्थायी रूप से बढ रहा था। पहले जहा दस मुख्य थाणे थे, वहाँ महाराजा सूरतसिंह के काल मे सत्ताईस, उच्च-स्तर के थाणे स्थापित किये गये।[1] १७६५ ई० मे इन थाणो पर ४६,३६० रुपये की राशि खर्च की गई, जोकि १८०६ ई० मे बढकर १,०७,०१७ रुपये की हो गई। यहा यह उल्लेखनीय है कि इन समस्त खर्चों के पश्चात् भी महाराजा सूरतसिंह ने आय के साधनो को बढाकर राज्य के कुल खर्च मे सैन्य खर्च को ६० प्रतिशत से अधिक नही बढने दिया, बल्कि १८०६ ई० मे जब वैसे *सैन्य खर्च पाच गुना बढ गया था*, पर कुल खर्च मे पहले से कम अर्थात् ५६·५५ प्रतिशत रहा। इस प्रकार बजट मे खर्चों के बीच काफी सतुलन स्थापित करने के यत्न किये। लेकिन यह सतुलन राज्य के लिये बहुत महगा व कष्टदायक सिद्ध हुआ। सैन्य खर्चों मे निरन्तर वृद्धि ने राज्य को विवश किया कि वह नये कर लगाकर आय के साधनो मे वृद्धि करे अथवा ऋण लेकर व्यवस्थित करे। इन दोनो ही प्रयत्नो ने राज्य के आर्थिक साधनो को निचोड दिया तथा प्राकृतिक विपत्ति के मारे लोग इस विपत्ति को न सहन कर पाने पर यहा से भाग खडे हुए।[2]

(६) मुगल सेवा मे खर्च—बीकानेर शासको द्वारा मुगल दरबार मे जाने पर, साम्राज्य मे, किसी स्थान पर नियुक्ति होने पर, जागीर व पद की प्राप्ति पर तथा विभिन्न उत्सवो आदि पर निर्धारित खर्च करने पडते थे। महाराजा अनूपसिंह ने अपने दक्षिण-सेवाकाल मे इस तरह के कई खर्चे किये थे। उन्होने सन् १६८१ ई० से सन् १६९२ ई० के बीच १,९९,०५९॥ =) रुपये दुयब दाखल[3] करवाए थे। इसी प्रकार इन्ही वर्षों मे जो अन्य खर्च हुए थे, वे इस प्रकार

१. दयालदास ख्यात (म प्र) २, पृ० ३०२-२०

२ टॉड ने जो उस समय राजस्थान मे ही था, इस स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है टॉड, भाग २, पृ० ११४५-५०

३. खुराके-दवाब—बादशाह के अस्तबल खर्च व पशुओ के भोजन के लिए मनसबदारो के वेतन मे कटौती। ऐसा प्रतीत होता है कि 'दुयब दाखल' मे न केवल खुराके दवाब की कटौती बल्कि अन्य छोटी-बडी सभी कटौतिया भी शामिल थीं। वजा-ए दाम-ए-चौथाई की कटौती राशि भी अलग से नही मिलती, जबकि उसका नाम 'बहीयो' मे दुयब दाखल के साथ मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि चौथाई भी 'दुयब दाखल' मे सम्मिलित थी। इन कटौतियो के अध्ययन के लिये देखिये—अतहरअली, मुगल नॉबिलिटी अण्डर औरगजेब (पूर्व), पृ० ५०-५२, इस काल मे अनूपसिंह को मुगल जागीरो से कितनी आय हुई, इसका निश्चित विवरण नहीं मिलता है।

थे—मुग़ल दरबार म विभिन्न अवसरो पर बादशाह शाहजादो, वजीर, मीरबख्शी एव अन्य महत्त्वपूर्ण मुगल अधिकारियो को जो नजर भेंट की थी, उसम बादशाह को १५,२०० रु०, शाहजादा शाह आलम को २,८७६ =) रु० आजमशाह को १२,५८६।) रु० विभिन्न अवसरो पर नजर किये गये थे। वजीर असद खां मीरबख्शी, सातहजारी मनसबदार गाजीउद्दीन खां आदि अन्य अधिकारियो तथा मनसबदारो को नजर के रूप म २,२५,०८७॥) रु० भेंट किए गये थे। इसके अलावा सम्राट द्वारा बख्शीश दने पर भी नजर देनी पड़ती थी। यहां के शासकों को जब नई जागीर या नया पद दिया जाता था, तब भी नजर भेंट करनी पड़ती थी। 'मतालबे बाबत'[1] यहां के शासक को ५,८७३।) रु० मुग़ल खजाने में जमा कराने पड़े थे। 'जागीरी क्षेत्र मे 'तजिया' की रकम वसूल करके जमा करनी पड़ती थी। विभिन्न जागीरो व पदो के लिए जो 'फरमान' प्राप्त होते थे, उन पर भी नजर भेट होती थी। जिस परगने म नियुक्ति होती थी, वहां पर नियुक्त अधिकारियों को भी बख्शीश देनी पड़ती थी।[2] इसके अतिरिक्त शासक के जो कर्मचारी जागीर मे कार्य करते थे उनको 'महीनदार' के रूप मे वेतन दिया जाता था। इस दृष्टि से १२ वर्षों म ३०,०८५॥ रु० खर्च हुआ था। केवल बख्शीश मे ५,६१४॥ रु० का खर्च आया था। शासक के मुग़ल दरबार के खर्चे, उनके 'वकील' के माध्यम से होते थे। वकीलों को महीनदार के रूप में वेतन प्राप्त होता था।[3] राव कर्णसिंह व महाराजा अनूपसिंह की बहियों से ज्ञात होता है कि यहां के शासक, इन खर्चों की पूर्ति, पहले साहूकारो से ऋण लेकर करते थे। जागीरी आय प्राप्त होने पर ऋण को चुका दिया करते थे। राव कर्णसिंह ने तो अपनी समस्त दक्षिणी 'जागीरी आय' को 'इजारं' पर चढ़ा दिया था।[4] महाराजा अनूपसिंह के १२ वर्षों के, दक्षिण सवाकाल म खर्च की कुल राशि ६,४०,५२० रु० थी। १८वीं शताब्दी के दूसर दशक क मध्य से यह खर्च बिलकुल समाप्त हो गया था। लेकिन जितनी मुग़ल क्षेत्रो की आय न मिलन स हानि हुई, उतना प्रभाव इस खर्च की समाप्ति से नहीं पड़ा।

(७) सिरोपाव—शासक अपने सामन्तो, दरबारियो, कर्मचारियो को विभिन्न अवसरो पर दरबार म पुरस्कृत करत समय, जो 'पेंटा'[5] या पगड़ी',

१ मुतालिब—मनसबदारो को दी जाने वाली अग्रिम राशि

२. इन सभी खर्चों की राशि जो इन वर्षों में ४०,०४५ थी, 'बाजगारदोनो बाबत' शीर्षक के अन्तर्गत लिखी गई है।

३ लिखत बही, वि० सं० १७४०/१६८३ ई०, न० २०७, कामदारा व वकीलो के राजगार की बही, वि० सं० १७२३/१६६६ ई० न० २०६

४ औरंगाबाद करणपुरे रै जमा खरच री बही, वि० स० १७६८/१७११ ई०, न० १३१

५. साफा, पगड़ी

'दुशाला', 'कड़ा' व 'पालकी', घोड़ा इत्यादि बख्शीश मे देता था, उनका खर्च, 'सिरोपाव खर्च' कहलाता था। यह कुल खर्च राशि का १ प्रतिशत से अधिक कभी नही होता था।[1]

(८) अन्य प्रशासनिक खर्च—कासीद खर्च राज्य मे उन 'सन्देशवाहकों' का खर्च था, जो राज्य को उसकी सीमाओ के भीतर व बाहर दोनो तरफ, अपनी सेवायें अर्पित करते थे।[2] सन् १७५७ ई० मे कुल खर्च मे इसकी राशि ०·०६ प्रतिशत थी, १७६५ ई० मे ०·२३ प्रतिशत तक १८०६ ई० मे ०·१४ प्रतिशत थी।

(९) कमठाणा खर्च—राज्य मे महलो, किलो व अन्य सार्वजनिक निर्माण मे जो खर्च आता था, वह 'कमठाणा' लागत के नाम से दर्ज होता था।[3] इसकी खर्च होने वाली राशि कुल खर्च मे सन् १७५७ ई०, सन् १७६५ ई० व सन् १८०६ ई० मे, क्रमश. १०·२७ प्रतिशत, २०·०० प्रतिशत व १·४४ प्रतिशत थी। १८०० ई० के पश्चात् सैनिक खर्चे बढ जाने के कारण निर्माण कार्यों मे रुकावट आई, इसी कारण इसका खर्च १·४४ रह गया। विभिन्न प्रशासनिक खर्चों मे कागज-स्याही का जो खर्च आता था, वह 'पाठा' 'साही लागत' के नाम से जाना जाता था।[4] यह खर्च १७६५ ई० मे, कुल खर्च राशि का ०·३३ प्रतिशत था और १८०६ ई० मे ०·०६ प्रतिशत रहा; जबकि कागज-स्याही के खर्च की राशि इन दो विभिन्न वर्षों मे ५६२ रुपये से बढकर १०६० रुपये हो गई।[5] प्रतिशत मे गिरावट का कारण अन्य खर्चों मे कष्टमय वृद्धि होना था।

(१०) परचुण या खरीद खर्च—दरबार व राजमहल की विभिन्न वस्तुओ को खरीदने का खर्च इसके अन्तर्गत आता था।[6] इस खर्च की राशि १६७० से १६६३ ई० के बीच ११,०१२ रुपये आई थी। राज्य के कुल खर्च मे इसकी राशि का प्रतिशत १७६५ ई० मे १·४२ प्रतिशत तथा १८०६ ई० मे ३ ५२ प्रतिशत था, अर्थात् यह खर्च भी राज्य की वित्तीय स्थिति पर दबाव डालता जा रहा था।

(११) घास खर्च—राज्य के विभिन्न विभागों के तबेलो' के पशुओ के लिए जो चारा-घास खरीदी जाती थी, इसका अलग मे विवरण रखा जाता था। यह खर्च राज्य के कुल खर्च मे, १७५७ ई० मे २·६२ प्रतिशत; १७६५ ई० म २·८३

---

१. बही परवाना दीवाणा री, वि० स० १८८५/१८१८ ई०, न० ४०/११, रामपुरिया रिकार्डस, बीकानेर
२. बही उपरली पर्दे खरच, वि० स० १७८३/१७२६, न० ५३
३. बही बडा कमठाणा री, वि०सं० १७४६/१६६२ ई०, वि० सं० १८५७/१८०० ई० तक
४. बही छाप रे कागद री, नं० ४०/१२, रामपुरिया रिकार्डस, बीकानेर
५ कागदा की बही, स० १८४६/१७८६ ई०, न० ८, पृ० ४६
६. बही परचूण खरच, स० १७१७/१६१० ई०, नं० १२०, बीकानेर बहियात

प्रतिशत तथा १८०६ ई० में ० ६६ प्रतिशत का स्थान रखता था।[1] १८०६ ई० में घटोतरी के कारण इस राशि का कम रहा होना था बल्कि अन्य खर्चों की दौड़ में पीछे रह जाना था।

(१२) धार्मिक खर्च—यह खर्च राज्य में पुनर्थ, मन्दिरात व देवस्थान खर्च के नाम से जाना जाता था। यहां के शासक अपने राज्य की कुलदेवी करणीजी व कुलदेवता लक्ष्मीनारायणजी का उपकार मानते थे इस कारण इनके मन्दिरों का सम्पूर्ण खर्च राज्य वहन करता था। हिन्दू धर्म के निष्ठावान अनुयायी तथा उसके रक्षक होने के कारण यहां के शासक अन्य मन्दिरों व धार्मिक कृत्यों पर भी खर्च किया करते थे। यहां के राजा परम्परागत तौर और किसी भी धार्मिक क्रिया को सम्पन्न करने में सदैव उत्साह दिखाते थे। राज्य में समय समय पर यज्ञ व अनुष्ठान किये जाते थे।[2] यहां के शासक अपने धर्म के प्रति उत्साही अवश्य थे लेकिन कट्टर धर्मावलम्बी नहीं थे। उन्होंने अन्य धर्म व सम्प्रदायों को पूरा संरक्षण प्रदान किया तथा अनुदान प्रदान करने में पूरी रुचि दिखाई।[3] राज्य के बाहर भी जो मन्दिर व मस्जिदें थीं उन्हें भी अनुदान के रूप में वार्षिक भेंट प्रस्तुत की जाती थी।[4] १७वीं शताब्दी में धार्मिक कृत्यों पर लगे खर्च की कुल राशि राज्य के कुल खर्च में अपना १ प्रतिशत स्थान रखती थी लेकिन १८वीं शताब्दी में इसका अनुपात बढ़ गया महाराजा सूरतसिंह के काल में यह स्थान ८ प्रतिशत से भी अधिक बढ़ गया जो कि सैन्य व प्रशासनिक खर्चों की वृद्धि की तेजी में अपना अलग ही महत्त्व रखता है। महाराजा सूरतसिंह ने सबसे अधिक पुनर्थ दान दिये थे तथा वे सदा ब्राह्मणों से घिरे रहते थे।[5]

भाग—३

वित्तीय प्रबन्ध

राज्य में दीवान के पद पर किसी की नियुक्ति करते समय शासक उससे यह आशा रखता था कि वह राज्य की वित्तीय व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध

---

१ जखीरे री बही सं० १७५६/१७०२ ई० नं० १३६ बीकानेर बहियात

२ नितबदान रे लेखे री बही सं० १७७०/१७१३ ई० नं० १८८ बीकानेर बहियात ब्राह्मण बरागी पुरोहित सोमी (स्वामी सन्यासी) फकीर पुरोहित रेखे—परवाना बही सं० १८००/१७४३ ई०

३ परवाना बही सं० १८००/१७४३ ई० विशेषकर देखिये—पृ० २१६, २२० २२१

४ समसत गांवा री बही सं० १७२५/१६६८ ई० (पूर्व)

५ टॉड—भाग २ पृष्ठ ११४२ (पूर्व)

करेगा।[1] इस आशा के फलीभूत न होने पर दीवान को पद से विमुक्त कर दिया जाता था।[2] अत दीवान का यह प्रमुख कर्तव्य होता था कि वह राज्य की आय व व्यय के बीच सही अनुपात म, सही सतुलन बिठाये। इसके लिये वह कैसे प्रयास करता था इसका उल्लेख १७वी शताब्दी के मध्य काल तक कही नही मिलता है। महाराजा अनूपसिंह के काल की खालसा व परगना जमा खर्च की बहियो से प्रथम बार जानकारी मिलती है कि प्रशासन की ओर म आय व व्यय की राशि क बीच सही सतुलन स्थापित करने के लिय कई उपाय जुटाये गये थे।[3]

१८वी शताब्दी मे दीवान के कार्यालय म आय व्यय के आकडो की सही जानकारी रखने के लिए खजाना व लेखा बहिया तैयार की गयी थी। खजाने म जमा-खर्च होने वाली राशि का पूरा विवरण रखने के लिए भी खाताखजाना बहिया बनाई गई। इस प्रकार राज्य के वित्तीय प्रबन्ध को व्यवस्थित रूप दिया जाने लगा तथा आधुनिक अर्थों मे बजट निर्माण की नीव पडी।[4]

खजाना सदैव ही राज्य का एक आवश्यक अग माना गया है। बीकानेर राज्य म 'श्री रावले' तथा 'श्री चौतड़े', ये दो मुख्य खजाने थे। 'श्रीरावला' राज परिवार स सम्बन्धित खर्चों की पूर्ति करता था व मुख्य रूप स मुगल जागीरो आय इसम एकत्रित की जाती थी। श्री चौतडा खजाना', वतन जागीर की आय म, हासिल को मुख्य रूप स सग्रहीत करता था। राज परिवार के अलावा अन्य राज्य खर्चों की पूर्ति इससे की जाती थी। इसके 'अलावा 'कोट खजाना' भी था, जिसम बहुमूल्य रत्न, सोने व जडाऊ आभूषण जमा होते थे।[5] राज्य म 'श्री मडी' व मोदीखाने' के सहायक खजाने भी थे, जो अपने क्षेत्र से व विभाग स सम्बन्धित आय व्यय का हिसाब रखत थे। १८वी शताब्दी म 'श्री रावला' व 'चौतडा' का खजाना मिला दिये गय थ व इनका सम्मिलित नाम, 'श्री रावला खजाना' रखा गया। ये सभी खजाने आय व्यय का हिसाब व उसकी रसीदें रखते थे।[6]

---

१ महाराजा अनूपसिंघजी रो नाजर आनन्दराम रै नाम परवानो वि० स० १७४६/१६९२ ई०, १६७/१६

२ दयालदास ख्यात (प्रत्र०) २ पृ० २८३

३ परगना री जमा जोड री बही वि० स० १७२६ ५०/१६६९-६३ ई०, न० ६६ परगना रै जमा खच री वही, वि० स० १७५० ५१/१६६३ ६४ ई०, न० ३२

४ वित्तीय प्रबध का वणन भी सन् १६६६ १७५७ १७६५ व १८०६ ई० की बहिया पर आधारित है।

५ राजा क कोट खजाने का राज्य की बहियो म कोई विवरण नही प्राप्त होता है।

६ कोट रै सावै दायल री जमा खरच वही, स० १७१६/१६५६ ई०, खजाने री जमा खरच वही, स० १७५५ ५६/१६६८ ६६ ई० न० ३३, मण्डी रे जमा खरच बही, स० १७०१/१६४४ ई०, न० ७४—बीकानेर बहियात

शासक स्वयम् खजाने से सम्पर्क बनाए रखता था तथा अपनी अनुपस्थिति में दीवान को इसकी देखभाल का दायित्व सौंपता था।[1] खजाने का मुख्याधिकारी 'खजान्ची' होता था, जो दीवान के निरीक्षण में कार्य करता था। खजान्ची का सहायक 'दरोगा खजाना' कहलाता था तथा खजान्ची के अनेक गुमास्ते व 'तावीनदार' होते थे। 'लेखा व खजाना बहियां' तैयार करने के लिये 'लेखणिया' की नियुक्ति की जाती थी।[2]

आय तथा व्यय की राशि में अन्तर[3]

सन् १६६६ से १८१८ ई० तक १०० प्रतिशत के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन

वर्ष	आय	व्यय	अन्तर
१६६६	१००.००	१०० ००	०.००
१७५७	५६ ६६	५५ ८३	+३ ८६
१७६५	७१ ४४	८६ ७४	—१५ ३३
१८०६	५०७ १०२	५५७ ६४	—५०.८४

इस रेगिस्तानी राज्य की वित्तीय स्थिति में सबसे बड़ी दुखद घटना यह रही है कि यह अपने आय और व्यय के बीच सन्तुलन स्थापित करने में असफल रहा है। सदैव ही राज्य की आय उसके खर्चों की पूर्ति करने में पीछे रही है। १६ वीं शताब्दी के अन्त तक राज्य की प्रशासनिक योजनाएँ अपने पैर जमा चुकी थी पर आर्थिक अस्थिरता ने फिर भी उसका भविष्य संदिग्ध बना रखा था। प्राकृतिक अनुदारता यहाँ के विकास की सबसे बड़ी रुकावट थी। एक सुसंगठित प्रशासन को चलाने के लिये जिस निश्चित आय व दृढ़ आर्थिक स्थिति की आवश्यकता होती थी, उस सूखे व अकाल ने कभी पनपने नहीं दिया। मुगल जागीरों से प्राप्त अतिरिक्त आय ने राज्य की अर्थव्यवस्था को बहुत प्रोत्साहित किया, परन्तु उस बीच प्रशासकों ने वित्तीय स्थिति सुधारने हेतु स्थायी उपाय ढूंढने का यत्न न करके अवसर को गवां दिया। यहाँ के शासकों को मुगल साम्राज्य के विस्तार, उसकी दृढ़ता व सम्पन्नता ने निश्चिन्त बना दिया था। वे राज्य की आय व साधनों को विकसित करने के स्थान पर अधिक मुगल जागीरों को प्राप्त करने की लपेट में आ गये। फिर शासकों के बढ़ते हुए निजी

१ महाराजा अनूपसिंघ रो नाजर आनन्दराम रै नाम परवानो (पूव)
२ श्री रावलै नेवे, स० १७७५/१७२० ई०, न० २१२
३ देखिये रेखाचित्र

खर्चों व शानशौकत ने भी वित्तीय स्थिति को पक्ष म नही होन दिया। १६६६ ई० म जहाँ राज्य की आय १,८७,२६५) रुपये थी, वहाँ खर्च की कुल राशि २,१५,०६५) रुपये थी। इस प्रकार २७,८००) रुपये की कमी बनी हुई थी। १८ वी शताब्दी मे मुगल जागीरी आय की समाप्ति से कठिनाइयाँ और बढ़ी; क्योंकि मुगल सेवा के समाप्त हो जाने के पश्चात भी, थोडे समय बाद, पारस्परिक झगडो व पडोसियो के साथ सघर्ष ने सैन्य खर्चों म कमी नही आने दी। १८वी शताब्दी के प्रारम्भ म इस बात के प्रयास किये गये कि खर्च मे कटौती कर, उसका आय क साथ सतुलन स्थापित किया जाये। लेकिन ठाकुरो के विद्रोह, मारवाड के साथ युद्ध व प्रशासनिक ढिलाई ने खर्चों मे वाछित कमी को सम्भव नही होने दिया बल्कि बिगाड दिया।[1]

१७५७ ई० का बजट अवश्य कटौतियो का बजट था, जिससे सैनिक व प्रशासनिक खर्चे विशेषकर प्रभावित हुए थे। इस वर्ष जहाँ आय की राशि मे ४० ३१ प्रतिशत की कमी आई थी, वहाँ व्यय मे ४४ १७ प्रतिशत की गिरावट आई थी। तत्पश्चात स्थिति नियन्त्रण से बाहर जाने लगी। महाराजा गजसिंह के काल मे 'सीरबन्धीयो' के खर्च बध गये थे व साथ ही महीनदारो व कारखानो के खर्च मे भी वृद्धि होने लगी थी। इस बीच राज्य मे मुगल परगनो के स्थायी रूप स मिल जाने स आय मे वृद्धि हुई थी, लेकिन सैनिक व प्रशासनिक मागो न स्थिति म परिवर्तन नही होने दिया। महाराजा गजसिंह १८ वी शताब्दी का प्रथम व अन्तिम राजा था, जो किसी प्रकार वित्तीय स्थिति को नियन्त्रित कर सका। महाराजा सूरतसिंह के काल मे विद्रोह बढे व उत्तरी सीमा पर जार्ज थॉमस व सिक्खो क आक्रमण होने लगे, जिनस सैनिक खर्चों मे और वृद्धि हुई। १७५७ से १७६५ ई० के वर्ष तक सैन्य खर्च, महीनदारो का खर्च तथा कारखानो का व्यय क्रमश ३३ ४६ प्रतिशत, २०२ ५३ प्रतिशत व १६६ १६ प्रतिशत बढ गया था। इन वर्षों म, आय म भी हासल, पेशकसी, जकात म क्रमश १२२ ६३ प्रतिशत, १६७ ०६ प्रतिशत व २३५६ ७८ प्रतिशत वृद्धि हुई। इसके साथ ही 'घोडा रेख' व 'रुखवाली भाछ' नाम के नये कर भी लागू किये गये। परन्तु सन् १७५७ ई० की तुलना म, सन् १ ६५ ई० मे आय ११ ३७ प्रतिशत बढी, वहाँ व्यय मे ३० ८१ प्रतिशत की वृद्धि हुई। आय और व्यय का यह अन्तर अपने आप म काफी था व इस पाटन क भी पूरे प्रयास किये गये। राज्य की सभी सीमाओ म विस्तार हुआ व नये क्षेत्रो से राज्य की आय बढी।[2] परन्तु महाराजा के ठाकुरा के साथ सम्बन्ध ठीक न होने के परिणाम-

---

१ बीकानेर रै राठौडा री ख्यात महाराजा सुजाणसिंघजी सूं गजसिंघजी ताई पृ० ५ (पूव), दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० २१२ १५

२ दयालदास ख्यात (अप्र०) २, पृ० ३०५ ८

स्वरूप विद्रोहो मे तीव्रता और बढी तथा मारवाड पर आक्रमण ने भी सैनिक खर्चो को बढा दिया।[१] इनका समाधान करने के लिये करो की दरो मे वृद्धि कर दी गई तथा 'धान की चौथाई' कर को अधिक सख्ती से सभी निवासियो से वसूल किया गया। राज्य मे निवास करने वाली प्रत्येक जाति पर कर लगा दिये गये, जिससे सन् १८०६ ई० मे राज्य की अधिकतम आय हुई, लेकिन खर्च भी उसी तेजी से बढा। राज्य मे १६६६ ई० की तुलना मे जहाँ आय मे ५०७·१०२ प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहाँ खर्च मे भी ५५७ ६४ प्रतिशत की बढोत्तरी हुई। इस प्रकार आय-व्यय के बीच इस दृष्टि से ५० ८४ प्रतिशत का अन्तर बना रहा। यह अन्तर अपने आप मे बहुत विशाल था। एक कम साधनो वाले रेगिस्तानी राज्य के लिये अनेक कठिनाइयो को आमन्त्रित करने वाला था।

राज्य ने आय व व्यय के बीच सही सतुलन स्थापित करने के लिए मुख्य रूप से तीन उपाय जुटाये—प्रथम ऋण द्वारा, द्वितीय नये करो को लागू करके, तथा तृतीय खर्च मे कटौतिया करके।

इन सबम, सबसे अधिक, ऋण का ही सहारा लिया गया था। रेगिस्तानी क्षेत्र की अस्थिर आय को, व्यय के साथ, सतुलित करने का यह एक आशावादी उपाय था। राज्य मुख्य रूप स दो कारणो से ऋण लेता था, प्रथम आय की कमी को पूरा करने के लिए, द्वितीय, खर्च की आकस्मिकता को रोकने के लिए। आय की कमी को पूरा करने के लिए लिया गया ऋण, आगामी वर्षों मे नकद राशि के साथ चुका दिया जाता था, जबकि खर्च की आकस्मिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये 'खतो पर कर्जा'[२] लिया जाता था, जिसमे ऋण लेकर राजकीय आदेश का पत्र ऋणदाता को दे दिया जाता था और वह निर्धारित क्षेत्र से हासल व अन्य करो की वसूली करके, अपने ऋणो का भुगतान कर लेता था।[३] १८वीं शताब्दी मे जब सैनिक व प्रशासनिक व्यय के लिय खर्चों की नितान्त आवश्यकता पडी, तो राज्य ने 'खतो पर' पर कर्ज अधिक लिया था।[४] राज्य ने सार्वजनिक ऋण की मांग भी की थी। उस ऋण का हिसाब, प्रत्येक निवासी को ब्याज सहित राज्य को दिये जानेवाले करो की रकम म, व्यवस्थित कर दिया जाता था।[५] साधारणतया इन ऋणो पर २ से १० प्रतिशत के बीच ब्याज लगता

---

१ दयालदास ख्यात (अप्र०)२, पृ० ३०५ ८

२ ऋण क गिरवी पत्र—रावने खरच की बही, सं० १८०५/१७४८ ई०, न० २१३, ब्यूरोक्रसी इन राजस्थान पृ० ६३ ६८ (पूर्व)

३ कागदा की बही, न० ११, कार्तिक बदि ५, १८५७/ ८ अक्टूबर, १८०० ई०

४. वही, स० १८५६/१८०२ ई०, न० १२, पृ० ४४ ५१, सं० १८७४/१८१७ ई०, न० २३, पृ० ५४-५८

५ वही, ज्यष्ठ सुदि २, स० १८११/२८ मई, १७५४ ई०, न० १

था व साथ मे ऋण की हुण्डी होने पर 'हुडावण' भी चुकाना पडता था, जिसकी दर स्थान की दूरी पर निर्धारित होती थी।[1]

सन् १६७० ई० से सन् १६६२ ई० के बीच जब राज्य की कुल आय मे वृद्धि हो रही थी, तब भी तेईस वर्ष में तीन लाख छत्तीस हजार का ऋण लिया था।

ऋण की रकम की सूची

वर्ष	रकम (रुपयो म)	प्रतिशत (१०० के आधार पर)	आय के साथ सम्बन्ध (प्रतिशत मे)
१६६६	३५,६५१	१००·००	१६·१५
१७५७	८,०६०	२२ ४१	७·३४
१७६५	५२,४८०	१४५ ६७	३६ १६
१८०६	२,४८,२८६	६६०·६२	२६·०८

सन् १६६६ ई० मे ऋण की रकम का कुल आय के साथ अनुपात १६·१५ प्रतिशत का था। १८वी शताब्दी म ऋण की रकम व उसका आय के साथ अनुपात—दोनो मे वृद्धि हुई। केवल सन् १७५७ ई० का आय-व्यय का लेखा इसका अपवाद था, जबकि ऋण की रकम केवल ८०६०) रु० थी तथा आय के साथ अनुपात ७ ३४% का था। सन् १७६५ ई० मे ऋण का प्रतिशत बढकर ४५ ६७ प्रतिशत हो गया तथा सन् १८०६ ई० मे ऋण सन् १६६६ ई० के आधार पर लगभग सात गुना अधिक लिया गया। कुल आय के साथ सम्बन्ध मे भी अन्तर बढता जा रहा था। १७६५ ई० मे ऋण का अनुपात राज्य की कुल आय मे ३६·१६ प्रतिशत था; अर्थात राज्य के खर्च को पूरा करने के लिये आय केवल ६० ८४ प्रतिशत भाग को ही पूरा करती थी। यह अपने आप मे कोई स्वस्थ वित्तीय स्थिति नही थी। अगर किसी विपत्ति अथवा सघर्ष की स्थिति क वर्ष अचानक उठन वाली आवश्यकताओ के कारण ऐसा होता, तब भी बात थी, परन्तु ऋण की यह प्रभावशाली व दबाव की स्थिति तो राज्य के बजट का एक स्थायी अग बन चुकी थी। महाराजा सूरतसिह ने इससे छुटकारा पाने के लिये प्रचलित आय के साधनो को गहन किया तथा अतिरिक्त साधन भी जुटायें। लेकिन १८०६ ई० मे राज्य की अर्थव्यवस्था को पूरा निचोडने के बाद भी उस वर्ष कुल आय मे ऋण का अनुपात २६ ०८ प्रतिशत रहा। अत

1 रोक्ड बही, स० १७६६/१७३६ ई०, न० ३२३, कागदो की बही, न० १२, आसाढ़ बदि १३, १८५६/२८ जून, १८०२ ई०

यह स्पष्ट हो गया कि खर्च की असीमित मागो के सम्मुख ऋण से छुटकारा पाना कठिन है। लेकिन ऋण भी अपने आप मे कोई समाधान नही था, क्योंकि इसका ब्याज राज्य के आने वाले वर्षों के बजट को और बिगाड देता था। १६६६, १७५७, १७६५ ई० मे कुल खर्च का क्रमश ६ २८%, १५ ३६%, २८ ८५% ब्याज की रकम चुकाने मे चला जाता था।

राज्य के बजट को सतुलित करने के लिये तथा ऋण के दबाव से मुक्ति पाने के लिये प्रशासकों की यह नीति रही थी कि प्रचलित करो की दर बढा दी जाये तथा नये करो को लागू कर दिया जाये। वैसे भी, सैन्य व प्रशासनिक कारणो के फलस्वरूप उठने वाली अचानक मागो को पूरा करने के लिये अतिरिक्त कर, जिसे हूबूब[1] कहा जाता था, लागू कर दिया जाता था, जो उस माग की समाप्ति के साथ रोक दिया जाता था। कई बार, राज्य का जो क्षेत्र सघर्ष से प्रभावित होता था, वहा के निवासियो से अतिरिक्त कर वसूल किया जाता था। साधारण परिस्थितियो मे भी नये कर लगाने की प्रथा महाराजा रायसिंह के समय से ही चली आ रही थी। प्रारम्भिक अवस्था मे तो नये करो का प्रभाव प्रजा मे इसलिये नही पडा क्योकि वे केन्द्रीय सत्ता को कर चुकाकर 'पट्टायतो' व चौधरियो की माग से मुक्त हो जाते थे, अर्थात सर्व प्रथम केवल करो का हस्तान्तरण हुआ था और उससे केवल ठाकुरो व मध्यस्थो की स्थिति कमजोर पडी थी। शनै शनै केन्द्रीय सत्ता की माग उसके नियन्त्रण के साथ बढती गई व प्रजा पर करो का दबाव बढने लगा। महाराजा अनूपसिंह ने न केवल 'हासल' की दर मे वृद्धि की बल्कि रोकड रकम को कई नये व पुराने करो के साथ मिलाकर गठित किया। पट्टा क्षेत्र मे भी धुआभाछ जैसे कर लागू कर दिये गये। यह मुगल जागीरी आय मे ह्रास का काल था तथा जमीदारो' को अपने ही साधनो से अपनी स्थिति बनाये रखने की कष्टदायक स्थिति हो रही थी। उनका मुगल सेवा मे आकर्षण समाप्त हो रहा था। १८वी शताब्दी मे मुगल साम्राज्य मे प्रचलित अव्यवस्था के वातावरण मे मुगल जागीरो से निर्धारित आय की वसूली की सदिग्ध अवस्था के कारण यहा के शासक मुगल सेवा के दायित्वो से मुक्त होकर खर्च के दबाव को कम करने का प्रयत्न करने लगे थे। महाराजा गजसिंह ने अपनी सभी आवश्यकताओ तथा महत्वाकाक्षी योजनाओ के खर्च की पूर्ति पूर्णतया राज्य के साधनो से ही की। उन्होने पट्टायतो' पर 'पेशकसी' व 'जमा'[2] की राशि का और दबाव डाला। हूबूब अधिकतर वर्षो मे

---

१ विविध करो का नाम

२. राशि की जमा। उदाहरणार्थ बीदावतो का बधा

'गढ से नीचे उतरने लगी।'[1] कोरड, भुरज, घास, चारा की राशि रोकड रकम म बढा दी गई। धुआभाछ' भी प्रति गुवाडी २५ टका बढ गया। महाराजा सूरतसिह जिनके काल म राज्य का खर्च स्थायी रूप स पाच गुना अधिक बढ गया था, न प्रचलित करो की दरा म वृद्धि की, अस्थाई करो को स्थायी बना दिया तथा नय करो को लागू किया। हासल की दरो म प्रति हल व बीघा वृद्धि हुई। प्रति हल एक रुपये स तीन रुपये हो गया। 'भोग' की रकम १/८ स आकर १/३ व १/५ के बीच स्थिर हो गइ। 'खड खरच की भाछ', 'कीरायतो की भाछ', कामदारो की 'भाछ' व 'हवूब' जैस अस्थायी कर स्थायी रूप धारण करन लगे। खड खरच की भाछ' स्थायी रूप स प्रति गुवाडी २) रुपये वसूल होन लगी।[2] 'घोडा रेख', 'रुखवाली भाछ', कीयाडी जैस नय कर लागू किये गये व साथ ही शीघ्र उनकी दर भी बढा दी गई। रूखवाली भाछ' प्रति गुवाडी २) की दर से लागू हुई, जो २० वर्षो के भीतर ही प्रति गुवाडी १० रुपय पहुच गई। 'धान की चौथाई' को मराठो की भाति चौथ की तरह वसूल किया गया।[3] इस प्रकार अतिरिक्त कर व दर स राज्य की आय बढान के उपाय किये गये, पर इसस भी वाछनीय परिणाम नही निकला। करा की 'थकरायत'[4] स गुवाडिया इधर-उधर बिखरन लगी व गाव सूने होन लगे[5], परिणामस्वरूप भयभीत होकर महाराजा को करो म छूट की घोषणा करनी पडी व कई कर समाप्त करने पडे।[6]

तृतीय उपाय खर्च की कटौतियो म ढूढा गया। १७५७ ई० का बजट इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। इस बजट म खर्च का 'लेखा' केवल आठ महीने का बनाया गया। वेतन भागियो को एक वर्ष का वेतन केवल आठ महीन का वेतन चुकाकर पूरा किया गया। जो 'रोजीनदार' थे, उन्ह २० वर्ष स २५ दिन के बीच ग ही वेतन एक माह क रूप मे दिया गया।[7] ऐसा प्रतीत होता है कि वतन म कटौतिया आन वाले वर्षो म भी प्रचलित रही; जैसा कि १७६५ ई० के बजट स ज्ञात होता है। पर इन कटौतिया का प्रभाव भी खर्चो की असीमित

१ राजकीय बहियों म हवूब कर को लागू करत समय गाव के चोधरियो व पट्टायतो को यह निदश भजा जाता था कि अब हवूब (तज हवा का झोका) गढ स नीच उतरी है अर्थात् यह कर लागू हो रहा है आप सहयोग कर।—हवूब बहियां—बस्ता न० १

२. हवूब बही, स० १८३५/१७७८ ई०—हवूब बस्ता

३ धान री चोथाई की बही (पूव)

४ तीव्रता

५. कागदो की बही, न० २०, २१, २२ म इसस सम्बन्धित बहुत स पत्र हैं।

६ कागदा की बही, स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृ० १६१-६२

७ बही खाता खजाना सदर, स० १८१४/१७५७ ई०, भंण्डा सदर—बही मोदीखान रो ठोक री, स० १८१०/१७७३ ई०

मागो के आगे समाप्त हो गया।

ये सभी उपाय राज्य के वित्तीय सकट को सुलझाने म समर्थ नही हो पाये। ऋण सहारा लेना तथा नये करो को लाद दना प्रशासन की पराजित मनोवृत्ति म उठाये गये कदम थे। इसम तो वित्तीय समस्यायें और उलझ गई। ऋण के ब्याज का खर्च 'कारखाना जात' के समकक्ष पहुच गया, जो कि राज्य का दूसरा सबस बडा खर्च कहलाता था। करो म वृद्धि तो सीमित स्रोतो को सुखाने वाली सिद्ध हुई तथा राज्य की जनसख्या पर बडे विपरीत प्रभाव पडे। कटौतियो का उपाय एक पक्षीय था। जहा अधिकारियो व कर्मचारियो के वतन म कटौती हुई वहा राजपरिवार के निजी खर्चों म कोई कमी नही आई। परिणामस्वरूप राज्य म बाहर स योग्य व्यक्तियो का आना बन्द-सा हो गया। बल्कि ऐस विवरण मिलत है कि राज्य के 'मुतसद्दी' रोजगार के लिय बाहर जान को विवश हो गये।[1]

करो का दबाव

करो म अधिक वृद्धि भी, आय के साधनो को कम करने का कारण बन गई थी। साधारणतया कर वसूली के पीछे प्रशासन का यह आशय छिपा होता था कि उतना ही वसूल किया जाय, ताकि उत्पादनकर्त्ता पूरे वर्ष तक तथा आगामी आपत्ति वर्ष म बचे अश म अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके।[2] राज्य म एक फसल के उत्पादन तथा अकाल व सूखे की समस्या निरन्तर बन रहने के कारण उत्पादन म बच अश को निर्धारित करना भी कठिन था। किसी तरह की कठोरता राज्य निवासी को घर छोडने को विवश कर सकती थी। यद्यपि करो के सही दबाव के बारे म जानना कठिन है, क्योकि राज्य म विभिन्न व्यवसायो मे लग लोगो को पूर्ण आय की जानकारी देने म राजकीय बहियाँ मौन हैं। केवल भू-राजस्व कर के बारे म जानकारी मिलती है जो कि कुल उत्पादन का ४५ प्रतिशत वसूल किया जाता था।[3] हासल' की दर म इसके पश्चात् कोई विशेष अतर नही आया था। महाराजा राजसिंह व सूरतसिंह द्वारा कुछ दरो म वृद्धि से हासल ४६% तक पहुच गया।[4] सभवत यह इस कारण हुआ हो कि प्रशासन कृषि पर कर बढाकर काश्तकार व कृषि भूमि विस्तृत करने के लालच को नही समाप्त करना चाहता था और न ही उस अन्य व्यवसाय की

१ भैय्या सग्रह—भैय्या जठमल का पत्र—पोष बदि १० १९६६/ १ जनवरी १९१० ई०
२ कर्णाविलास पृ० १५ (पूव)
३ परगना रे जमा जोड री बही (पूव)
४ बही हासल री १७५७ ई० से १७९६ ई० तक—हासल बस्ता, स० १ २ ३—बीकानेर रिकार्डस

ओर झुकाना चाहता था। छूट के कागदों मे भी अधिक सुविधा 'हासल' मे ही दी गई थी। हासल की माग को स्थिर रखते हुए महाराजा गजसिंह व सूरतसिंह ने नये करो को लागू किया था जिनका दबाव नि सन्देह राज्य के निवासियो पर पडा होगा। महाराजा सूरतसिंह ने करो की दरो मे काफी वृद्धि कर दी थी। 'रूखवाली भाछ' जो प्रति गुवाडी २) रु० थी, वह १०) रु० की दर से वसूल की गई। राज्य के प्रत्येक निवासी को 'पेशकसी' की रकम शासक को चुकानी पडी। 'धान की चौथाई' को कठोरता से वसूल किया गया।[1] कर न देने वालो के गाव 'जबती' कर लिये गये।[2] इस वृद्धि से करो का दबाव निवासियो पर कितना बढ रहे थे।[3] इस काल मे कर वसूली भी एक टेढी खीर बन गई थी। परिणामस्वरूप आय मे वृद्धि के स्थान पर आय वसूली ही कठिन हो गई।[4] इस समय टॉड लिखता है कि करो की सख्ती से राज्य की जनसख्या बहुत कम हो गई थी।[5] विवश होकर महाराजा ने १८१६ ई० मे यह घोषणा करवाई कि करो को, बढती हुई दरो से वसूल नही किया जायेगा और न गाव जबती होगे। नये करो मे 'घोडा रेख' व 'रूखवाली भाछ' को छोडकर शेष सभी को समाप्त कर दिया गया।[6]

प्रशासनिक अव्यवस्था—१८वी शताब्दी मे विशेषकर अन्तिम चरणो मे फैल रही अव्यवस्था ने भी राज्य की वित्तीय स्थिति को बहुत बिगाडा। इन वर्षों मे हुवाला के स्थान पर मुकाता प्रणाली को बहुत प्रोत्साहन मिलने लगा। साथ ही कर्मचारी भ्रष्ट उपायो से अपनी आय बढाने लगे।[7] इन स्थितियो मे राज्य को आय वृद्धि से लाभ नही पहुंचता था। अन्त मे, राज्य मे यह कोई आवश्यक

---

१ कागदा की बही, वि० स० १८६७/१८१० ई०, न० १७, पृ० ९-११, ४८-४८, ७०-७५, ८१-८६, वि० स० १८७१/१८१४ ई०, न० २०, पृ० ३२-३९; कागदा की बही, वि० स० १८६६, ६७ व ७२ की बहिया म इससे सम्बन्धित अनेक पत्र हैं।

२. वही

३. कागदो की बही, वि० स० १८७१/१८१४ ई०, न० २०, पृ० २२२-३०; वि० सं० १८७२/१८१५ ई०, न० २१, पृ० ६६-७१, १०३-१०८, (कागदो की बही, वि० स० १८६१, ६६, ७१ व ७२ मे बहुत से पत्र इससे सम्बन्धित हैं) भैंय्या सग्रह म नोहर के हुवलदार भैंय्या नथमल के वि० स० १८७१-७२ के पत्र भी इस पर प्रकाश डालते हैं।

४. वही

५. टॉड—भाग २, पृ० ११-८२-८३

६. कागदा की बही, स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृ० १९१-९२

७. टॉड २, पृ० ११५७-५९; मुकाता के लिए देखिये—स्थानीय प्रशासन अध्याय में मुकाता प्रणाली

नियम नही रह गया था कि समस्त आय की राशि खजान म जमा की जाये और फिर खच के लिये वितरित की जाये। विभिन्न करो को वसूल करते समय जो लागत खच आता था वह उसी समय पूरा कर दिया जाता था। महीनदारो व रोजीनदारो को वेतन भी दे दिया जाता था। मण्डी व थाणो के सनिक खर्चो की पूर्ति भी हो जाती थी। बाकी बची राशि को ही खजाने म जमा कराया जाता था।[1] खतो पर व वेतन के बदले जब गाव की हासल प्रदान कर दी जाती थी तो वसूल की गई वास्तविक आय की जानकारी तब मिलती थी जब कोई उनके विरुद्ध शिकायत करता था।[2] १८वी शताब्दी क अ त म सीरबधियो का वेतन आय के विभिन्न स्रोतो से जोड दिया गया।[3] जब राज्य की सहायता के लिय नोहर व भादरा म सिक्खो की सना पहुची तो उनके खच का सम्ब ध घोडा रेख व रूखवाली भाछ की आय म जोड दिया जिन्हे ठाकुरो की विद्रोहजनक स्थिति से वसूल कर पाना कठिन हो रहा था। खाणगी की समस्या को लेकर अनेक उत्पात मच।[4] इस प्रकार राज्य की आय का बहुत बडा भाग खजाने को छुए बिना ही खच हो गया। व्यय को बिना व्यवस्थित किय आय के साथ जोड देने स समस्याए और भी जटिल हो गइ। आय म वद्धि के विकास की सारी सम्भावनाए मिट गइ।

---

१ बही हासल री वि० स० १८०४/१७४७ ई० वि० न० १८१०/१७५३ वि० सं० १८१४/१७५७ ई० बस्ता न० १—बीकानेर

२ कागदो की बही वि० स० १८२७/१७७० ई० न० ३ पृ० ४६ ४७ वि० स० १८६७/१८१० ई० न० १६ पृ० ३५ ३७ वि० स० १८७०/१८१३ ई० न० १६/१ प० १४० ४१

३ सीरबधी की बही वि० म० १८१०/१७५३ ई० न० १६४ बही सीरबधी की वि० स० १८५७/१८०० ई० बीकानेर (पूव) कागदो की बही वि० स० १८६८/१८११ ई० न० १ मे इससे सम्बन्धित बहुत से पत्र हैं।

४ कागदो की बही वि० स० १८६६/१८०९ ई० न० १५ प० २२२ २४ भय्या सग्रह भय्या नथमल के पत्र सावण सुद ७ ११ वि० स० १८७२/२० व २४ जुलाई १८०५ ई० बसाख बद १३/४ अप्रल १८०३ ई०

खाणगी का तात्पय यहा सनिको के वेतन व पेटीया (भत्ता) से है।

अध्याय ७

भू-राजस्व प्रशासन

भू-वर्गीकरण : अपनी प्राकृतिक विशेषताओ के कारण, बीकानेर राज्य की रेतीली भूमि कई वर्गों मे बटी हुई थी। इनमे 'धोरा,' 'मगरा', 'खारी पट्टी', 'ताल' व 'सूई', की भूमि का नाम उल्लेखनीय है।[1] शासन की भूमि-राजस्व-प्रशासन नीति के अन्तर्गत भूमि की उत्पादन क्षमता के अनुरूप, राजकीय हितों के सवर्धन के लिए, उक्त वर्गीकरण लागू किया गया था।[2] इसी आधार पर राज्य के चौरे व परगने भी, अपनी भूमि की उर्वर-शक्ति के आधार पर कई क्षेत्रो मे बाट दिये गये थे। उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के चौरे—नौहर व रीणी तथा परगना राजगढ व भटनेर, अवश्य 'सूई' भूमि की प्रधानता होने के कारण, इस प्रकार के भू-वर्गीकरण से प्रभावित नही थे।[3] इसके विपरीत राज्य के मध्यवर्ती दक्षिण व पश्चिम, क्षेत्र के चौरो—शेखसर, गुसाईंसर, जसरासर, मगरा, खारी पट्टी, पूगल और सदर की भूमि, उत्पादन क्षमता के आधार पर दो श्रेणियो मे विभाजित की गई। श्रेणिया पुन आगे अपनी विभिन्न श्रेणिया अथवा किस्मो मे बाटी गईं थी। प्रथम वर्ग मे जोत की भूमि आती थी, जो 'मजरुआ' के नाम से जानी जाती थी व जिसकी उत्पादन क्षमता साधारण रेगिस्तानी भूमि के स्तर की थी। 'मजरुआ' मे 'ताल' की भूमि उत्तम होती थी। 'मजरुआ' भूमि बरसात के पानी से सींच जाने पर 'बारानी' के नाम से पुकारी जाती थी। द्वितीय, श्रेणा की भूमि, 'पडत' व 'बजर' कहलाती थी। पडत भूमि वह थी, जो

---

१ धोरा—वह भूमि जो छोटे-बडे रेतीले टीबो की है।
मगरा—ककरीली, सख्त भूमि जो बीकानेर क दक्षिण भाग मे है।
खारी पट्टी—वह भूमि जिसमे क्षारीय तत्व हो।
ताल—समतल व कुछ सख्त भूमि जहा पानी एकत्रित हो जाता है।
सूई—समतल भूमि जो चिकनी भी होती थी।
—धान रे भोग री बही, स० १७३६/१६७९ ई०, न० ५७; फगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट, पृ० ३-४, सोढी हुकमसिंह—ज्योग्राफी ऑफ बीकानेर, पृ० ३-५

२. जी० एस० एल० देवडा—रेगिस्तानी क्षेत्र म कृषि भूमि व उसका वर्गीकरण—राजस्थान हिस्ट्री काग्रेस प्रोसिडिंग, १९७६

३. फेगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट, पृ० ४

साधारणतया तीन वर्षो के जोत के पश्चात् कुछ समय के लिये छोड दी जाती थी। वजर भूमि अधिक वर्षा होने पर ही काम आ सकती थी। मध्यवर्ती व दक्षिणी क्षेत्र के चीरो के कुछ गावो मे एक उत्तम किस्म की भूमि भी विद्यमान थी जिसे 'बेरी', 'चाही' व 'बाडी' के नाम से पुकारा जाता था। इसे कुओ, बावडियो व तालावो के पानी से सींचा जाता था। यहा की भूमि म अत्युत्तम भूमि का लाभ 'उन्नाव' की भूमि म था। जहा बरसाती नाले का पानी आकर भर जाता था। 'बेरी' भूमि की एक और किस्म भी थी, जिसमे सामान्यत. बेर की छोटी-छोटी झाडिया उगी होती थी।[1]

राज्य का क्षेत्रीय भू वर्गीकरण
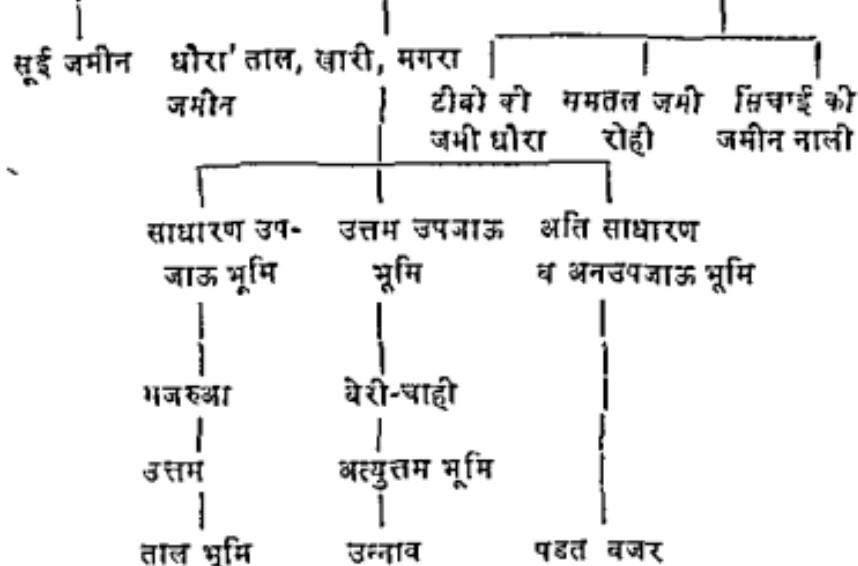
कृषि भूमि के दृष्टिकोण से अनूपगढ चीरा, दो भागो मे बटा हुआ था। चीरे का दक्षिण भाग रेतीले टीबो से भरा था, जहा की भूमि एक समान थी, परन्तु, उत्तरी भाग की भूमि अपेक्षाकृत अधिक उपजाऊ थी। इसकी तीन किस्मे थी—प्रथम, नाली की भूमि, जो उत्तम थी, जिसे पजाब से बहकर आने वाला

1 भोग री बही, वि० स० १७४६/१६६२ ई०, न० ६५, चीरा जसरासर बीदाहद, गुसोई-सर री लेखे री बही, वि० स० १७५०-५१/१६६३-६४ ई०, न० ३२, फेगन—सटलमेण्ट रिपोर्ट, बीकानेर, पृ० ३ ५, रजिस्टर देहात रियासत, बीकानेर, पृ० १-२०, जी० एम० एल० दवडा—रेगिस्तानी क्षत्र (बीकानेर राज्य) मे कृषि योग्य-भूमि व उसका वर्गीकरण, राजस्थान हिस्ट्री काग्रेस, १६७६

बाढ का पानी सींचता था, द्वितीय, 'रोही' की भूमि, जो 'सूई' व जोत योग्य थी, तथा तृतीय, धोरो व टीबो की भूमि, जहा की उपज साधारण थी।[1]

उत्पादन क्षमता के आधार पर प्रत्येक श्रेणी की भूमि पर अलग अलग दरो से लगान वसूल किया जाता था। उदाहरणत', 'बजर' से 'मजरुआ' का लगान मामूली सा अधिक होता था, लेकिन 'नाली' 'उन्नाव' व 'चाही' भूमि पर लगान की दर मजरुआ से ड्योढी थी।[2] भौगोलिक दृष्टि से, इस क्षेत्र की भूमि अधिक 'पडत' की भूमि थी। रेतीली अनुपजाऊ जमीन, सिंचाई के साधनो का अभाव, पीने के पानी की कमी, खाद्य फसलो का अधिक महत्त्व, प्राकृतिक विपदाओ की मार तथा जनसख्या की कमी के कारण राज्य मे कृषि के काम आने वाली भूमि अत्यन्त सीमित थी। बजर भूमि के साथ साथ जोत योग्य भूमि भी बिना जोत के रहती थी। यहा के निवासियो के सम्मुख, जोतने योग्य भूमि की उवरता को लेकर जोत के लिए प्राथमिकता का प्रश्न था।[3] भूमि की स्थिति को ध्यान मे रख कर ही राज्य मे बस्तिया बसी थी। जब कि अधिक उपजाऊ होने के कारण राज्य का उत्तर पूर्वी भाग अधिक घना बसा हुआ था। जबकि मध्य व दक्षिणी भाग छितरा हुआ बसा हुआ था तथा पश्चिमी भाग बहुत ही कम आबाद था।[4] अतएव चीरा व परगना मे जोत योग्य भूमि मे, जोती जाने वाली भूमि का अनुपात अलग-अलग था। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ५० प्रतिशत से अधिक जोत योग्य कृषि भूमि होने के बाद भी, जोती जाने वाली भूमि राज्य मे एक तिहाई से भी कम थी।[5]

---

१ अनूपगढ रा खत व गाव री बही, वि० स० १७५०/१६९३ न० ६८, अनोपपुरे हासल री बही, वि० स० १८०४/१७४७ ई०, न० २५, फगन—सेटलमण्ट रिपोर्ट बीकानेर पृ० ४ ५

२ राज्य मे प्रति हल जो लगान वसूल किया जाता था, उससे यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है। बजर भूमि मे प्रति हल २ रु०, मजरुआ मे प्रति हल ३ रु० तथा चाही व बरी भूमि मे ४ रु० व ५ रु० तक वसूल होता था।

—बही खालसे री वि० स० १८१२/१७५५ ई०, बस्ता न० १

३ जी० एस० एल० देवडा—रेगिस्तानी क्षेत्र (बीकानेर राज्य) मे कृषि योग्य भूमि व उसका वर्गीकरण राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस कोटा १९७६

४ राज्य मे अधिकतर गाव उन्हीं धोरों मे स्थित थे जहा कि भूमि समतल व कृषि योग्य थी। घने रेतीले धोरों में आबादी कम बसी हुई थी। उत्तर-पूर्व क्षेत्र के चीरे व परगने नोहर, रीणी व राजगढ मे जहा क्रमश १२४ १२६ व १२७ गांव थ जहां महाजन, सम्हा व पूगल में क्रमश ६९ २५ व २० गांव थे।

—हवूब बही, वि० स० १८१०/१७५३ ई० बस्ता न० १ भंय्या सग्रह—भंय्या देईदान के पत्र उदाहरणार्थ माघ सुदि ६, १८७७/१० फरवरी १८२१ ई०, पाउलेट पृ० ८६(पूर्व)

५ सेटलमेण्ट रिपोर्ट में राज्य की औसत जोती जाने वाली भूमि १५ प्रतिशत आंकी गयी है। अलग से परगना भटनेर मे यह ३५ प्रतिशत थी तथा चीरा अनूपगढ मे ३ प्रतिशत थी।—फगन—सेटलमण्ट रिपोर्ट, बीकानेर, पृ० ६ ७

भू-स्वत्व अधिकार

कागदों की बहियों के 'लिखत' व 'सनद' के 'कागद' राज्य मे काश्तकारों के भू-स्वत्व अधिकारो पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। राज्य-प्रशासन जिस काश्तकार को 'मोहरछाप लिखत कागद' या पट्टा प्रदान करता था, वह उसमे उल्लिखित भूमि पर जोतने के वंशानुगत निजी अधिकारो का प्रयोग कर सकता था।[1] केवल राज्य की नीतियों का पालन न करने पर अथवा राज्य-अपराधी घोषित होने पर ही उसे इन अधिकारो स वंचित किया जाता था।[2] अन्यथा प्रशासन उसके अधिकारो पर होने वाले प्रत्येक हस्तक्षेप से उसे बचाता था।[3] काश्तकार या 'आसामी' के संतान न होने पर उसकी पत्नी और उसके पश्चात् निकटवर्ती सम्बन्धी उस भूमि को जोतने के अधिकार पाते थे।[4] मृतक 'आसामी' की पत्नी द्वारा पुनर्विवाह करने पर उसके पूर्व पति की भूमि पर समस्त अधिकार समाप्त हो जाते थे तथा वह भूमि मृतक व्यक्ति के निकट के सम्बन्धियो के अधिकार मे चली जाती थी।[5] इस सब कार्यवाही मे गाव के चौधरी व पचायत की भूमिका निर्णायक होती थी तथा वे ही भूमि के नये दावेदारो को चुनकर मान्यता प्राप्त करवाते थे।[6] अगर कोई 'आसामी' किसी विपत्ति के मारे अपना खेत व घर छोडकर बाहर चला जाता था, तब भी उसके भू-स्वत्व अधिकार समाप्त नही होते थे। पाच-दस वर्ष पश्चात् उसके लौटने पर उसे अपने अधिकार वैसे ही प्राप्त हो जाते थे।[7] ऐसे भी विवरण आये है कि ४० वर्ष पश्चात् लौटने पर भी राज्य ने उसके पुराने अधिकारो को दिलाने मे सहायता पहुंचाई थी।[8] साधारणतया एक काश्तकार की लम्बी अवधि की अनुपस्थिति मे गाव का या बाहर का कोई काश्तकार गाव के चौधरी की अनुमति से उस भूमि को जोतने लगता था तथा वास्तविक स्वामी के आने पर उसे छोड देता था।[9] अगर [illegible] एक अविश्वसनीय लम्बी अवधि के पश्चात् गाव लौटता था [illegible]

---

१ कागदो की बही—स० १८२७/१७७० ई०, न० [illegible]
१८०० ई०, न० ११, पृ० २१६
२ उपर्युक्त—सं० १८२७/१७७० ई०, न० ३, [illegible]
३ उपर्युक्त—पृ० ४५
४ उपर्युक्त—न० ३, कागद माघ वदि ७, १८२[illegible]
५. उपर्युक्त—न० ६, कागद सावण सुदि १२, [illegible]
६ उपर्युक्त
७. उपर्युक्त—स० १८५७/१८०० ई०, न० ११,
पृ० ८१
८ उपर्युक्त—१८५७/१८०० ई०, न० ११, प[illegible]
९ उपर्युक्त—स० १८७४/१८१७ ई०, न० [illegible]

उसकी भूमि पर किसी अन्य के भू-स्वत्व अधिकार विकसित हो गये हैं तो वह राज्य द्वारा उसी माप की दूसरी भूमि प्राप्त करता था।[1]

काश्तकार (आसामी) अपना खेत किसी अन्य को जोतने के लिये किराये पर दे सकता था, ऋण के बदले रेहन पर चढा सकता था तथा आवश्यकता पडने पर बेच भी सकता था।[2] भूमि बेचने के अधिक विवरण प्राप्त नही हुए है; सभवत. इसका कारण बिना जोत के अधिक भूमि का पडा रहना है। यहा यह उल्लेखनीय बात यह है कि गाव के पट्टा या खालसा किसी मे भी बदलने पर 'आसामी' के भू-स्वत्व अधिकारो में किसी प्रकार का परिवर्तन नही आता था।[3]

जहा तक किसी 'आसामी' के अपनी जोत की भूमि पर अधिकारो का प्रश्न है, स्थिति काफी स्पष्ट थी, लेकिन उसके ये अधिकार और यहा तक विस्तृत थे, इसके लिये भू-अधिकारो के स्थानान्तरण के ऐतिहासिक क्रम को जानना आवश्यक है। साधारणतया राठौड राज्य के गाव स्वतन्त्र कृषक परिवारो के निजी खेतों व घरो से निर्मित थे तथा उनके अलग-अलग भूमि अधिकार स्पष्टतया विभाजित थे तथा किसी एक का दूसरे के अधिकारो मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही था। पर वे गाव जो राठौड आक्रमण से पूर्व के बसे हुए थे तथा जहा पर पूर्व 'भोमियों' व 'ग्रासियों' के परिवार का अधिकार रहा था; स्थिति कुछ विभिन्न थी। राठौड शासको ने इन गावो मे पुराने भोमियो व ग्रासियों के परिवार या 'बिरादरी' के उच्च भू-अधिकारो को स्वीकार करके ग्रामीण समाज मे उन्हे विशिष्ट स्थिति प्रदान कर दी थी। वास्तव मे उनके ऐतिहासिक दावो को मान्यता प्रदान करके राजनैतिक समझौता किया गया था। इसी 'बिरादरी' का मुखिया ही गाव का चोधरी बनता था।[4] राज्य पत्रो मे स्पष्टतया उल्लिखित होता था कि "गाव खालसा का है व जमीन जाटो की है।"[5] इन गावो मे जो अतिरिक्त कृषि योग्य भूमि होती थी उसे जोतने का सर्वप्रथम अधिकार 'बिरादरी' के सदस्यो को होता था। उनके न जोतने पर

१ उपर्युक्त १८५७/१९०० ई०, न० ११, पृ० १४४, २०१

२ कागदों की बही—न० ३, कागद वैशाख बदि २, १८२०/३१ मार्च, १७६३ ई०, कातिक सुदि १५, १८२०/२० नवम्बर, १७६३ ई०, आश्विन सुदि ७, १८२७/२६ सितम्बर, १७७० ई०, न० ३, ज्येष्ठ सुदि ४, स० १८५७/१ जून, १८०० ई० न० ११, ज्येष्ठ बदि ११, १८५६/२६ मई, १८०२ ई०, न० १२

३ उपर्युक्त—स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० २१६

४ जी० एम० एल० देवडा—सोशियो इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, पृ० ६४

५ कागदो की बही—न० १६, पृ० ३१, कागद सावण सुदि १२, स० १८६७/१२ अगस्त, १८१० ई०

उनकी स्वीकृति पाकर अन्य कोई जोत सकता था।[1] उनके परिवार के अतिरिक्त गाव के सभी काश्तकार इन्हे 'मलबा' नाम का कर चुकाते थे[2], जिसमे गाव का ठाकुर भी कोई हस्तक्षेप नही कर सकता था।[3] गाव की 'पडत' की भूमि पर भी इनके विशेषाधिकार सुरक्षित रहते थे।[4] ये लोग गाव मे पुर्नय की जमीन भी प्रदान कर सकते थे, जिसे राजा या ठाकुर भी चुनौती नही दे सकता था।[5] राठौड आक्रमण के बाद बसे गाव मे इस प्रकार के उच्च भू-अधिकारो से सम्पन्न वर्ग का अभाव था। वैसे १८वी शताब्दी मे राज्य ने अवश्य बस्तिया बढाने मे प्रोत्साहन देने के लिये नये 'चौधरी' व 'जमीदार' को भी 'मलबा' वसूल करने का अधिकार प्रदान कर दिया था।[6]

राज्य उन काश्तकारो के अधिकारो को भी सरक्षण प्रदान करता था जो किराये पर किसी अन्य का खेत जोतते थे। ये साधारणतया 'मुकाती' कहलाते थे।[7] गाव मे बाहर से आये कृषको को भी जो 'नचा' कहलाते थे, पहले 'मुकाते' पर खेत दिया जाता था।[8] भू-स्वामी व किरायेदार के बीच तीन साल का समझौता विख्यात था। उसको बीच मे भग करने का अधिकार किसी भी पक्ष को प्राप्त नही था।[9] जो काश्तकार किसी अन्य के खेत को जोतने योग्य बना लेता था, उसे उस पर तीन वर्ष तक कृषि करने का अधिकार मिल जाता था।[10] बदले मे वह भू-स्वामी को 'मुकाता' व 'मलबा' चुकाता था। 'मलबा' या 'मुकाता' न चुकाने पर किरायेदार को हटाया जा सकता था।[11] राज्य मे ऐसे विवरण भी प्राप्त हुए हैं जबकि ३० वर्ष तक भूमि को किराये पर जोता गया था।[12]

काश्तकार राज्य हित मे ही अपने समस्त अधिकारो का प्रयोग कर सकते

---

१ उपर्युक्त—स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृ० १६
२ उपयुक्त
३ उपर्युक्त
४ कागदो की बही, स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० २१०
५ उपर्युक्त—स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० ४७, स० १८७४/१८१७ ई०, न० २३, पृ० ३०
६ उपर्युक्त—स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० ४०, स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृ ४३
७ उपर्युक्त—स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, प० ७५
८ उपर्युक्त—स० १८३१/१८७४ ई०, न० ४, पृ० २२
९ उपर्युक्त—स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृ० ७५
१० उपर्युक्त
११ उपर्युक्त
१२ उपर्युक्त—न० ३, कागद अश्विन सुदि ७, १८२७/२६ सितम्बर, १७७० ई०

थे। उन पर राज्य-प्रशासन ने अपने हितो की पूर्ति हेतु कुछ नियन्त्रण लगा दिये थे। एक 'आसामी' अपने भू-स्वत्व अधिकारो का प्रयोग तभी तक कर सकता था, जब तक वह खेत जोतता रहे तथा राज्य को निर्धारित कर चुकाता रहे। अन्यथा उसका खेत 'जब्त' किया जा सकता था।[1] इस प्रकार प्रत्येक काश्तकार को, अपने अधिकार बनाये रखने के लिये राज्य-नीतियो का पालन करना आवश्यक था।

गाव की पड़त व चरागाह भूमि पर राजा का अधिकार होता था। उसका प्रयोग करने पर राज्य को निर्धारित कर चुकाने पडते थे।[2] राज्य व चौधरी की स्वीकृति के पश्चात् ही पड़त की भूमि को जोतने के योग्य किया जा सकता था।[3] गांव चौधरी इन सब स्थानों पर राजा के हितों की देखभाल करता था।

ग्रामीण समाज

राज्य के अधिकाश गाव किसी विशेष जाति या उपजाति से आबाद थे। यद्यपि उस गाव मे अन्य जातियां भी निवास करती थी; तथापि गाव अपनी निवास करने वाली प्रमुख जाति या उपजाति से ही जाना जाता था, जैसे सारणो का गाव, पूनीयो का गाव, पलीवालों का गाव, चारणो का गाव इत्यादि[4]। अगर गाव बराबर की सख्या की कई जातियों या उपजातियो से बस जाता था तो वह अनेक 'बास' (मोहल्लो) मे विभक्त हो जाता था।[5] प्रत्येक गाव के निवासी अपने भू-स्वत्व अधिकारो, राज्य के प्रति दायित्वो व सम्बन्धो तथा जाति विशेष को लेकर कई भागो मे विभक्त हो जाते थे। राज्य प्रशासन भी जब किसी गाव के निवासियो को सम्बोधित करता था इन्ही श्रेणियों को मस्तिष्क मे रखता था।[6] मुख्य रूप से गाव के समाज को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है, जो न केवल इस क्षेत्र के ऐतिहासिक क्रम को प्रदर्शित करते हैं बल्कि ग्रामीण समाज मे उनकी स्थिति तथा राज्य के साथ सम्बन्धों को भी स्पष्ट करते हैं।

प्रथम वर्ग अपने उच्च भूमि-अधिकारो अथवा विशेष अधिकारो को लेकर

---

१ उपर्युक्त—स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० ४४; स० १८७२/१८१५ ई०, न० १५, पृ० १३०—३५

२. उपर्युक्त—स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० २१५, ज्येष्ठ बदि ११, स० १८५६/२७ मई, १८०२

३. उपर्युक्त

४. फुटकर गांवा रे हासल री बही—स० १७४८/१६९१ ई०, न०, ५१, बीकानेर बहियात

५ उपर्युक्त

६. कागदों की बही—सं० १८३१/१७७४ ई०, न० ३, पृ० ३१

निर्मित होता था। इसमे गाव के चौधरी, पुराने भोमीया व ग्रासिया के परिवार तथा जमीदार व उनके 'बिरादरी' के लोग सम्मिलित होते थ।[1] राज्य प्रशासन भी जब कोई आदेश-पत्र गाववासियो को भजता था तो सबसे पहले इसी वर्ग को सम्बोधित करता था।[2] गाव मे प्रशासनिक दायित्वो के कारण भी इस वग की विशिष्ट स्थिति उभरी थी। साधारणतया ये 'चौधरियो' क नाम स कहे जाते थे।[3] जैसा लिखा जा चुका है, राठोड आक्रमण स पूर्व बस गांव के चौधरियो व उनके परिवार वालो के गांव की भूमि पर विशेष अधिकार माने जाते थे। इनकी 'खुदकाश्त' भूमि पर या तो कर वसूल नही किया जाता था अथवा रियायती दरो पर प्राप्त किया जाता था। ऐसी ही करो म सुविधा दूसरे 'चौधरियो' व 'जमीदारो' को भी प्राप्त थी। इनका अपनी प्रशासनिक सवाओ के बदले लगान म 'पचोतरा' प्राप्त होता था। गाव की पडत व चरागाह भूमि पर इनके परिवारो को विशेष सुविधायें प्राप्त होती थी। कई स्थलो पर तो चरागाह भूमि का प्रयोग करने पर कोई कर वसूल नही किया जाता था। 'मलबा' नाम का कर दूसरे काश्तकारो से वसूल करने से भी ग्रामीण समाज मे इनकी विशष व उच्च स्थिति का भान होता है।[4]

द्वितीय वर्ग 'आसामीयो' का था जो अपने भू स्वत्व अधिकारो तथा जाति विशष को लेकर फिर अनेक श्रेणियो म विभक्त थ। केवल भू स्वत्व अधिकारो तथा आर्थिक स्थिति पर इन्हे तीन श्रेणियो म बाटा जा सकता है। प्रथम प्रकार के वे 'आसामी' थे जो स्वयम् काश्त करते थे और कुछ भूमि को 'मलबा' व 'मुकाते' के बदले दूसरो को काश्त करने के लिये उठा देते थे। द्वितीय प्रकार के वे 'आसामी' थे, जो स्वयम् तो बहुत कम काश्त करते थे, लेकिन अधिकाश भूमि को 'मलबा' व 'मुकाता' पर दूसरो को काश्त के लिये दे देते थे। तृतीय 'आसामी' वे थे जिनके पास स्वयम् काश्त करने के लिये भूमि बहुत कम होती थी, वे दूसरो की भूमि पर 'मलबा' व 'मुकाता' दकर काश्त करते थे। इन सभी 'आसामीयान्' को राज्य प्रशासन द्वारा निर्धारित सभी करो को चुकाना पडता था। इस वर्ग मे आने वाले अधिकाश लोग काश्तकार जातियो—जाट, विश्नोई व माली इत्यादि थे, जिन पर करो का पूरा बोझ था। इन 'आसामियो' म एक वग रियायती

1 गांवा रे भोग व कुता री बही, स० १७४०/१६८३ ई० न० २०७, बीकानेर बहियात, मेघसिंह—तवारिख रियासत बीकानेर—पृ० ३ ५, सोहनलाल—तवारिख राजश्री बीकानेर—पृ० २३३ ३६
2 कागदा की बही—स० १८३१/१७७४ ई०, न० ३, पृ० ३१
3 उपयुक्त
4 विशेष अध्ययन के लिये स्थानीय प्रशासन का अध्याय देखिये।

अवश्य था, जो 'पसाइती' कहलाता था तथा सदैव के लिये कम दरों पर निर्धारित लगान को चुकाता था।[1]

इन 'आसामीयान्' के अतिरिक्त जातीय आधार पर विभक्त एक और वर्ग भी था, जिसके भू-स्वत्व अधिकार सुरक्षित थे तथा कम दरों पर राज्य को लगान चुकाते थे। इस 'आसामी' वर्ग में ब्राह्मण, साहूकार, राजपूत जाति के लोग सम्मिलित थे। इन्हें कईबार 'मुकाती' भी कहा जाता था, क्योंकि ये राज्य को समस्त करो के स्थान पर एक रियायती दर या निश्चित लगान दे देते थे।[2] इस प्रकार 'आसामियों' के इस वर्ग पर करो का कम बोझ था। वे जातियां, जो काश्त के साथ-साथ अन्य व्यवसायों में भी जुटी होती थी, जैसे सुथार, सुनार, तेली, लुहार आदि, ये सभी अपने भू स्वत्व अधिकारों के साथ कम दर का लगान चुकाती थी। ये 'चाकरी आसामीयान' कहलाते थे।[3] अपनी निर्धारित लगान-व्यवस्था के कारण ये 'मुकाती' व 'बोलीयार' भी कहलाते थे।[4] 'चाकरी' 'आसामीयान' में वे लोग भी सम्मिलित थे जो राज्य को सैनिक सेवा प्रदान करते थे। इन 'आसामीयान्' से कोई कर वसूल नहीं किया जाता था।[5] राजपूतों में बीका राजपूत, जिनका राजवंश से रक्त का सम्बन्ध था तथा चारण जाति के लोग विशेष संरक्षण के कारण अपने भू-स्वत्व अधिकारों को सुरक्षित रखते हुए किसी प्रकार का लगान नहीं चुकाते थे। इन 'आसामीयान्' के अधिकारों को 'कब्जा अकरान' कहा जाता था।[6] चारणों की छूट का कारण उनका बीकानेर राज्य की कुलदेवी करणी माता की जाति से सम्बन्धित होना था।[7]

तृतीय वर्ग, 'रैत' अर्थात् रैय्यत का था, जो निम्न वर्ग के थे तथा अधिकांशत दूसरों की भूमि पर काश्त करते थे। कृषि व्यवसाय में श्रमिकों की पूर्ति इसी वर्ग से होती थी। ये चौधरियों तथा 'आसामीयां' के खेतों पर काम करते थे। इनके पास जो भूमि होती थी उस पर यह अवश्य एक 'आसामी' की भांति अधिकारों का प्रयोग करते थे। पर उस भूमि का क्षेत्रफल कम होता था। गांव

---

१. विशेष अध्ययन के लिए स्थानीय प्रशासन का अध्याय देखिये।

२ फुटकर गावा रे हासल री बही, सं० १७४८/१६९१ ई०, न० ५१

३ बही हासल र लेखे री, स० १७४८/१६०१ ई०, न० ७, उदाहरणार्थ खेदडा गाव का हासल देखिये, कागदो की बही, सं० १८७१, न० २०, पृ० ४६

४ बही हासल रे लेखे री, स० १७४८/१६९१ ई०, गावो के हासल म मुकाती व बोलीयार की सूची देखिये।

५ कागदो की बही, स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० ३, न १२ कागद वैशाख सुदि ६, १८५६/८ मई, १८०२ ई०

६ मोहनलाल—तवारिख राजश्री बीकानेर, पृ० २३३-६६

७ वही

ठाकुर व चौधरी इन्हें गाव की सेवा करने के बदले भी जीविका हेतु भूमि प्रदान करते थे, जिन पर उनका अधिकार 'कब्जा कमीनान' के नाम से जाना जाता था।[1] इनकी भूमि पर भी कम दर से लगान वसूल होता था तथा अपनी भू-राजस्व वसूली प्रणाली के नाम से ये 'मुकातीं' व 'बोलीयार' भी कहलाते थे।[2] कई बार व्यावसायिक जातियो जैसे सुथार, लुहार व तेली के भू-अधिकारों को भी 'कब्जा कमीनान' मे सम्मिलित कर लिया जाता था।[3]

ग्रामीण समाज मे अनुदान भूमि का लाभ उठाने वालो के वर्ग का भी विशिष्ट सामाजिक महत्त्व था। राज-दरबार, पट्टायत व गाव के चौधरी द्वारा ब्राह्मणो, वैरागियो, विभिन्न सम्प्रदायो के साधुओ तथा गाने-बजाने वाले भाट व मिराशियो को जो अनुदान भूमि प्रदान की जाती थी, उसे 'डोहोली' कहा जाता था।[4] राज्य म 'डोहोली' प्राप्त करने वालो मे ब्राह्मण मुख्य थे, जो गाव मे धार्मिक व सामाजिक कार्यों को सम्पन्न कराने के बदले यह अनुदान प्राप्त करते थे।[5] इस पुनंथ की भूमि पर भी वशानुगत अधिकारो का प्रयोग किया जाता था। केवल पट्टायत द्वारा प्रदत्त 'डोहोली' को नया पट्टायत छीन सकता था।[6] 'डोहोली' की भूमि को किराये पर उठाया जा सकता था, रहन पर चढाया जा सकता था, पर उसे बेचा नही जा सकता था।[7]

गाव मे बाहर से आकर बसने वालो को नवा' कहा जाता था। गाव का 'पट्टायत' व चौधरी इन्हे बसने के लिये सुविधाएं प्रदान करता था। वे' मलबा' व 'मुकाता' देने के बदले कृषि करते थे। धीरे-धीरे नई भूमि पर इनके अधिकार स्थापित हो जाते थे व राज्य द्वारा मान्यता मिलने के बाद ये 'आसामी' कहलाने लगते थे।[8]

मुख्य फसलें

राज्य के रेगिस्तानी वातावरण के कारण, अधिकाश भाग मे एक ही

१. गावा रे रकम वसूली की बही, स० १७५६/१६९९ ई०, न० ६४; बही खालसा रै गावा की—स० १७६१/१७०४ ई०, न० १०१ बीकानेर बहियात
२ बही हासल री लेखे री, स० १७४८/१६९१ ई०, न० ७—देखिये सूची मुकाती व बोलीयार की
३ सोहनलाल—तवारिख राजश्री बीकानेर, पृ० २३३-३५
४. कागदो की बही—न० १, फागुण बदि ६, १८११/२ फरवरी १७५५ ई०; न० ११, वैशाख बदि ३, १८५७/१३ अप्रेल, १८०० ई०
५ परवाना बही—स० १८००/१७४३ ई०; पृ० २३२-३५, भैय्या सग्रह—कागद १८६७/१८२० ई० का
६ कागदो की बही— स० १८५७/१८०० ई०, न० ११ पृ० ४७
७ वही—स० १८११/१७५४ ई०, न० १, पृ० ६०-६२; स० १८२७/१७७० ई०, न० १३, पृ० ४१
८. वही—स० १८३१/१७७४ ई०, पृ० २२

फसल—खरीफ होती थी और वह भी पूर्णतया वर्षा पर आधारित थी । राज्य के मध्य व पश्चिमी क्षेत्र एक ही फसल से भाग थे ।[1] खरीफ फसल भी मुख्यत. खाद्यान फसल ही थी, जिस यहा 'धान' कहा जाता था । इसम मुख्य फसल बाजरा की थी तत्पश्चात् मोठ का महत्त्व था ।[2] अन्य फसलो म ग्वार, ज्वार व मूंग थे, जो राज्य के प्रत्येक भाग म बोये जात थे । मूग अवश्य रीणी, पूनीया व खदडा चीरा म कम बोयी जाती थी जबकि ज्वार परगना भटनेर म सबस अधिक बोयी जाती थी ।[3]

राज्य के उत्तरी व पूर्वी क्षेत्र के चीरा व परगनो क सीमित क्षेत्र म अवश्य दो फसलो की खेती होती थी । रबी की फसल के लिये समतल भूमि व अच्छी वर्षा का [illegible]

थी ।[4] रा[illegible]

से सिचाई की व्यवस्था थी, रबी की फसल बोई जाती थी ।[5] रबी की मुख्य फसलो मे गेहू, जो, चना व सरसो मुख्य थे । रबी की फसल का सबसे अधिक उत्पादन *परगना भटनेर मे होता था ।*[6] वैस रबी की फसल बहुत कम मात्रा मे बोई जाती थी । १७वी शताब्दी के अन्तिम दशक क उपलब्ध विस्तृत आकडा से विदित होता है कि राज्य के उत्तरी-पूर्वी चीरो—रीणी, नोहर व गघोली म रबी की फसल का कुल उत्पादन उस समय की कुल खरीफ फसल के उत्पादन की तुलना म मात्र क्रमश ० ०९%, ० २९%, ० २६% था । परगना भटनेर *म यह अवश्य २९ ५५ प्रतिशत था । इसक बाद चीरा मगरा के ९ गाव म* जहां रबी की फसल होती थी, वहा यह २९ ०० प्रतिशत था ।[7]

व्यापारिक फसलें भी यहा अनउपजाऊ भूमि व सिचाई के साधनो के अभाव म कम बोई जाती थी । केवल समतल व चिकनी भूमि म कपास व तिल बोया जाता था ।[8] १६६० से १७०० ई० के बीच के उपलब्ध आकडो से ज्ञात होता है

---

१ क्रोप पैटर्न एण्ड रूरल सैटलमेण्ट इन नोर्थ वेस्ट राजस्थान—शोधपत्र, राजस्थान हिस्टर, सेमिनार, जयपुर, १९७८
२ फगन—पृ० ३-६
३ वही हासल रे लेखे री, सं० १७६८/१६४१ ई०, न० ७, वही परगनारी, स० १७४९ ५७/१६९२-१७०० ई०, न० १—बीकानेर बहियात
४ फेगन—पृ० ३ ६
५ वही हासल रे लेखे रो, सं० १७४८/१६९१, न० ७
६ वही हासल रे लेखे री स० १७४८/१६९१ ई०, वही, परगना री, स० १७४९-५७/१६९२-१७०० ई०
७ वही
८ फगन—पृ० ३-६

कि खरीफ फसलो म व्यापारिक फसलें खाद्यान फसलो की तुलना म २ प्रतिशत स भी कम उत्पादित होती थी।[1] चीरा मगरा के तालाबो स सिचाई क्षेत्र क गावो म कपास की खेती अधिक होन स अवश्य इसकी स्थिति सम्मानजनक थी। इन दस वर्षों म हुए कुल उत्पादन म कपास का उत्पादन ८२ ७० प्रतिशत था।[2] जो कि रेगिस्तानी वातावरण तथा आज के समय म इस फसल की मात्रा स आश्चर्यजनक-सा लगता है। खैर, साधारणतया व्यापारिक फसलो की महत्त्वहीन स्थिति के कारण इस क्षेत्र म एक दृढ व्यापारिक आधार नही तैयार हो सका।

कृषि-पद्धति

सिचाई क साधनो क अभाव म रतीली भूमि की कृषि-पद्धति अत्यन्त सरल थी। यहा की हल्की रेतीली भूमि म खरीफ फसल क समय केवल एक ही हल की जोत काफी होती थी। उसी स जमीन पोली हो जाती थी और उसी समय बीज भी बो दिया जाता था। जोत पर लगाया गया श्रम यहा इतना कम था कि एक ऊट पाच बीघा भूमि को एक दिन म बाह[3] सकता था। दो 'हलो' का प्रयोग कुछ सख्त भूमि के लिए किया जाता था, जिसम एक दिशा म चलाया हुआ पहला हल जमीन को पोली करन के लिए चलाया जाता था व दूसरा हल बीज डालन के लिए। इसम अधिक उत्पादन होता था व प्रशासन भी 'दोलहड' हल क नाम पर अधिक लगान वसूल करता था।[4] काश्तकार तब तक खेत को जोतता रहता था, जब तक कि उसकी उर्वर शक्ति समाप्त नही हो जाती थी। ऐसा होने पर वह नयी भूमि को 'तोडता' था। इसी कारण राज्य म काश्तकार के पास बजर व पडत की भूमि अधिक होती थी।[5] रबी के लिए उपयुक्त 'सूई' व चिकनी भूमि म, उत्पादन के लिए, तीन हलो की आवश्यकता होती थी। पहले हल स भूमि समतल की जाती थी, द्वितीय से भूमि पोली की

---

१ बही हासल रै लेख री, स० १७४८/१६९१ ई०, बही परगना री स० १७४६ ५७/ १६९२-१७०० ई०

२ वही

३ वाहना, फगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट, पृ० ७

४ परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० २३२ कामदो की बही, वि० स० १८३१/१७७४ ई० न० ४ पृ ३१, वि० स० १८३८/१७८१ ई०, न० ५, पृ० ५४ इकलिये (एक) हल पर तीन रुपये तथा दोलहडे (दो) हलो पर चार रुपये लगते थे।—कामदो की बही वि० सं० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृ० ३६

५ फगन—सटलमेण्ट रिपोर्ट, बीकानेर, पृ० ६, एग्रीकल्चरल एप्लाइसेज एम्लायड इन वेस्टन राजस्थान—जी० एस० एल० देवडा, शोधपत्र—हिस्ट्री आफ इण्डियन साइस एण्ड टेक्नोलोजी सेमिनार इनसा, दिल्ली, फरवरी, १९८०

जाती व तृतीय मे जाकर बीज बोया जाता था। रबी की फसल में 'भूमि को 'उमरा' कहा जाता था।[1] काश्तकार खरीफ व रबी दोनों फसलो के समय जोतते वक्त इस बात का अवश्य ध्यान रखता था कि प्रति वर्ष हल की दिशा बदल दी जाये।[2] परगना भटनेर तथा चीरा मगरा मे नालो व तालाबो के पानी से सिंचाई की व्यवस्था जुटाई जाती थी।[3]

हासल निर्धारण के नियम व विधि

भू-राजस्व, जिसे 'हासल' कहा जाता था। 'भोग' (कृषि कर) तथा 'रोकड' (अन्य कर) से मिलकर बनता था। खालसा भूमि मे वसूल की जाने वाली हासल की पूरी रकम राज्य खजाने म जमा होती थी। पट्ट व 'सासण' के क्षेत्र का 'भोग' पट्टायत व 'आसामी' के पास चला जाता था। 'रोकड' की रकमो मे कर, कुछ शासक को व कुछ पट्टायतो को प्राप्त होते थे। मुख्य रूप से भूमि के स्वरूप, फसल की विशेषता तथा काश्तकार की जाति को ध्यान मे रखकर हासल का, निर्धारण किया जाता था। हासल की दर के 'निर्धारण का कोई एक नियम नही था। राज्य हासल मे निर्धारण की कई पद्धतिया विद्यमान थी; बल्कि एक गाव मे सभी प्रचलित प्रणालिया देखने को मिलती हैं। ये प्रणालिया गाव मे सामूहिक रूप मे भी लागू की जाती थी तथा इनके अनुसार प्रत्येक काश्तकार स लगान, अलग-अलग भी तय किया जाता था। राज्य जब गाव मे लगान हेतु आदेश पत्र भेजता था तो विभिन्न प्रणालियो से सम्बन्धित व्यक्तियो को प्रणाली के नाम से सम्बन्धित करता था। उदाहरणार्थ, 'पसाइती', 'मुकाती', 'बोलिया', 'हाली' आदि।[4]

राज्य मे विभिन्न भू-राजस्व निर्धारण पद्धतियो का विकास भी राज्य की शक्ति के उत्थान के साथ क्रमशः उसी प्रकार हुआ था। सर्वप्रथम राजा का नियन्त्रण केवल खालसा भूमि तक ही सीमित था। वहा भी वे पुराने ग्रामीणो व 'भोमियो' से एक बधी रकम ही लगान के रूप मे ले पाते थे तथा वह बंधी रकम 'भोमोये' व 'ग्रासीये' अपने गाव मे जोत के आधार पर वितरित करके वसूल करते थे। शनैः-शनैः राजा के कामदारो' ने खालसा गावो मे जाकर भूमि का निरीक्षण करके लगान निर्धारित करना प्रारम्भ कर दिया। प्रशासन का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप राजा रायसिंह के काल से प्रारम्भ होता है। उन्होने हलो पर भी एक निर्धारित कर लागू कर दिया था। महाराजा अनूपसिंह ने हासल के साथ-

---

१ फेगन—सेटलमेण्ट रिपोर्ट, बीकानेर, पृ० ६,

२. वही, पृ० ६

३ वही, पृ० ६

४. कागदों की बही, सं० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० ३१

साथ 'भाछ' को भी लागू किया। य १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक तो विभिन्न प्रणालियाँ विकसित हो गई थीं; जिसका परिणाम यह निकला कि प्रशासन का भूमि स प्रत्यक्ष सम्बध हो गया, मध्यस्थों की स्थिति कमजोर पडी लेकिन कृषकों पर भी आर्थिक दबाव बढ़ गया।

कूता—राज्य में 'कूता' प्रणाली का प्रचलन सबसे पूर्व हुआ। जब म प्रशासन का कृषि के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित होने लगा तब म इस प्रणाली का प्रयोग किया गया। इसके अनुसार हासल या 'भोग' (माल) का निर्धारण राज्य का 'कामदार' या 'हुवलदार' एक अन्य अधिकारी 'सहणा' की सहायता स खड़ी फसल के उत्पादन को आंकता या 'कूतता' था तथा कुल उत्पादन को निर्धारित करता था। कूतने म पिछले वर्षों के आंकड़ों से भी सहायता ली जाती थी। कूतने म काश्तकार की बात को भी सुना जाता था तथा उसके विश्वास न जमने पर वह राज्य के दीवान य राजा को अपनी शिकायत भी पहुंचा सकता था। 'कूतते' समय काश्तकार की आर्थिक अवस्था पर भी विचार किया जाता था। कुल उत्पादन निर्धारण होने के पश्चात् 'भोग' राज्य लगान के रूप म उसके ७, ८, ६वें हिस्से के रूप में वसूल कर लिया जाता था। १७वीं शताब्दी के अन्त तक यह भाग साधारणतया कुल उत्पादन के १/५ या १/६ के रूप म वसूल होने लगा। कुछ कृषकों स 'तिहाविया' व 'चौथाई' अर्थात् १/३ व १/४ रूप म वसूल किया जाता था, यह उसकी भूमि की उत्पादन शक्ति पर निर्भर होता था। १८वीं शताब्दी के अन्त में यह भाग 'आधीया' अर्थात् १/२ के रूप म पहुंच गया लेकिन इसका दबाव प्रत्येक काश्तकार पर नहीं पड़ा तथा विरोध होने पर इसको समाप्त भी कर दिया गया।[1] 'भोग' के साथ-साथ 'बीजाकर'[2] भी वसूल किये जाते थे। जिनमें 'नालो',[3] सिराण',[4] 'खूटा',[5] 'हुजदार',[6] 'ठाकुरजी',[7] 'डेरा खर्च' आदि मुख्य थे।[8] ये कर नकदी व जिन्स दोनों में वसूल किये जाते थे। टीबों की भूमि में ये अन्य कर १ मन जिन्स से अधिक वसूल नहीं होते थे जबकि समतल व उपजाऊ भूमि में इनका अतिरिक्त दबाव मन तक पहुंच जाता था। 'सिराण' कुल उपज का ०.५६ प्रतिशत 'खूटा'

---

१ कागदो की बही, स० १८६६/१८०६ ई०, न० १६, पृ० १८
२. अन्य कर
३ तिल पर लगा कर
४. भू राजस्व वसूली क अधिकारियों के खान पान के खर्चे की लगान का कर
५. भू-राजस्व के अधिकारियों के पशुओं का चराई कर
६. अधिकारियो के ताबीनदारो के खान-पान खर्च की लागत का कर
७ देवताओं की पूजा आदि के खर्च की लागत का कर
८. पड़ाव खर्च

१ १४ प्रतिशत, हुजदार ० ७८ प्रतिशत जिन्स के रूप म प्राप्त किया जाता था। ठाकुरजी का 'भोग' १ मन के पीछे १ या २ सेर के रूप म होता था। भोग' को ले जाने के लिये यातायात खर्च के रूप म १० मन के पीछे २) रुपये 'सूखडा' के नाम स वसूल किये जाते थे। इसके अतिरिक्त जब भोग' का नगदी म बदला जाता था तब गाव का चौधरी व पटवारी भी अपने हिस्से 'कायल' व 'घूघरी' के नाम से पाते थे।[1]

१७वी शताब्दी के अन्त तक इस भोग म 'हासल' व भाछ' नाम के दो कर और जोड दिये गये व इस प्रणाली के अन्तर्गत वसूल किया जाने वाला काश्तकार हाली' कहलाने लगा। इस कारण यह 'हाली हासल' प्रथा भी कहलाती थी। हासल के रूप म प्रति काश्तकर से प्रति हल १ रुपया लिया गया जो बाद म 'बच्च' व पक हल मे बटाकर क्रमश तीन व चार रुपया वसूल किया गया। बच्च हल' का तात्पर्य यहा भूमि को एक बार जोतने से है (इकलीया) व पक हल का तात्पर्य यहा भूमि को दो बार जोतने से है (दोलडा) हासल की यह दर बढ़ती घटती भी रहती थी। यह कर देजहाली के नाम से भी लिया जाता था। जब इसम रकम'— धुआ', देशप्रठ, 'कोरड आदि जुड जाती थी तो यह हासल मे 'भाछ' के नाम म वसूल होती थी। धुआ प्रति गुवाडी एक रुपया पच्चीस टका तथा 'देशप्रठ' प्रति गुवाडी चार आना की दर से वसूल होता था।[1] कई बार इसम 'बग भाछ' भी जुड जाती थी, जब प्रति बैल १॥), प्रति गाय १), प्रति ऊट ३॥) तथा प्रति बैलगाडी २॥) रुपया वसूल होता था। ये सभी कर सदैव लागू नहीं होते थे [illegible] साथ लागू नहीं होते थे। दरो म परिवर्तन थोडा-बहुत अवश्य होता रहता था।[2]

इन करो की सरचना के अन्तर्गत काश्तकार अपने व अपने [illegible] पर जितनी भूमि चाहे जोत सकता था। अधिक भूमि जोतने [illegible] की रकम म ही वृद्धि होती थी, बाकी रोकड के कर [illegible] थे। रेगिस्तान म बिना जोन की भूमि को जोतने के लिए यह [illegible] था।

हलगत

राज्य के उत्तर-पश्चिमी भाग को छोड कर, [illegible] जाता था, शेष समस्त क्षेत्र के गावो म हलगत [illegible] था। इसका काश्तकार 'पसाईती' कहलाता था और [illegible]

---

१ खालसा गाव री बही वि० स० १७२६/१६६६ ई०, [illegible] वि० स० १७३६/१६७६ ई०, न० ५३, भाग रा [illegible] न० ६५, खालसा री बही वि० स० १८१२/[illegible] ई०, [illegible]
२ वही
३ हवूब बही, वि० स० १८५१/१७९४ ई०, [illegible]

रियायती करदाता था। यह रियायत राज्य आदेश द्वारा काश्तकार को प्राप्त होती थी। इसके अनुसार, प्रत्यक पसाइती' जोत क लिए प्रयोग म लाय हलो पर रकम चुकाता था। प्रत्येक बैल स जोते गय 'इकलीय' हल पर ३) रु० तथा ऊट स जोते गय इकलीय हल पर ५) रु० वसूल किये जात थ। 'दोलडे' हल का प्रयोग करने पर रु० १) अधिक दना पडता था। ब्राह्मण तथा वैश्य जाति स इकलीय बैल स जोत गये इकलीय हल की दर रु० २) तथा ऊट स रु० ४) थी। यह हलगत' की रकम कहलाती थी। कई बार 'हलगत' की रकम सामूहिक रूप मे जमा' के नाम पर गाव पर लागू कर दी जाती थी। पसाईती को हाली की तरह ही, प्रति गुवाडों व गुवाडी के प्रति व्यक्ति पर धुआ भाछतथा देसप्रठ' वसूल किया जाता था। इनसे भी कभी-कभी अग भाछ हालियो की तरह ही ली जाती थी। 'भोग' इन्हे नही चुकाना पडता था।[1] पसाईती भी निर्धारित रकम चुका कर, अपनी शक्ति के बल पर, जितनी चाहे जमीन जोत सकता था, और उसस कोई अन्य कर नही लिया जाता था।[2] कृषि क्षेत्र को विस्तृत करने का यह एक कारगर उपाय था। राज्य गाव क 'पटवारियो' 'साहणो' तथा सैनिको को भी पसाईती' बनाकर भूमि प्रदान करता था। 'हलगत' को भी कई बार 'मुकाते' या ठेके पर चढ़ाकर वसूल किया जाता था।[3]

मुकाता तथा बोलीया

यह एक तरह की अनुबन्ध व्यवस्था थी। इस पद्धति के अन्तर्गत अधिकतर चौधरी क परिवार के सदस्य, ब्राह्मणो, साहूकारा, कारीगरो, शिल्पकारो तथा 'कमीनान' की जोत की भूमि आती थी। इसम काश्तकार हल पर और भोग पर हासल नही चुकाता था, बल्कि चौधरी' व साहणा' के द्वारा खेत का मूल्याकन करने के पश्चात्, निर्धारित की गई रकम को चुकाता था, जो साधारणतया ३) से ५) के बीच म होती थी और 'जमा' कहलाती थी। इसके साथ धुआ', देसप्रठ' वसूल किया जाता था और यह सब 'रकमे' मिल कर 'रोकड' कहलाती थी। कभी-कभी इनस भी 'अग भाछ' वसूल होता था। वास्तव मे इस प्रथा का नाम 'बोलीयार' था, जो दोनो पक्षों द्वारा बातचीत के माध्यम से लगान निर्धारण का

---

१ गुसाईसर रे हासल री बही, वि० स० १७४६/१६६२ ई०, न १० बही हलगत री वि० स० १८१७/१७६० ई०, बस्ता न० १, बही खालसा रे गांवा री, वि० स० १८२७/१७७० ई० बस्ता न० १, हवूब बही, वि० स० १८५१/१७६४ ई०

२ परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० २३२, कागदो की बही, वि० स० १८३१/१७७६ ई०, न० ४ पृ० ३१, वि० स० १८३८/१७८१ ई०, न० ५, पृ० ५४

३ बही हासल रे लेख री, स० १७४८/१६६१ ई०, परवाना बही वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० २३२, कागदो की बही, वि० स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृ० २५

कार्य करती थी। लेकिन जब निर्धारित रकम आने वाले वर्षों में भी अनुबन्ध के रूप में वसूल की जाने लगी तो यह मुकाती प्रथा कहलाने लगी। जिनका लगान प्रतिवर्ष आका गया वह 'बोलीयार' तथा जिनका पिछले अनुबन्ध की रकम से वसूल किया गया वह 'मुकाती' कहलाने लगा।[1]

[illegible]

मुकाते की निर्धारित रकम, जो कि साधारणतया १) से ३) होती थी, लेकर अपनी

[illegible]

द्वितीय उपाय मे काश्तकार मुकाता व हासल की सम्पूर्ण रकम लेकर अपनी भूमि अन्य काश्तकार को देता था। इस अवस्था मे 'आसामी' को प्रशासन को, हासल व अन्य रकमें चुकानी पडती थी।[3] अगर गाव का चौधरी तथा पुराने आसामी अपनी भूमि 'मुकाते' पर चढ़ाते थे, तो मुकाते के साथ-साथ 'मनवा' भी वसूल करते थे।[4] राज्य द्वारा गाव को मुकाते' पर देने पर, हासल की रकम 'मुकाते' के रूप मे वसूल की जाती थी। ऐसी अवस्था मे मुकाती, जोकि सम्पूर्ण गाव के हासल को वसूल करने का अनुबन्ध लेता था, चौधरी के साथ मिलकर विभिन्न पद्धतियो के अनुसार 'रोकड रकम' व 'भोग' को वसूल करता था।[5] गाव मे नये बसने वालो से भी कम दर के 'मुकाते' पर हासल वसूल किया जाता था; ताकि 'नवों' को बसने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।[6] दूसरे गाव के 'आसामियो' से भी खेत वाहने पर 'मुकाता' दरों पर रकम वसूल की जाती थी।[7]

---

१. कालू रे हासल री वही, वि० स० १७५४/१६६७ ई० न० ६३, गावा रे रकम वसूली वि० स० १७५६/१६६६ ई०, न० १२३; वही खालसा रे गावा री, वि० स० १८२७/१७७० ई०; हवूब वही, वि० स० १८५१/१७६४ ई०

२ कागदा की वही, वि० स १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृष्ठ ३८; भैम्या सग्रह-पत्र, आसाढ़ सुद १० वि० स० १८७२/१६ जुलाई, १८१५ ई०.

३ कागदो की वही, वि. सं० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० ३१; वि. स० १८३१/१७७४ ई० न० ४, पृ० ३८

४. उपर्युक्त—वि० सं० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ २६, ३४, वि० सं० १८६७/१८१० ई०, न० १६, पृ० २६

५. कागदो की बही, कार्तिक बदि ६, वि० स० १८४६/१० अक्टूबर, १७८६ ई०, न० ८, कार्तिक बदि १२, वि० स० १८५४/१७ अक्टूबर, १७६७ ई०, न० १०, भैम्या सग्रह-पत्र आसाढ़ सुदि १०, वि० स० १८७२/१६ जुलाई, १८१५ ई०, देखिये परिशिष्ट, न ७

६. हवूब वही, वि० सं० १८५१/१७६४ ई०

७. कागदो को बही, वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० ३१; वि० स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृष्ठ २६, ३८

बीघेडी

यह राज्य की एक अन्य मुख्य प्रणाली थी, जो उत्तर व उत्तर-पूर्वी चीरो व परगनो मे अधिक प्रचलित थी। इसके अनुसार, प्रत्येक काश्तकार की जोती गई भूमि को माप लिया जाता था और फिर प्रत्येक बीघे पर नकद कर वसूल कर लिया जाता था, जो 'बीघेडी' कहलाता था। मापन के लिए बीस अगुल की डोरी का पैमाना प्रयोग म लिया जाता था जिसकी लम्बाई लगभग ६६ हाथ की होती थी तथा वह बीकानेरी बीघा कहलाता था। यह मापन प्रत्येक तीन साल पश्चात् होता था।[1] प्रति सौ बीघा हासल की दर ६) रु० थी।[2] मापन की अवधि के बीच के काल मे अगर कोई काश्तकार अपनी निर्धारित भूमि से कम भूमि पर खेती करता था, तब भी उसको पूर्व निर्धारित 'बीघेडी' ही चुकानी पडती थी। और अगर वह अधिक भूमि पर खेती करता था, तो भी बीघेडी की दर पूर्ववत् ही रहती थी। इस प्रकार कम भूमि जोतने पर काश्तकार को तथा अधिक भूमि जोतने पर राज्य को नुकसान होता था। चीरा रीणी, नोहर व सीहागोटी म इस प्रणाली के अन्तर्गत होने वाले लाभ व हानि को गाव का चौधरी वहन करता था, क्योकि वह मापन के बाद सम्पूर्ण गाव की जमाबधी करवा लेता था, जिससे कर देने का उत्तरदायित्व उसके कन्धो पर आ जाता था। अत जोत भूमि की कमी का नुक्सान व जोत वृद्धि का लाभ उस ही प्रभावित करता था।[3] रबी की फसलो व व्यापारिक फसलो पर यही प्रणाली लागू की जाती थी।[4] काश्तकार को इसके बाद कई बार भोग व सहायक कर भी चुकाने पडते थे। उस रोकड रकमो म अन्य पद्धतियो की भाति, 'धुआ भाछ', 'देसप्रठ', 'अग भाछ' चुकाने पडते थे।[5] इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्येक काश्तकार को अपनी सामर्थ्य से कृषि भूमि बढाने पर हासल भी अधिक देना पडता था, क्योकि 'सूई क्षेत्र' मे पडत' की भूमि कम थी।

१. राज्य मे बीकानेर बीघा की लम्बाई एक समान नही रहती थी। प्रति चीरा इसमे एक दो हाथ का अतर आ जाता था। पर डोरी बीस अगुल की ही रहती थी। बीकानेरी बीघा एक एकड का लगभग ३६ भाग होता था।—परवाना बही, वि० स० १८००/१७४३ ई०, पृ० २३२, कागदो की बही, वि० स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृ० १६

२. कागदो की बही, वि० स० १८३८/१७८१ ई०, न, ५, पृ० ४७, वि स० १८७३/ १८१६ ई०, न० २२, पृ० १७

३ फेगन—सेटलमेण्ट-रिपोर्ट, बीकानेर, पृ० १४-१५

४. कागदो की बही, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृष्ठ ६१, वि० स० १८६६/ १८०६ ई०, न० १५, पृष्ठ ३८७

५. रीणी री हासल भाछ बही, वि० स० १७५२/१६९५ ई०, न० १२, बीकानेर बहियात, कागदो की बही, स० १८३८/१७८१ ई०, न० ५, पृ० ४५; भोग की दर कुता प्रणाली की भाति ही १/३ से १/८ तक वसूल की जाती थी।

अन्य प्रणालियां

'भीत की भाछ' आवासीय मकानों पर लगाया जाने वाला भू-राजस्व कर था। इसका कृषि भूमि तथा इसका जोते गये हल से कोई सम्बन्ध नही था। यह प्राणाली राज्य के पश्चिमी 'चीरो' मे प्रचलित थी, जहा वर्षा की कमी के कारण खेती की बहुत कम संभावनाए रहती थी और बहुत ही सीमित मात्रा मे खेती होती थी। इन चीरो मे रहने वाले निवासी कृषि कार्य से अधिक पशु-पालन व्यवसाय पर निर्भर रहते थे। प्रशासन इस तरह के गावो मे प्रत्येक घर से हालियो के समान एक निश्चित रकम 'धुआ,' 'देसप्रठ' तथा 'अगभाछ' के रूप मे वसूल करता था। गाव के 'चौधरी' व 'जमीदार' पर इसको उगाहने का दायित्व होता था। इसके अलावा 'दतोई' प्रणाली का भी वर्णन आता है पर उसका स्पष्ट विवरण उपलब्ध नही होता है।[1]

अन्य कर व जमाबंधी

हासल को वसूल करते समय आसामियो व रैय्यत द्वारा हुवलदार व चौधरी को अन्य कर या 'वीजा रकमें' भी चुकानी पडती थी। ये 'वीजा रकमें' कर-निर्धारण की सभी पद्धतियो के साथ लागू होती रहती थी, जब तक कि राज्य इन करो की 'छूट' न दे देता था। जो पसाईती इन करो से मुक्त होते थे, वे 'पसाईती बेतलब' कहलाते थे। इनमे मुख्य रकमे 'ठाकुर जी, 'गुसाई जी', 'मेला, पाडखती', 'हाकमों वर लाजमा', 'कोरड', 'भूरज', 'धास', 'चारा', 'सेहत', 'झाल',[2] 'जखीरा',[3] 'हथमेलो',[4] 'तलब', 'डेरो',[5] 'आसोमी', 'खरच',[6] 'दुलो' और 'चोपलणी'[7], इत्यादि होती थी। ये रकमे गाव के 'स्तर' पर निर्धारित की जाती थी। इसमे 'ठाकुरजी', 'गुसाईजी', 'आसामी झाल', 'तलब', प्रति गाव १) रु० लिया जाता था। गाव की आर्थिक स्थिति कमजोर पडने पर।) की दर से वसूल होता था। 'डेरो खरच' व अन्य खर्च अधिकारियो व कर्मचारियो की

---

१. भीत की भाछ—खालसा रै गोवारी वही, सं० १८१२/१७५६ ई०; हवूब वही—स० १८५१/१७६४ ई०; भैय्या पत्र—माघ सुदी ६, स० १८७७/१० फरवरी, १८२१ ई०; फेगन—पृ० १६; दतोई के लिये—कागदो की वही, सं० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृ० ३६, ४१, ४७

२ लकड़ी काटने का कर तथा पेडो की उपयोगिता का लाभ उठाने का कर

३. सूखी लकड़ी काटने का कर

४. कर्मचारियो का खर्च कर

५. डेरा खर्च कर

६. कार्य में लगे व्यक्तियों का खर्च कर

७. कागज-स्याही खर्च कर—बाकी करों का अर्थ पहले स्थान-स्थान पर दिया जा चुका है।

लागत के आधार पर वसूल होते थे। 'दुधमेला' प्रति गाव १॥) रु० तथा 'दुलो चोपलणी' कागज स्याही के खर्च के आधार पर वसूल होता था। इसके अलावा 'रोजगार'-रकम निर्धारित होने पर वसूल की जाती थी। इसमे हुवलदार' 'कामदार,' 'साहणा' लेखणिया' आदि का पारिश्रमिक लाजमा"[1] के रूप म वसूल होता था। माथ मे साहणो के दीवाली जीमण"[2] तथा 'मले"[3] के कर भी प्रत्येक गाव से १) रुपये के हिसाब से वसूल किये जात थ।

ये सभी रकम हासल मे रोकड के साथ मिलाकर वसूल की जाती थी। सभी रोकड रकमो की 'जमाबधी' पहले ही हो जाती थी। केवल भोग को हुवलदार व चौधरी फसल कटने के समय निर्धारण करके वसूल करता था। 'रोकड रकम' व बीजा रकमो' म या तो प्रत्येक कर की दर पहले निर्धारित हो जाती थी, जिस गुवाडियो की गिनती करके वसूल कर लिया जाता था अथवा प्रत्येक गाव पर सामूहिक रूप मे लागू कर दिया जाता था, जिसे गाव वालो म बराबर वितरण करके वसूल कर लिया जाता था।[4]

हासल उगाही-व्यवस्था

राज्य के दीवान का प्रमुख कर्त्तव्य हासल निर्धारण स वसूली तक व उससे होने वाली आय पर पूरी दृष्टि रखना होता था। उसकी नियुक्ति के समय शासक यह आशा करता था कि वह हासल की आय म वृद्धि करेगा। भू-राजस्व की वसूली के लिए नियुक्त सभी हुवलदारो की नियुक्ति उसी के द्वारा होती थी अथवा वह उनकी नियुक्ति के लिए शासक को सलाह देता था। 'भोगता व सासण' के क्षेत्र म काश्तकारो के स्वार्थों का दायित्व भी वही सभालता था। 'भोगता से 'पेशकसी' की रकम तथा उनके क्षत्र म चीरा स्तर की रोकड रकमो' को वसूल करता था। हासल से सम्बन्धित सभी विवादो का फैसला देने के लिए वह अन्तिम अधिकारी था।[5]

दीवान के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए उसका एक दफ्तर गठित किया गया था जिसम खालसा गावो के प्रबन्ध के लिए 'दीवान ए तन, अधिकारी

---

१ प्रबध खर्च

२ दीपावली के अवसर पर की गई रसोई

३ उत्सव त्यौहार

४ कागदो की बही, स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० ३२, स० १८५७/१८०० ई०, न० ११ पृ १६, स० १८७४/१८१७ ई०, न० २३ पृ० ८

५ कर्मचन्द (पूव) पृ ६५, महाराजा अनूपसिंघजी रो आनदराम नाजर रै नाम परवानो, वैरियस डिसीजन रिकॉर्डेड अण्डर दी आफिस ऑफ दी दीवान आफ बीकानेर, मोहता रिकार्ड स—(पूर्व)

उसका मुख्य सहायक होता था।[1] 'दफ्तर का हुवलदार' इसके विभाग का मुख्य अधिकारी होता था। चीरे व खालसा के हुवलदार, दरोगा समय-समय पर नियुक्त होने वाले अस्थायी अधिकारी होते थे, जबकि गाव के 'चौधरी', 'पटवारी' आदि स्थाई अधिकारी थे। हासल तय करने व वसूल करने म इन सभी की समान भूमिका होती थी। 'दफ्तर का हुवलदार' हासल से सम्बन्धित सभी पत्रो को 'लेखणियों' की सहायता से तैयार कराता था व खालसा के हुवलदारो व चीरो के हुवलदारो को दीवान के आदेश से भेजता था। आदेश-पत्रो मे करो का विवरण, उनकी दरें, हुवलदार व उसके सहायको व अधीनस्थो का 'रोजगार' व उनका सेवाकाल आदि के विषय मे स्पष्टत. लिखा होता था। हासल मे छूट या मुआफी के पत्र समयानुसार तैयार करके सम्बन्धित अधिकारियो को सूचनार्थ भिजवा दिये जाते थे। गाव के 'चौधरी', 'पटावरी' व 'जमीदार' को भी इस सम्बन्ध मे दफ्तर से सूचना भेजी जाती थी तथा आसामियो व 'रैत' को भी करो को देने के लिए आदेश भेजा जाता था। हासल से होने वाली आय का समस्त विवरण तैयार करने का दायित्व 'लिखणीयें' का होता था। हासल की जमा-राशि को खजान्ची के पास भेजकर 'श्री रावले' मे जमा करवा दिया जाता था।[2]

राज्य मे हासल व रोकड रकमो की वसूली के लिए खालसा व पट्टे के गावो मे 'हुवाना' व 'मुकाता' प्रणालिया प्रचलित थी।

हुवाला-व्यवस्था

खालसा गावो की यह हुवाला-व्यवस्था चीरो मे प्रचलित हवाला-व्यवस्था के समान ही थी। इस प्रणाली के अन्तर्गत, हासल व उससे सम्बन्धित करो को वसूली के लिए, निश्चित समय हेतु, निर्धारित रोजगार पर हुवलदार की नियुक्ति की जाती थी। कर-भुगतान का तरीका व हासल की दर, दफतर के हुवलदार द्वारा पहले ही निर्धारित कर दी जाती थी। हुवलदार गाव के चौधरी, 'पटावरी' व 'साहणे' के साथ मिलकर हलो को गिनकर, कुल 'धीघो को' देख कर, तैयार फसल को 'कूतकर' या बांट कर, भोग को निर्धारित करता था, और निश्चित निर्धारित हासल व अन्य लागो को वसूल करता था। छूट व मुआफी के 'सनदी' पत्रो को देखकर वह उनके अनुसार कार्य करता था।[3]

हुवाला सौंपते समय राज्य की ओर से 'सनद' द्वारा हुवलदार को यह आदेश दिया जाता था कि वह हासल 'हसावो' लेगा, 'कृषि भूमि' मे वृद्धि करेगा, गाव

---

१ दयालदास ख्यात, (प्रकाशित) भाग २, पृ० १२८
२ हासल बही, स० १८१२/१७५५ ई०, बस्ता न० १
३. कागदो की बही, वि० सं० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृ० २-३

वसाये रखेगा तथा आवादी को वढाने का प्रयत्न करेगा।[1] उसी समय सम्बन्धित गाववासियो को जो सूचना भेजी जाती थी उसम उनक लिए यह आदेश होता था कि उनके गाव म अमुक नाम के व्यक्ति को हुवलदार के रूप म नियुक्ति की गयी है। अत वे समस्त कर अब उस ही अदा करें। कर देने म वे न तो कोई चोरी करें और न ही किसी प्रकार की बाधा ही उपस्थित करें। हुवलदार व गाव के 'आसामी' व 'रैत' दोनो मे यह आशा की जाती थी कि वे ईमानदारी से अपना कर्तव्य निभायेंगे।[2]

साधारणतया हुवाला सोपा' अवधि एक वर्ष के लिए निश्चित की जाती थी। पहले के हुवलदार को ही अगल वर्ष फिर नियुक्त किया जा सकता था। एक गाव का एक हुवलदार होता था, लेकिन एक हुवलदार को एक से अधिक गाव भी सौपे जा सकते थे। कभी कभी दो व्यक्ति मिल कर भी एक गाव का हुवाला लेते थे। हुवलदार के साथ कार्य करने के लिए उसके सहयोगी के रूप म 'दरोगा' को भी भेजा जाता था, पर उसकी नियुक्ति तभी होती थी, जबकि हुवलदार का कार्य-क्षेत्र अधिक विस्तृत होता था।[3] परगनो के खालसा गावो मे हुवलदार के साथ 'अमीन' व 'पोतदार' की नियुक्ति भी की जाती थी, जो भूमि का मापन, कर-निर्धारण व कर-सग्रह का काय करत थे।[4]

मुकाता-व्यवस्था

इसम राज्य-प्रशासन खालसा गावो का एक निश्चित रकम के वदले अनुबन्ध के रूप मे 'मुकाती' को कर उगाहने के अधिकार दे देता था। 'मुकाती' को भी यह आदेश दिया जाता था कि वह जमाबधी स अधिक कर वसूल नही करेगा। पूर्वी चीरो मे बीघेडी व्यवस्था के अन्तर्गत गाव का चौधरी जमाबधी के आधार पर गाव को 'इजारे' या 'मुकात' पर ले लिया करता था। मुकाते की रकम के निर्धारण के समय, गाव की जमाबधी व मुकाती के लाभ को सामने रखा जाता था। कोई भी व्यक्ति राज्य को उमस अधिक रकम दकर पहले वाले

---

१ कागदो की बही, वि० स० १८२०/१७६३ ई०, न० २ पृ० २-३

२ कागदो की बही, वि० स० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृ० १ ६, बही खालसे रै गावा री वि० स० १८३०/१७७३ ई०, न० १, बीकानेर, वि० स० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृ० २, ३१

३ कागदो की बही, वि० स० १८२०/१७६३ ई०, न० २, पृ० १-६, बही खालसे रै गावा री वि० स० १८३०/१७७३, न० १

४ हासल भाछ परगना वेणीवाल रे गावा री, वि० स० १७४५/१६८८ ई०, न० २, राजगढ़ रे पूनीया रे परगने रे हासल लेखे री बही, वि० स० १७४६/१६९२ ई०, हासल भाछ भटनेर री बही, वि० स० १७५२/१६९५ ई०, न० ११—बीकानेर बहियात

मुकाती से मुकाती अधिकार छीन सकता था। उसे केवल पूर्व मुकाती को रोजगार रकम के नाम पर एक निश्चित राशि देनी पड़ती थी, जिसे राज्य प्रशासन समझौता करते समय पहले से ही पूर्व मुकाती से निश्चित कर लेता था।[1] १८वीं शताब्दी में बहुत से हुवलदार 'मुकाती' बन गये। वे प्रशासन को निश्चित रकम देकर गाव का हासल उगाहने का दायित्व प्राप्त करने लगे।[2] आन्तरिक विद्रोहों, विदेशी आक्रमणों से उत्पन्न प्रशासनिक अव्यवस्था के परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई थी, क्योंकि राज्य संकट काल में आय को पहले ही प्राप्त करके निश्चिन्त होना चाहता था। उसकी यह आवश्यकता 'मुकाती' ही पूरा कर सकते थे।

अधिकारी वर्ग

हासल वसूली के लिये राज्य दो प्रकार के अधिकारी नियुक्त करता था। प्रथम, वे अधिकारी जो राज्य प्रशासन द्वारा समय समय पर नियुक्त करके भेजे जाते थे। इनमें हुवलदार व दरोगा मुख्य थे। द्वितीय वंशानुगत अधिकारों से युक्त स्थानीय अधिकारी होते थे, जिनकी नियुक्ति से पूर्व शासक की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक थी। इनमें 'चौधरी, पटावरी व साहणा' मुख्य थे। इन समस्त अधिकारियों के कार्य, विशेषाधिकार तथा आय के साधन वही थे, जो चौरे व स्थानीय प्रशासन के अधिकारियों व कर्मचारियों के थे। बल्कि ये ही चौरों व स्थानीय प्रशासन के अधिकारी होते थे, जिनका उल्लेख पहले विस्तृत ढंग से हो चुका है।[3]

भोगता

पट्टायत अपने पट्टे के क्षेत्र में काश्तकारों से हासल के रूप में 'भोग' वसूल करने के कारण 'भोगता' कहलाता था। 'भोगता' के गावों में हासल-वसूली का कार्य हुवलदारों के स्थान पर उसके 'गुमास्ते' करते थे। वे गाव के चौधरी के साथ मिलकर हासल निर्धारण, उसकी वसूली के तरीके तथा उसकी दरें निर्धारित करके वसूली किया करते थे।[4]

---

१ कागदों की बही, वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृ० ३१ ३८, वि० स० १८३३/१७७४ ई० न० ४, पृष्ठ २६, ३८, भैय्या सवई-पत्र पासाढ वद १०, वि० स० १८७२/ ११ जुलाई, १८१५ ई०

२ पगन—पृ० १४ १७

३ देखिये स्थानीय प्रशासन का अध्याय

४ कागदों की बही, वि० सं० १८३१/१७७४ ई०, न० ४, पृष्ठ २६

पट्टा क्षेत्र मे हासल-निर्धारण की सभी पद्धतिया विद्यमान थीं। उनकी दरें भी खालसा गावो से अधिक नही होती थी। भोगता हाली स 'देज' व 'भोग', पसाईती से हलगत, मुकाती से मुकाता व बीघेडी म प्रति बीघा दर वसूल करता था।[1] लेकिन हासल की अन्य रोकड रकमे जैसे धुआ, देसप्रठ 'अग भाछ, मेला' पाडपती, 'गुमोईजी' ठाकुरजी आदि चीरे के हुवलदार आकर वसूल करते थे।[2] 'कोरड', 'भुरज', 'घास' व 'चारे' की रकम पट्टायत को मिलती थी।[3] पट्टायत अपनी गुमोईजी, ठाकुरजी, मेला 'पाडपती', डेरा खरच आदि की रकमे अलग से वसूल करता था। कामदारो का खर्च हाकमो के रोजगार के स्थान पर लिया जाता था।[4]

भोगते के क्षेत्र मे 'भोग' व निर्धारित रकमो की वसूली पूर्णतया 'भोगता' के हाथो मे थी, लेकिन राज्य प्रशासन के उस पर कई नियन्त्रण थे। भोगता निर्धारित हासल मे अधिक वसूली नही कर सकता था और न ही मनचाही दरें बढ़ा सकता था।[5] खालसा के काश्तकारो को वह अपने यहा नही बसा सकता था।[6] बिना किसी उचित कारण के काश्तकार की जोत मे वह 'खेचल'[7] नही कर सकता था और न ही उसके भूमि अधिकारो को समाप्त कर सकता था।[8] उस गाव के चौधरियो को मलबा दिलवाना पडता था।[9] वह अपनी आर्थिक आवश्यकताओ के लिए काश्तकार के खेतो को 'रेहन' पर नही रख सकता था।[10] ऐसा सब करने के लिए उसे प्रशासन की ओर से कडे आदेश दिए जाते थे।

---

१ उपर्युक्त—वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ ३४, वि० स० १८३१/१७७४ ई० न० ४, पृष्ठ २५, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० २४८

२ चीरा जसरामर बीदाहद, गुमोईसर लेखे री बही, वि० स० १७९९/१७४२ ई०, न० ३१, भाछ री बही, वि० स० १७४६/१६८९ ई०, न० ४६—बीकानेर बहियात, कागदों की बही, वि० स० १८५१/१८९४ ई०, न० ८, पृष्ठ ४४-४६

३ गावा रे लेन देन की बही, न० १२२, गावा रे रकम वसूली, वि० स० १७५६/१६९९ ई०, न० १२३

४ कागदो की बही, वि० स० १८२७/१७७० ई०, नं०, ३, पृ० ४६; वि० स० १८७३/१८१६ ई०, न० २२, पृष्ठ ७४

५ कागदो की बही, वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ ३४, वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० २११, २४८

६. उपर्युक्त—वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ ४१

७ विघ्न

८ कागदो की बही वि० स० १८५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० ८९, २०८, वि० स० १८७४/१८१७ ई०, न० २३, पृ० १५९

९ उपयुक्त—वि० स० १८२७/१७७० ई०, न० ३, पृष्ठ ३४

१० उपयुक्त—वि० स० १७५७/१८०० ई०, न० ११, पृ० २०८

भोम

'भोम' की भूमि भी इसके प्राप्तकर्ता 'भोमिया' के लिए वंशानुगत अधिकारों से युक्त तथा हासल व लाग से मुक्त होती थी। 'भोम' भूमि के अधिकार साधारणतया, उन लोगों को मिले हुए थे, जो राठौड़ों के आक्रमण से पूर्व इस क्षेत्र के प्रशासकीय अधिकारी थे। भूमि पर उनके पूर्व अधिकारों को मान्यता देते हुए तथा उनके सम्मान को बनाए रखने के लिए भोम' भूमि की सुविधा प्रदान की गयी थी। बीका, बीदावत व काधलोत राठौड़ों को भी 'भोम' भूमि प्रदान की गई थी; क्योंकि ये राज्य के संस्थापक बीका, बीदा व काधल के वंशज थे। भाटियों, भट्टियों व जोहियों के कबीलेदारों को भी पूर्व प्राप्त अधिकारों व उनके सम्मान को बनाए रखने के लिए यह सुविधा दी गयी थी। 'भोम' भूमिदार खुद-काश्त भी होते थे व अपनी भूमि मुकाते पर भी चढ़ा दिया करते थे। ये प्रशासन को केवल 'भोमबाब' नामक कर ही चुकाया करते थे, जो भूमि की उत्पादन शक्ति के अनुमान से आंका जाता था। इन्हें भूमि माप करके दी जाती थी, ताकि ये अधिक भूमि पर अधिकार करके प्रशासन को करों से वंचित न करें।[1]

---

१. बही लेखे री, नं० ४६; भाछ री बही, वि० सं० १७३६/१६८६ ई०, नं० ८६; गावां रे लेखे री बही, सं० १७६६/१७६३ ई०, नं० ६४; परवाना बही, सं० १८००/१७४३ ई०, पृ० २३२-३५

उपसंहार

सन् १५७० ई० के अन्तिम चरण मे, मुग़ल सम्राट अकबर की नागौर यात्रा, राजपूताने म हस्तक्षेप करने की उसकी नीति का साहसिक कदम थी। मुगल शक्ति इस क्षेत्र के प्रमुख शक्ति-स्तम्भा—चितौड, अजमेर, नागौर व रणथम्भौर को जीत कर अपनी श्रेष्ठता का सिक्का जमा चुकी थी। सम्राट अकबर इसके परिणामो का लाभ उठाने मे देर करना उचित नहीं समझता था। अत उसने बीकानेर के शासक राव कल्याणमल को मुगल अधीनता स्वीकार करने का निमत्रण भेजा जिसे अस्वीकार करने का साहस राव म नही था। राज्य की उत्तरी, उत्तर पूर्वी व उत्तर-पश्चिमी सीमाए मुगलो के घेराव मे आ चुकी थी। राव जैतसी की मृत्यु के पश्चात् राज्य आन्तरिक अव्यवस्था का शिकार बन गया था। मारवाड के आक्रमण व सामन्ता के विद्रोह की आशका उसे निरन्तर सताती रहती थी। मुगल साम्राज्य की राजधानी, दिल्ली के समीप स्थित होने के कारण, मुगल शक्ति के प्रति उदासीन रहना उसके वश की बात नही थी। उसके सम्मुख दो ही विकल्प थे—या तो अपने सैन्य बल द्वारा मुगल शक्ति का विरोध करें, जो लगभग असभव था अन्यथा उसकी अधीनता स्वीकार करके राज्य के अस्तित्व को बनाये रखें। अधीनता स्वीकार करने के दो प्रत्यक्ष लाभ थे—प्रथम, बाह्य आक्रमणो की आशका से एक लम्बी अवधि के लिए मुक्ति और दूसरा, मुग़ल सरक्षण के बल पर आन्तरिक शत्रुओ से निपटने मे सुविधा तथा राज्य को स्थायित्व प्रदान करने का सुअवसर। अधीनता स्वीकार करने मे प्राप्त होने वाले तात्कालिक लाभा को ध्यान म रखकर राव कल्याणमल ने नागौर जाकर सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

इसके उपरान्त, सम्राट अकबर ने नागौर में ही राव कल्याणमल से निकट के सम्बन्ध स्थापित किए। दो राजवशा के बीच, इस प्रकार मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो के नये युग का सूत्रपात हुआ। सम्राट ने कुअर रायसिह को अपनी सेवा मे रखने व राव कल्याणमल को बीकानेर वापस जाने की अनुमति प्रदान की। कुअर रायसिंह ने मुगलो की सेवा म रहने का पूरा लाभ उठाया। समय के साथ-साथ सम्राट का विश्वास उसम बढता गया। चार वर्ष बाद, सन् १५७४ ई

उसके गद्दी पर बैठने के उपरान्त ये पारस्परिक सम्बन्ध और भी सुदृढ़ हुए। राव दलपत व राजा कर्ण के अन्तिम काल को छोड़कर रायसिंह व उसके सभी उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध मुगलों के साथ सदैव सौहार्दपूर्ण ही रहे। मुगल सम्राटों ने अपने विभिन्न सैनिक अभियानों में उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया तथा समय समय पर अनेक प्रशासनिक पदों का बोझा जिन्हें लगन व निष्ठा के साथ बीकानेर के शासकों ने निभाया। मुगल सेवा के बदले में उन्हें राज्य से बाहर स्थित कई समृद्ध जागीरें प्राप्त हुई जिनसे प्राप्त होने वाली आय कई बार वतन जागीर की आय से अधिक होती थी। उनसे आयी समृद्धि व शाही अभियानों में लूट की आय ने, राज्य के आन्तरिक प्रशासन की शक्ति व प्रभाव को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया। रेतीले टीबों में समृद्धि की ऐसी बाढ़ इससे पूर्व कभी नहीं देखी गयी थी। राज्य में आयी समृद्धि ने साहित्य व कला के विकास को प्रेरित किया। शासकों ने विद्वान साहित्यकारों व कलाकारों को सरक्षण दिया जिससे राज्य का, भौतिक के साथ-साथ सांस्कृतिक स्वरूप भी निखरने लगा।

मुगलों ने बीकानेर शासकों को मनसब व जागीर प्रदान करने में सदैव उदारता व उत्साह दिखाया। कभी भी बीकानेर शासकों का मनसब १,००० जात व १००० सवार से कम नहीं रहा, ताकि इनकी वतन जागीर की सीमाएँ अक्षुण्ण रहे। मुगलों द्वारा इनकी वतन जागीर की सीमाओं को कभी खण्डित नहीं किया गया और न ही अपनी सार्वभौम सत्ता के प्रदर्शन के इरादे से अन्य पड़ोसी राजपूत राज्यों की भांति, मनसब निर्धारण के अनुसार, इनकी सीमाओं में वृद्धि या कटौती की गयी। अकबर के काल में निर्धारित सीमाएं अक्षुण्ण बनी रहीं। जो क्षेत्र बीकानेर राज्य में नहीं माने गये, उन्हें अलग से जागीर के रूप में प्रदान करके उस क्षेत्र पर उनके आनुवंशिक दावों का सम्मान किया गया, परन्तु ये जागीरी क्षेत्र उन्हें मनसब वृद्धि के साथ ही प्राप्त होते थे। सम्राट इस पर पूरा ध्यान रखता था कि मनसब वृद्धि के समय ये क्षेत्र ही उन्हें प्राथमिकता के तौर पर जागीर में दिये जायें। ये क्षेत्र बीकानेर शासकों की मृत्यु तक ही उनके पास रहते थे। सम्राट ने राजा का कम मनसब होने पर इन क्षेत्रों को उसके परिवार के अन्य सदस्यों को प्रदान करके उनके दावों के प्रति पूर्ण सम्मान व्यक्त किया था। महाराजा स्वरूपसिंह की जागीर में केवल बीकानेर राज्य ही रहा। अन्य क्षेत्र उसके छोटे भाई आनन्द सिंह को दे दिये गये। इस प्रकार सीमित अविभाज्य क्षेत्र में ही बीकानेर राज्य की सीमाएं सर्वप्रथम निर्धारित हुईं तथा दृढ़ प्रशासन वहां लागू हुआ। अन्य क्षेत्रों को भी बीकानेर के प्रभाव में रखा गया जिसका पूरा लाभ बीकानेर के राजाओं ने मुगल शक्ति के पतन के काल में, उन्हें अपने राज्य का अंग बना कर उठाया।

बीका राजवंश को उत्तराधिकार प्राप्त करने के बाद उत्तराधिकार के मामले में मुगल सम्राट की स्वीकृति को स्वीकार करना पड़ा। मुगल सम्राट ने भी इच्छानुसार कभी-कभी दावेदारों को प्रदान करके न केवल अपनी इच्छा से राजकुमारों को गद्दी पर बिठाया, अपितु सदैव उन्हें इस तथ्य से अवगत कराया कि उनकी स्थिति, शक्ति व सम्मान सम्राट की कृपा पर आश्रित है।

सन् १५८० ई० तक सम्राट अकबर विभिन्न प्रशासनिक सुधार करके अपने साम्राज्य में एक सुसंगठित प्रशासनिक व्यवस्था की नींव डालने में सफल हुआ था, जिसका बीकानेर राज्य की आन्तरिक व्यवस्था पर स्वाभाविक प्रभाव पड़ा। यहां के शासक स्वयं साम्राज्य में, प्रशासक की हैसियत से कार्य करते थे। उनका व उनके अधिकारियों का मुगल-प्रशासन के प्रति आकर्षण व उसके तौर तरीकों को राज्य में लागू करने की इच्छा, इसमें एक प्रभावशाली तत्व थी। मुगल सम्राट स्वयं भी साम्राज्य में प्रशासनिक एकरूपता पर बल देता था व इससे सम्बन्धित आदेश अधीन शासकों के पास भेजता था। बीकानेर राज्य जागीर, मुगल सूबा अजमेर की एक इकाई मानी गयी जिस पर आपातकालीन स्थिति में मुगल सूबेदार को प्रभावशाली कदम उठाने की शक्ति प्रदान की गयी। इतना ही नहीं, मुगल दरबार में रहने वाले शासकों पर नित प्रतिदिन के वहां के व्यवहार का प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक था। अस्तु, सम्राट के आदेश मुगल साम्राज्य के प्रशासनिक स्वरूप, शासक व अधिकारियों की इच्छा तथा परिस्थितियों के फलस्वरूप मुगल प्रशासन का प्रभाव राज्य में सरलता से पड़ता गया।

राज्य के प्रशासनिक ढांचे पर मुगल प्रभाव मुख्यतः तीन प्रकार से पड़ा। प्रथम, राजा की स्थिति पर, द्वितीय, प्रशासनिक इकाइयों व संगठन पर तथा तृतीय, प्रशासकीय प्रणालियों पर।

मुगल संरक्षण से सबसे अधिक लाभ राजपद को ही पहुंचा। उसकी सत्ता अपनी सीमाओं के अन्दर न केवल दृढ़ हुई, अपितु प्रजा में भी उसका सम्मान बढ़ गया। अब वह कुलीय भाई-चारे की व्यवस्था में सामन्तों का मुखिया नहीं रहा था, बल्कि राज्य की निरंकुशवादी शासकीय सत्ता में ढलकर उसकी एकता का प्रतीक बन गया था। उसने शक्तिशाली सामन्तों की शक्ति का दमन करके तथा विभिन्न कबीलों को नियन्त्रित करके, बीका राजवंश के नेतृत्व में राठौड़ों की अखण्ड अविभाज्य सत्ता स्थापित कर दी थी।

राजा की शक्तियों में वृद्धि ने, सामन्तों व विद्रोही कबीलों पर उसके नियन्त्रण ने, प्रशासन को राज्य में एक प्रशासकीय प्रणाली लागू करने का अवसर दिया। सर्वप्रथम, केन्द्रीय प्रशासन मुगल शैली पर गठित किया गया। पुराना मन्त्री 'दीवान' कहलाया व उसका मुख्य कार्य सामान्य प्रशासन के साथ-साथ

मुग़ल वज़ीर की तरह राज्य के वित्तीय मामलों का प्रबन्ध करना निर्धारित किया गया। उस कार्य-सम्पादन में सहायता के लिए दो नये सहयोगी, 'दीवान-ए-तन, व दीवान-ए-खालसा', दिये गये। इससे दीवान की शक्तियों पर नियन्त्रण रखना भी सम्भव हो गया, ताकि अधिक शक्तिशाली बन कर वह राजपद को चुनौती न दे सके। सैन्य विभाग के मामलों की देख रेख 'मुसाहिब' पद को सौंपी गई, जो मुगलों के 'बख्शी' के दायित्वों को पूरा करने के साथ-साथ वकील पद का सम्मान भी राजा के विश्वसनीय व्यक्ति के रूप में प्राप्त करता था। सैन्य विभाग को बाद में अलग संगठित करके, इसके मुख्य प्रशासकीय अधिकारी के रूप में 'बगसी' पद की रचना की गई। राजाओं ने शाही कारखानों की तरह राजधानी में विभिन्न कारखानों की स्थापना करने में भी पूरी रुचि दिखलाई।

मुगलों के प्रभाव से केन्द्रीय प्रशासन की भांति प्रान्तीय व स्थानीय प्रशासन भी अछूता नहीं रहा। प्रशासनिक एकरूपता के सिद्धान्त में व्यावहारिकता तभी आ सकती थी, जब कि उस प्रान्तीय व स्थानीय रूप में भी लागू किया जा सके। राज्य का सम्पूर्ण क्षेत्र चौरों में विभक्त कर दिया गया, जो अकबर की करोड़ी-व्यवस्था के समान राजस्व इकाई के रूप में गठित हुए थे। इसमें थानमा के साथ-साथ सामन्तों का क्षेत्र भी सम्मिलित था। इन चौरों के अधिकारी 'चौरायत' या 'हाकम' कहलाते थे। 'हुवलदार' का नाम भी प्रभाव का द्योतक है। राज्य में शांति व व्यवस्था रखने के लिए जो थाणे' स्थापित किये गये थे, उनके मुख्य अधिकारी फौजदार के कर्तव्य भी वे ही थे, जो मुग़ल सरकार के फौजदार के होते थे। स्थानीय स्तर के अधिकारियों में, चौधरी व पटवारी, पड़ोसी मुग़ल क्षेत्रों के स्थानीय अधिकारियों के समान ही दायित्व सभालते थे। 'शहर कोतवाल' बीकानेर व अजमेर नगर में एक से ही अधिकार रखता था।

राज्य में प्रशासकीय विकास व संगठन के फलस्वरूप एक प्रभावशाली प्रशिक्षित अधिकारी वर्ग 'मुत्सद्दियों' का तैयार हुआ, जो अपनी शक्ति बढ़ाने के लालच में राज्य में सक्रिय हस्तक्षेप की ओर प्रेरित हुआ। दरबारी गुटबंदी राजनीति का प्रभाव भी राज्य में छाने लगा। राज्य को, जहां एक ओर 'मुत्सद्दियों' की प्रतिस्पर्धा से सुयोग्य व कर्तव्यनिष्ठावान प्रशासक मिले, वहां उनके निजी स्वार्थों की होड़ से षड्यन्त्रों को बढ़ावा भी मिला, चूंकि यह सम्पूर्ण वर्ग राजा की ओर कृपा की आशा से देखता था, अतः इसकी योग्यता व अयोग्यता पद की स्थिति व शक्ति को बढ़ाती-घटाती रहती थी। राजा के कमज़ोर होने पर प्रशासन व्यवस्था स्वयं सुचारु रूप से नहीं चल सकती थी, क्योंकि 'मुत्सद्दी' अपने लाभ व भावी हितों को पूरा करने में जुट जाते थे। लेकिन, मुग़ल अधिकारी-वर्ग की तरह ये राज्य अथवा राजवंश को अधिक हानि

नही पहुंचा सके क्योंकि साम्राज्य का प्रत्येक उच्च अधिकारी व कर्मचारी मनसबदार होता था, जिसके साथ निश्चित सैनिक दायित्व बंधे होते थे। यहां के मुत्सद्दियों के पास सजित सचित करने के लिए समृद्ध जागीरें नहीं थी। इस तरह के इरादों में राज्य के सामन्ती वर्ग का सहयोग भी उसे प्राप्त नहीं हो सकता था क्योंकि वे किसी भी दशा में 'मुत्सद्दी' के हाथों में अपने कुलपति का अपमान सहन नहीं कर सकते थे। अत मुत्सद्दियो के षडयन्त्र सामन्तो के साथ मिलकर अपने पक्ष के राजकुमार को गद्दी दिलाने तथा राजा का अत्यधिक विश्वास प्राप्त करने तक ही सीमित रहे।

राज्य के सामन्ती ढांचे में, जो मूल रूप से परिवर्तन आया वह मुगलों के प्रभाव का प्रत्यक्ष परिणाम था। पट्टा व्यवस्था मनसब प्रणाली से प्रेरित थी। शासक मनसब प्रणाली की भांति राज्य के सामन्तों को निश्चित दायित्वों से बांधना चाहता था। उसने सम्पूर्ण पट्टा प्रणाली का मूल स्रोत स्वयं को बना दिया, जिससे प्रत्येक पट्टायत अपनी स्थिति व अधिकारों को लेकर उसकी कृपा पर आश्रित हो गया। उसे जागीर के 'भोग' का भोग करने के लिए राज्य को निर्धारित चाकरी अर्पित करनी पड़ी, जिसमें किसी प्रकार की कमी होने पर उसे दण्डित भी किया जा सकता था। मुगल जागीरों के स्थानान्तरण की भांति, पट्टों के गावों में भी स्थानान्तरण का गुण आ गया। चाकरी की समाप्ति के साथ पट्टे भी छीन लिए जाते थे। राज्य का कुल मुखिया पट्टायत के रूप में मुगल जागीरदार की तरह राज्य के नियमों में बंधकर अपने क्षेत्र का प्रशासन चलाने को बाध्य हुआ। उसके क्षेत्र में करों की दरें निर्धारित हो गयी, जिनके विरुद्ध शिकायत आने पर राज्य की ओर से उचित कार्यवाही की जा सकती थी।

सामन्ती व्यवस्था का ढांचा भी मुगल दरबार के नियमों से प्रभावित होकर अपनी खांप की विशेषता को बनाये हुए गठित किया गया। सामन्तों को खांप स्तर पर अनेक श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया व दरबार में उनका स्थान व स्थिति निश्चित कर दी गयी। सामन्तो की गुटबंदी खांप वर्गीकरण से प्रभावित होने लगी।

राज्य में मुख्य आय के रूप में भू राजस्व व्यवस्था का गठन भी इस काल में किया गया। भू राजस्व, जो पहले कुल उत्पादन का २० प्रतिशत था, अब हासल के रूप में उपज के आधे भाग को अपने 'कब्जे' में करने लगा। हासल का निर्माण 'भोग' (माल) रोकड़ रकमां' व बीजा रकमो '(जिहात)' से किया गया। उसकी वसूली में निश्चितता लाने के लिए मुगलो की तरह भूमि मापन को प्रोत्साहित किया गया व उसे बीघो में विभक्त करके उसके आधार पर हासल का निर्धारण किया गया। इस प्रकार भू राजस्व वसूली व्यवस्था में 'बीघड़ी' प्रथा

ा जन्म हुआ। मापनकी डोरी 'बीघा-ए-इलाही' की तरह थी। 'इजारा प्रणाली' ा प्रभाव राज्य में 'मुकाता प्रणाली' के रूप मे था, जो अनुबन्ध पर वसूली का ार्य करती थी।

राज्य मे प्रशासकीय कार्यों के सचालन की जो पद्धतियां थी, उन सभी को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से मुगल प्रशासन ने प्रभावित किया। केन्द्र मे 'हुवलदार का दफ्तर' बनाया गया। इसके जिम्मे करो की दरें निर्धारित करने का कार्य था। हुवलदार गावो मे हासल व 'रोकड रकमो की जमाबन्धी' करता था, जिससे प्रशासको का केवल यही दायित्व रह जाता था कि वे समय पर वसूली करके उसे राज्य के खजाने मे जमा करायें। आय व व्यय का पूरा विवरण लेखा बहियो मे तैयार किया जाने लगा तथा राज्य की आय का पूर्व अनुमान लगाने की व्यवस्था शुरू हुई। इसकी आवश्यकता इसलिए पडी कि मुगल मनसब का वेतन, वतन जागीर की जमा पर निर्धारित होता था। राज्य के सभी राजकीय आदेशो को लिखित रूप मे भेजा जाने लगा तथा उनकी नकल 'दफ्तर' मे रखी जाने लगी।

प्रशासकीय अधिकारियों के अतिरिक्त पदो व करो के नाम भी राज्य पर मुगल प्रभाव के द्योतक थे। राज्य मे 'दीवान,' 'मुसाहिब', 'शिकदार,' 'हुवलदार', 'फौजदार', 'बगसी', 'ताबीनदार', 'रोजनदार', 'महीनदार', 'तोपची', 'नीशाणची', 'बन्दूकची', 'मुसरफ' तथा करो मे 'जगात', 'हासल', 'अदालती', 'नजराना' आदि राज्य के प्रचलित नाम इसका समर्थन करते है।

मुगल शक्ति के सरक्षण व उसके प्रभाव के वास्तविक महत्व की जानकारी उस समय हुई, जब मुगलो के पतन काल मे राज्य पुनः बाह्य आक्रमणो व आन्तरिक विद्रोहों का शिकार हुआ। राजपद के सिद्धात को खुली चुनौती दी गई तथा शासक को राजपद की प्रतिष्ठा व राज्य की क्षेत्रीय अखडता की रक्षा करने के लिए निरन्तर संघर्षों मे जूझना पडा। अव्यवस्था व अशाति के वातावरण मे प्रशासनिक ढाचा छिन्न-भिन्न होने लगा। १८वी शताब्दी के समाप्त होते-होते एक राजनैतिक व प्रशासनिक संकट का जन्म हुआ, जिससे उबरने के लिए पुनः शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता की शरण लेने की आवश्यकता पड़ी।

अतः स्पष्ट है कि बीकानेर राज्य मे मुगल शक्ति का विशेष प्रभाव था। राज्य की सस्थाएं मूल रूप मे अपनी परम्पराओं, क्षेत्रीय आवश्यकताओं तथा प्राचीन हिन्दू परम्पराओं से प्रेरित थी, लेकिन प्रशासकीय व्यवस्था मुगलों की शैली में ढल गयी थी। प्रशासकीय व्यवस्था को छोड़कर बीकानेर राज्य राजपूताना के उन राज्यो मे था, जहा मुगल प्रभाव तुलनात्मक दृष्टि से कम पड़ा था। राज्य की भौगोलिक स्थिति, शासक वर्ग की जातीय परम्पराए तथा

निवासी जातियो व कबीलो के नियम, किसी बाहरी हस्तक्षेप व सलाह के प्रति उदार नहीं थ। रगिस्तानी राज्य म, जहा आवागमन के साधनो का अभाव एक प्रमुख समस्या थी, मुगल शैली की प्रभावशाली प्रशासनिक-व्यवस्था को अपनाना एक भागीरथ कार्य था। निरकुश नृपतन्त्र की सफलता भी यहा सन्देहास्पद थी, क्योकि इस क्षत्र की समस्यायें ऐसी थी, जिनका सही हल समन्वय म ही ढूढा जा सकता था। अत राज्य के शासको ने वे कदम ही उठाये थे, जिनमे राज्य का स्थायित्व व समृद्धि सम्भव थी। उन्होने मुगल व्यवस्था के उन तरीको को ही ग्रहण किया, जो उनके क्षेत्र मे लागू हो सकते थे और जिनके लागू किये जाने स राज्य की हितसाधना अधिक भली प्रकार सम्भव थी। भू-राजस्व प्रशासन म प्रचलित विभिन्न प्रणालिया तथा स्थानीय अधिकारियो की शक्तियो के स्वरूप का समर्थन करते हैं। भू-मापन व्यवस्था भी रेतीले क्षेत्र मे वही अपनाई गई, जहा सूई' (समतल) भूमि थी।

राजपूतो की कुलीय परम्परा दृढ़ता से स्थापित हो चुकी थी, उन्हे उखाड फेंकना आसान काम नही था। स्थानीय जातियो के सामाजिक व आर्थिक नियम इसलिए प्रचलित किये गये, क्योकि वे परिस्थितियो के अनुकूल थे तथा उनमे हस्तक्षेप करके एक सामूहिक विरोध का सामना करना कोई विवेकसम्मत कार्य नही था। स्थानीय प्रशासन, भू-राजस्व व न्याय-व्यवस्था म शासक ने क्षेत्रीय व राठौड परम्पराओ को ही अधिक मान्यता दी थी। सेना व सामन्तो के ढाचे मे परिवर्तन अवश्य हुए थे, लेकिन उनसे उनके स्वरूप म आमूलचूल परिवर्तन नही हुआ था। उन्हे मूलत वैसा ही रहने दिया गया था। आवश्यकतानुसार अवश्य कुछ सशोधन किये गये थे। राजा स्वय प्राचीन हिन्दू नरेशो के आदर्श पर चलना चाहता था तथा प्राचीन भारतीय परम्पराओ को लागू करके यश प्राप्त करना चाहता था। अत मुगल शक्ति का यही लाभ उसने उठाया कि उसके बल पर राज्य को सुरक्षा व स्थिरता प्रदान करना उसके लिए सम्भव हो सका।

परिशिष्ट १

बीकानेर शासकों का वंशवृक्ष

[राव बीका से महाराजा सूरतसिंह तक]
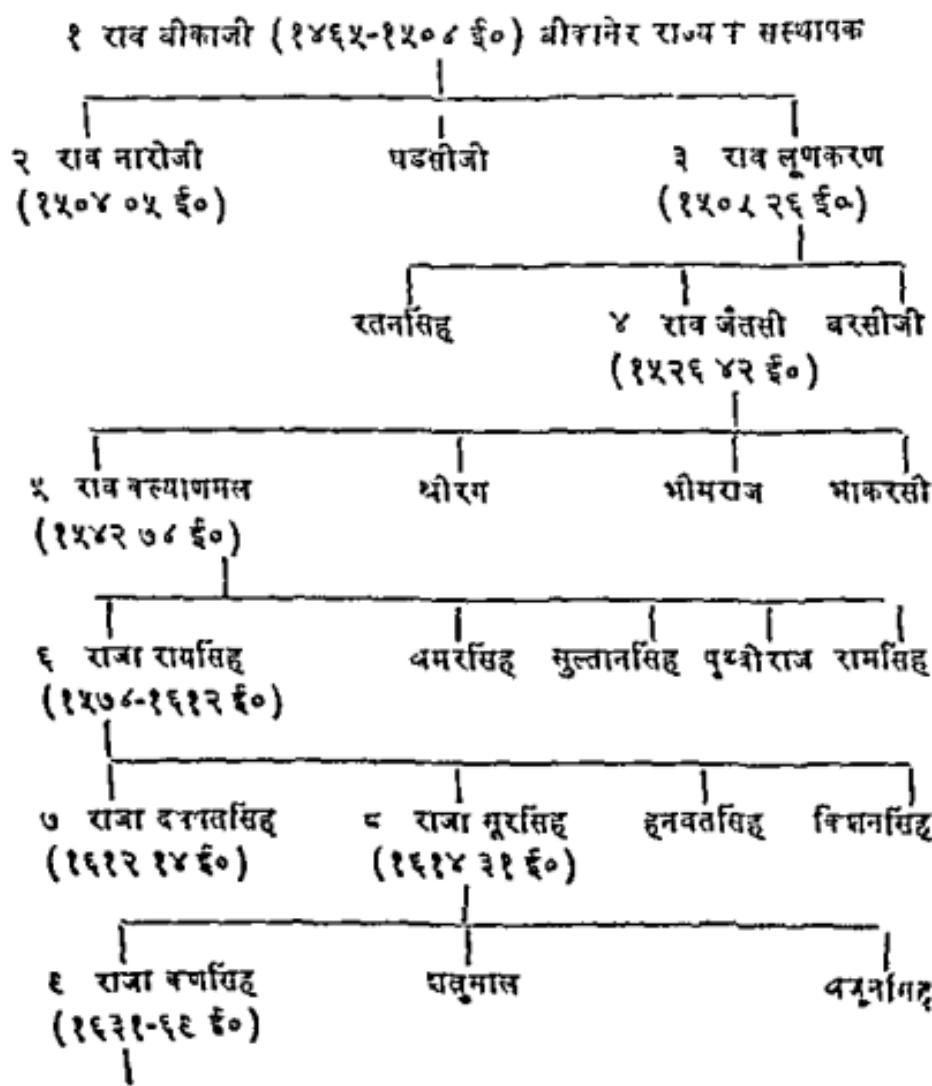
१० महाराजा अनूपसिंह (१६६९-९८ ई०) | केसरीसिंह | पदमसिंह | मोहनसिंह

११ महाराजा स्वरूपसिंह (१६९८-१७०० ई०)

१२ महाराजा सुजानसिंह (१७००-३६ ई०) | आनदसिंह

१३ जोरावरसिंह (१७३६-४५ ई०)

(आनदसिंह के पुत्र:) अमरसिंह | १४ महाराजा गजसिंह (१७४५-८७ ई०) | गूदड सिंह | तारासिंह

(गजसिंह के पुत्र:) १५ महाराजा राजसिंह (१७८७ ई०) | छतरसिंह | सुलतानसिंह | १७ महाराजा सूरतसिंह (१७८७/१८२८ ई०)

१६ महाराजा प्रतापसिंह (१७८७ ई०)

परिशिष्ट २

महाराजा अनूपसिंह का आदूणी (दक्षिण) से आनन्दराम नाजर को राज्य-दीवान पर नियुक्त करते समय उसके कार्यों व दायित्वों के प्रति निर्देश

महाराजा अनूपसिंहजी रो आनन्दराम नाजर रे नाम परवानो १७४६

सही

स्वस्ति महाराजाधिराज महाराजा श्री अनूपसिंघजी वचनात नाजर आणद राम जोग सु प्रसाद वाचजो तथा हिमंतु देस पोहती छै सु दसतुर रो प्रवोनो तोनु कर दीयो छै आगे उपर सारी जावता भली भांत करे—

। छाप देस माहे दरबार बैठो दीवान बचनायत रो कागद हुवै सारो नंजर थर पजनच री चीठी देस प्रगने सारे उपर हुवै ते उपर कीयो करै अर दरवार उठीया पछै जरूर काम रो हुवै त उपर करे अर तुमेणो छै कारण लायक चीठी हुवै तै उपर छाप कीवी करे कारण लायक न हुवै ते उपर मने करे—

। आण दुवाई न माने तेन सझा देई

। कोट भीतर खजनो छै तेरी जावता भली भात कर सभले अर टका पिण सारा सभाल ठीक कर सागे तणे री अरज लिखे।

। कारखानों वडो श्री बीकानेर छै अर हजूर सु मेलीयो छै तेरी जावता भली भात करे आगला कारखाना सारा पेहली सभाल पछै हजूर रो सभाल भली भेत अर मेला कर राखे आदमी हुवालदार आगला छै सु भला हुवै तो राखे नही तो बीजा भला देख राख अर सारो बिले रो बिलेकरे।

। मदुर हुवाले रो कारखानो पुसतग तबो पीतल और वाव हुवै सु सारो सभाल भली भात बिलै कर राखै।

। सिलेकरवोने रो कारखानो माधे रे हुवाले रो हजूर रो मारो सभाल आगे छै सु सरब सरब सभाल खासा हथीयारो जुदो कर ज्या अर तसरफी रो

जुदो कारखानो कर ज्यो तोप खानो सतुर ताल रमचगी हुवे तेरी धणी जाबता करै बगतर खास बदुको हुवै सु पिणवल कर राखे ।

। कोठार श्री कोटमाहे सारा छै सु सभाल भली भत जाबता कर विले कर राखै अर धन रो अवेरा जिनस रो सारो जाबता कर प्राणी री नवी करे अर गावो रो हासल रो भोग आवै सु कौठार माहे जाबता कर घतावै नेजे रो काठार छै स पिण सुभाल विलै करै हुवालदार आगला भला हुवै तो राखजै नही तो बीज करणा हुवै ते थे बीजा भला देख करे अर कण थे रे कोठार माहे लोक पावै छै सु खबर करे हुवै तेन देई अर घलीयो हुवै तेरो को लेखे न लेण मत देई ।

। श्री ठाकुरो रे गावो रो अर श्री बाईजी रे पटे रो गावो रो पईसो आसी सु तागीदी कर भरीवे अर गाव जासणो कोट ३ ताल कै छै सु तु जाबता कर भले आदमी रे हवाले करे जमा सरवरी मुहतो रे बैठा छै ते भात बेसे त ईलाज करे मुजरो कर दिखालै ।

। कमठोणे रे कोम रो जावता करै केही हिमायती रो चाकर मजुर दुखो दीडे तेरी जाबता कर दुर करे ।

। देस माहे कोमदार हासल उधावण जावै ताहरो डेर रो खरच दरबार रे लिखीयै सु बधीक लेवै अर हाकम रो बेटावे भाई और कामदार जावै सु देस माहे मैलो लेवे अर चोचो कर इराय लेवे तेनु मने करे अर कोई लेवे ते कने इगारी सुघो सझा दे भर लेइ अर उमराव अवता जावता देस माहै खेचल करण मते देइ डेरे रो अरसरा दसतर माफक छै सु चालीया जावै ।

। हजुरी देस माहै खिजमत पावै छै सु लिखीयै सु वाघ लेवे चोचो करे तेनु सझा देई पक्ड अर इगारी सुधो भर लेई अर भीतर वाडीया ६० तोपची २०० मीरधो रे तालके कर चोतडे दाखल दोडणा ठेहराया छै सु लिखीयै सु वाघ मेगे जाजती कर देस माहे रईयत सु पकड सझा देई अर तलब रो पईसे कोस रो दसतुर छै सु हुसी सके जरूर काम उपर करे तो सिरस माफक जवण वाले नु दिरायै बधै सु सिरकार दाखल जमा करायै ।

। साहुकार ब्राह्मण लेहणे वालो सु गैर हसाबी असी हतो मगे तैनु मनै करे अर बरस ४ तेई रजपुतो कने आगलो लेहणो मने कीयो छै सु लेण मता दो ।

। रजपूतो कने लेहणो लोको रो छे सु थिता सिरकार री छै अरबीजी साहुकरो री छै ब्राह्मणो वोहरो री छै सु थित रो रुपीयो चको पछै रजपूतो रे पटे रे गाव माहै वधै सु दमसही लेण देई पेहली खेचल कर आदमी मेल तिके आदमी नु पकड कोट माहे देई ।

। कोमदार रो लेहणो पटायतो कनै छै अर पकै पटो बीजै नु हुवै ताहरो जोर घात लेहणो उपै कनै लेछै सु लेण मत्त देई।

। श्री मोहलो रो लोक बुरो पालै अ जाजती करै सेहर देस माहै अर बीजो ही बमण हिमायती इयै पेढे चालै तिको सिगला न सझा देई मुलाजो मते करे।

धरती सरकार रो चिकता कोई बीच अडबी करै अर चोकी वै दसतुर कोबी हवै सुमने करै। सवत् १७४६, मिती मिगसर (मार्गशीर्ष) वदि १३, मुकाम आदूणो।

परिशिष्ट ३

महाराजा सूरतसिंह जी द्वारा करों की अकरायत की शिकायत आने पर उन्हें नये ढंग से निर्धारित करने व लागू करने का आदेश-पत्र

देस रो गोवो रो चोधरीयो रेत समसुतो जोग्य तीधा श्री'' जी साहबो देस सरवालै री मरजाद बाधी छै सु आगै सदामद पीड़ी सु रकम लीजै छै सु लीजसी आगे साल १ मे रकमो ४ ती ५ पडतो सो दुर कीयो छै ते सवाय वधती साल १ मे रुग्रवालो री भाछ रा गुवाडी १ रु० १०)१० । ईक दर लोठी नीवली माडी हुसी सु सरवालै गीणती वर लीजसी गुवाडी रौ गोहो चोधरी हुवलदार राखण पावे नही राखसी तो चोधरी गुनेगारी रा रु० ११) हुवलदार उघावण जासी तीको रु० २५) देसी आगे तो सदामद हरी खेजडी बढी वा वल तणी वहाता नही हुणेद्यो वरसो मे हरी खेजड़ी वढ़ी वा बलदतणी वुहाता से स० १८५३ साल हरी खेजडी वाठण री वा बलद तणी ववण री मनाई कीवी कै तेरा कागद देस सरबाले रे गावो मे हुय गया छै तेमे जाव छै ईतरो कोमो ने तो हरी खेजडी बढसी तेरी तो माफी छै हाल हालवउ वा गोडे रे पईयो रो पुठ वा पाटलो कोहर रो भुवण तेली री घोणी जवाडो पजाली वा वडे फलसे री फलसो वटवा चुलीयो सु खेजडी रा हुवे नही आली खेजडी सदामद हुवै छै अर अंवड उठो नु लोक हाथस सुतर नाग सोउ चोलपण हुवी तो ओकोडै सु लेसी कुहाडो लगावण पावे नही ईतरो कोमो ने नोहरी खेजडी वढमी तेसदाय हरी खेजडी बढसी वा वलद तणी वाहसी तो गुनेगारी रा रु० २५) लागसी अर तपावस रो जाव आप ममेले होणे देण री घर जमी रो कोई असरचो हुसी तो वरा परमेसरी पचो उप्रा-घात नोव कराय दीजसी हरकुर कई री नरहसी जीण कर श्री दरबार वा काई दुजी हरकुर राखमी तो सीना रा ईण ईसरो सु वे मुख हसी अर इयो वरसो मे गोव जबती हुवा वा कोई गुवाडी दुजी पकड तमै आई सु हुमै गोव जबते ने हुसी कोई गुवाडी पकड न मे न आसी जमा खातर राख गुवाडी बाहर छै तीका नु पुठो वमाण लेजो अर दुजै देमरा गुवाडी सुवाई बससी तीका कना साल ३ रकम सरव अधखरनीजसी नै आगै सु जमीदारा रे गुवाडी नै रकम हासल भाछ लागसी

तेंसू हुसी १ चोथाई या रै पुत पातै नु छुटा जासी सुवाई गुवाडो आहीडो री जमी खालसी सु जमीदारा वरोवर रकमी देसी अर हाकम देस मे नागारा ले चढसी जी कै गो वजासी तीके गोव रा मेले रा रु० १) ले सी अर सागै श्री दरवार रा रसँलो हुसी ता नीरण रा जावतो कारासो नै कही गोव मैं मुकाम हुसी तो पावती रो गोवो सु नीरण रसोले नै मगाय लेसी ईया वरसो मे डेरा खरच वा खीचड़ी रा रुपीया उधावै छै सु हुमे न उधासी हुमै पे जमा खातर राख गोव वसावजो थारी भोत भोत पीठ रहसी नै सेहेर रै साहूकारो री भाछ लेवण री मरजाद श्री…जी साहुबो देसणोक मे वीराज ओण फुरमाय कागद रा मोर छाप रा उप्र राम सहीवा स दसकतो कर दीया छै तै मरजाद माफ कईया कागदा री मरजाद रहसी हुमै कोई वा रा वीसवास मतो रखजो श्री दरवार रो वचन छै सं० १८७३ जेठ वद २ अदालत सु कागद गोव गोव रा इये उप्रली खरच माफक नारा नारा हुवे छै ईका नकल रा मीती नारी नारी छे।

कागदो की वही, वि० सं० १८७३, नंबर २२, पृष्ठ १६१-६२।

परिशिष्ट ४

दीवान पद पर नियुक्ति व उसका वेतन

मुहतो बखतावर संघ मीनारूप फतेसघतोत रुघनाथ भीवसिंघ अणदरूपोत नु महाराजा गजसिंहजी मेहरबानगी कर दीवोनगी खीजमत ईनायत कीवी तेरी विगत

८००६) ईतरा गोव पटे छै

२७०१) गो. कीलोणसर महीयोरो

२००१) गोव लखमीसर

१००१) गोय तेजसासर

२०१) हाली रीणी चलकोडी पाचुनाथु सरस

१०१) सुजोणदेसर रा उनोव अर खेत भोमीयो रो

२००१) जागीर देनी

———

८००६)

———

२८३७) ईतरो रोकडो पासी

८४६) मास १ खजोनची सुतेरा मास १२ पासी २४) देसमें मा. १ १५ आपरा ९ आसोमी

४६।।) श्री हुजुर मे मा. १ पासी

१५) आपरा ४।।) आसोमी १

२७) चाकरारा ४) चोपदार ४) फरास १९) चाकर ४

७०।।) मा. १ तेरा मा. १२ रा रु० ८४६) पासी

१९९१) ईतरो रोकड सलीणे पासी

१६०१) मैले रा घुवेर गोबो रा तथा हथमेलो रो

३९०) दुजापासी तेरी विगत

१००) हुजदारो कने १५०) रसोईये रापटे री ठोड मोहै

१००) नीरण रा गोवो सु ४०) मीगड़ी रा

---

३६०)

१६६१)

२८३७)
१११६) डीतरो कीठार मोदीखाने पेटेनु मावार मे पासी
४८६) श्री हुजूर मे मडे स भा. १२ उनमोन
उनमोन भा. १ रु० ४०॥) तेरा भा. १२ रु० ४८६)
६३३) देस माहे छै सु पासी
.........घोडा चारणी

१११६)

२०३६) दरी वैतावैरो खाना सु दीरावण
५००) पालखी खरच रा पामी

१४५०१) अखरे चवदे हजार पाच सौइक डीण भोत रीजक पासी खीजमत दानतदारी सु करसी स० १८०६ भी. वै. मु. मु० गोव चगोई प्रवानो लीयो खीजमत स० १८०६ मी. पोहसुद १४ ईन्यात कीवी तागीर मं० १८१३ सो. व १५ भा.१ महुर्त मुवाईसध नु खीजमत रो हुवम मा. व १० सीरपोव हुवो दी २५वद चली मे मुघड़ो राजरूप अमरसिंघ चीठी कीवी
गुमामतो २ इण भोत पामी—१७) हरलाल दुवारकोणी दफ्तर मोडमी १३) दफ्तर दुवारकोणी खजोनची सु पासी

३०) असरै तीस माह १ रा पासी, चाकरी दानतदारी सु करसी स १८०६ वै० सुद २—पट्टावही, वि स. ११२ मिती भादुवा वद १२ (३ सितम्बर, १७५५ ई०) न० ७, पृ० १४२

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

प्राथमिक स्रोत

(१) अभिलेख सम्बन्धी सामग्री

(अ) बीकानेर बहियात—रा० रा० अ० बी०

चीरा बहिया .

१ चीरा खेदडे री बही, न० ७०, वि० स० १७३६
२ चीरा सेखसर रे लेखे री बही, न० ६१, वि० स० १७४७
३ चीरा जसरासर रे लेखे बही, न० २७ वि० स० १७४८
४ चीरा नोहर रे लेखे री बही, न० २८ वि० स० १७४६
५ अनूपगढ़ रा खत व गावा री बही, न० ६६, वि स० १७५०
६ राणीये रे चीरे री बही, न० ४८ वि० स० १७८३
७ चीरा गुसोईसर रे लेखे री बही, न० २६ वि० स० १७६५
८ चीरा जसरासर रे लेखे री बही, न० ३०, वि० स० १७६७
९ चीरा जसरासर, बीदाहद गुसोइसर रे लेखे री बही, न० ३१, वि० स० १७६६

जगात बहियां ·

१ मण्डी रे साहूकारा री बही, न० २३२, वि० स० १७२६
२ जगात खर्च बही, न० ७५, वि० स० १७५४
३ वहो फिरौती री, न० ७०।२, वि० स० १७५६
४ मण्डी री बही, न० ७८, वि० स० १७८३
५ मण्डी री बही, न० ७६, वि० स० १७६६
६ मण्डी री बही, न० ८०, वि० स० १८०१
७ जगात आमदनी बही, न० ८४, वि० स० १८२२
८ मण्डी जगात बही, न० ८३, वि० स० १८२२

९ जगात री सावा वही, न० २४६, वि० स० १८५६-५७
१० बडी जगात रे खर्च री वही, न० २८६, वि० स० १८६६

जमा-खर्च की बहियां :

१. मण्डी रे जमा खर्च री वही, न० ७४, वि० स० १७०१
२ परगना री जमा-जोड वही, न० ६६, वि० स० १७२६-४०
३. जमा खर्च वही, न० १११, वि० स० १७४०-४३
४ परगनो रे जमा खर्च री वही, न० ३२, वि० स० १७५०-५१
५ कस्वा रीणी रे जमा खर्च री वही, न० ४४, वि० स० १७५३
६ खजाने री जमा खर्च वही, न० ३३, वि० स० १७५५-५६
७ समसत रे जमा खर्च री वही, न० ७७, वि० स० १७५८
८. जमा खर्च वही, न० २२१, वि० स० १७६४
९. औरगावाद करणपुर रे जमा खर्च वही, न० १२१, वि० स० १७६८
१० रोकड वही, जमा खर्च, न० २२३, वि० स० १७९६
११ खेड खरच री जमा वही, न० १२६, वि० स० १८०३
१२ रावले खर्च री वही, न० २१३, वि० स० १८०५
१३. जैसलमेर कानी फौज रे जमा खर्च री सावा, न० १६३, वि० स० १८५५
१४. पाणी भीछ रे जमा खर्च वही, न० २५०, वि० स० १८७७

धान के कोठार की बहियां :

१. कोठारी भींवराज रे लेखे री वही, न० ६४, वि० स० १६८६
२. कोट रे धाचे दावन रे जमा खर्च वही, न० ६५, वि० स० १७१६
३. कोठार धान री वही, न० ६७, वि० स० १७१८
४. मोदी जयराम रे लेखे वही, न० ५०, वि० स० १७२८
५ कोठार रे धान री वही, न० ५६, वि० स० १७४३
६. मोदी अमरदत्त हरमकत री लेखो, न० ५२, वि० स० १७४८
७. कोठार रे लेखे री वही, न० ३५, वि० स० १७४९
८. बडे काठार रे सरड़े री वही, न० ३६, वि० स० १७५३
९. बडे कोठार रे जमा खर्च री सरड़ो न० ३७, वि० स० १७५४
१०. कोठार रे जमा खरच री वही, न० ६७, वि० स० १७५५.
११. कोठार रे जमा खरच री वही, न० ३८, वि० स० १७५५
१२. कोठार रे धान री वही, न० ४०, वि० स० १७५६

धुआं बहियां .

१ धुआ भाछ री वही, न० ८५, वि० स० १७४६
२. धुआ भाछ री वही, न० ८६, वि० स० १७४६
३ धुए री गिणती री जमा वही, न० ८७, वि० स० १७४८
४ धुआ रोकड वही, न० ८८, वि० स० १७५०
५ धुआ देसप्रठ री वहो, न० ९०, वि० स० १७८६

लेखा बही

१ हुजदारो रे लखे री वही, न० १३०, वि० स० १७०४
२ लखा री वही, न० १०५, वि० स० १७७३
३ लेखा री वही, न० १०७, वि० स० १७४१
४ साहे री वही, न० ९३, वि० स० १७४७-५०
५ गाव रे लेखे री वही खालसा, न० ९४, वि० स० १७५०-६०
६ श्री रावले लेखे वही, न० २१२, वि० स० १७७५
७ लेखा वही, न० २२२, वि० स० १७८६

हासल बहिया :

१ गावा रे हलगत री वही, न० १३३, वि० स० १७३९
२ गावा रे हासल भाछ री वही, न० १ वि० स० १७४०
३ खालसा रे हासल भाछ री वही न० ९८, वि० स० १७४३
४ गाव गुसोईसर रे हासल भाछ री बही, न० १०, वि० स० १७४६
५ राजगढ रे पूनीया रे परगने रे हासल लेखे री वही, न० ९, वि० स० १७४९
६ जसरासर हासल भाछ री वही, न० २६, वि० स० १७५०
७ भटनेर हासल भाछ री वही, न० १२, वि० स० १७५२
८ रीणी हासल भाछ री वही, न० ११, वि० स० १७५२
९ कालू रे हासल भाछ री वही, न० ६३, वि० स० १७५४
१० अनूपपुरे रे हासल भाछ री वही, न० २५, वि० स० १८०४

भोग बहिया .

१. कोठार रे भोग री वही, न० ५८, वि० स० १७१६
२. गाव पुनसीसर रे भोग रे लेखे री बही, न० ६४, वि० स० १७१६
३. धान रे भोग री वही, न० ५७, वि० स० १७३६

४ गावा रे भोग री व कुन्ता वही, न० २०७, वि० स० १७४०
५ भोग व कुन्ता बही, न० २०७।१, वि० स० १७४०
६ भोग व कोठार री बही, न० ३४, वि० स० १७४२
७ भोग री बही, न० ६५, वि० स० १७८६

खालसा बहिया

१ खालसा गावा री वही, न ६५, वि० स० १७२६
२ देश रे खालसा बही, न० ६७, वि० स० १७४०
३ खालसा रा गाव हुजदारा सू किया तेरी विगत न० १००, वि० स० १७५५
४ गावा रे लेखे री वही खालसा, न० ६४, वि० स० १७६०
५ वही खालसा गावा री, न० १०१, वि० स० १७६१

घोडा बहिया

१ घोडा खरीद बही, न० २३५, वि० स० १७४६
२ तबेला खर्च बही, न० २३४, वि० स० १७५६
३ घोडा रे जमा खर्च री बही, न० १४०, वि० स० १७८८

विवाह बहियां

१ बाईयो रे ब्याव री वही, न० १४३, वि० स० १८१६
२ बाईजी सरदार कुवरजी रे ब्याव री वही, न० १५४, वि० स० १८२७

अन्य बहियां

१ खाता पट्टे गाव लिख दीणा तेरी विगत, न० २१६ वि० स० १७०८
२ परचूण खच, न० १२०, वि० स० १७१७
३ खरडा बही, न० २३८, वि० स० १७१७
४ समसत गावा री बही, न० ७१, वि० स० १७२७ ४५
५ अनूपगढ रे गावा री वही, न० ६६, वि० स० १७५०
६ घृत खरीदने री बही, न० २३६ वि० स० १७५२
७ गावा रे थित री वही, न० २२७, वि० स० १७५२
८ कामदारो व वकीला रे रोजगार री बही, न० २०६ वि० स० १७५३
९ उगराई बही, न० २२६, वि० स० १७५४
१० अनूपसागर बही, न० २३३, वि० स० १७५४
११ जखीरे री बही, न० १३६, वि० स० १७५६

१२ बीदावतो की नजर बही, न० २०२, वि० स० १८०३
१३ बही हजूर रे खड री, न० २०८, वि० स० १८०३
१४ लस्कर बही न० २४१, वि० स० १८२६
१५ हाथियो व तुलादान री बही, न० २००, वि० स० १८४८
१६ सीरबन्धो री बही, न० १६४, वि० स० १८४८
१७ साहुकारा री गुलकरी बही न० १६०, वि० स० १८६१
१८. साहुकारा रे भाछ री बही, न० १५६, वि० स० १८६५

(आ) बीकानेर रिकोर्ड्स, रा० रा० अ० बी०

१ बस्ता हजूर (हजूर बहिया वि० स० १८०२ स १८६८ तक), बस्ता न० १
२ बस्ता खालसा गावो का (खालसा गावो की बहिया, वि० स० १८२० से १८७८ तक), बस्ता न० १-२
३ बस्ता खाता खजाना सदर (खाता खजाना सदर बहियां, वि० स० १८१० स १८७५ तक)
४ बस्ता लेखापाडा (लेखा बहिया, वि० स० १८४० से १८७५ तक)
५ बस्ता सम्भाल व लाजम रा (बही सम्भाले लाजमे री, बही तनबगसी पणे रो लाजमो सरदारो कन लियो तेरो लेखो, वि० स० १८६२)
६ खाता खजाना सदर, वि० स० १८११, नग ६, न० ८५
७. बही खजाने री, सवत् १८१५, न० १६
८ बस्ता परगना हासल भाछ (परगना हासल भाछ री बहिया, वि० स० १८०२ से १८६६ तक)
९ बस्ता महकमा पेशक्सी (बही पेशक्सी री, वि० स० १८१८, १८१७, १८२०, १८२३, १८३४, १८५८, १८६०—सात नग)
१० बस्ता महकमा धान री चौथाई का (बही धान री चौथाई री, वि० स० १७६३, १८११, १८२०, १८३८, १८४६, १८४७, १८६०, और १८६३-आठ नग)
११. धान री चौथ, वि० स० १८११, चीरे री बही
१२ बही १८२० साल री खत किया तथा उधारा लिया, वि० स० १८२०
१३ बही खजाना री, वि० स० १८५२
१४. बही भाछ री, वि० सं० १८५४

(३) रामपुरिया रिकोर्ड्स, बीकानेर, रा० रा० अ० बी०

कागदों की बही

१ कागदा री बही, वि० स० १८११
२ कागदो री बही वि० स० १८२०
३ कागदा री बही, वि० स० १८२७
४ कागदा री बही, वि० स० १८३१
५ कागदा री बही, वि० स० १८३८
६ कागदो की बही, वि० स० १८३९
७ कागदो री बही, वि० स० १८४०
८ कागदो की बही, वि० स० १९४६
९ कागदो की बही, वि० स० १८५१
१० कागदो की बही, वि० स० १८५८
११ कागदो री बही, वि० स० १८५७
१२ कागदो की बही, वि० स० १९५९
१३ कागदों री बही, वि० स० १८६१
१४ कागदा की बही, वि० स० १८६३
१५ कागदा री बही, वि० स० १८६६
१६. कागदो री बही, वि० स० १८६७
१७ कागदो की बही, वि० स० १८६८
१८ कागदों की बही, वि० स० १९६८
१९/१ कागदो की बही, वि० स० १९७०
१९/२ कागदो की बही, वि० स १८७०
२० कागदा की बही, वि० स० १८७१
२१ कागदो की बही, वि० स० १८७२

सावा बहिया

क—सावा बही राजगढ़
१ सावा बही राजगढ़, वि० स० १८२८, २ वि० स० १८३१,
३ वि० स० १८३५, ४ वि० स० १८४२-४४
ख—सावा बही रतनगढ़, वि० स० १८५८ से १८६१
ग—सावा बही मण्डी सदर
१ सावा बही मण्डी सदर, वि० स० १७९२, २ वि० स० १८०२-४,

३ वि० स० १८१०-१२, ४ वि० स० १८२१-२२

घ—सावा बही रीणी

१ सावा बही रीणी, वि० स० १८१४-२३, २ वि० स० १८२४-२८, ३ वि० स० १८२८, ४ सावा बही रीणी, वि० स० १८३४-३८, ५ वि० स० १८३६-४३, ६ वि० स० १८५४-५५

च सावा बही हनुमानगढ, वि० स० १८६२-६७

छ सावा बही सूरतगढ, वि० स० १८४४-५४

ज सावा बही अनूपगढ़,—

१ सावा बही अनूपगढ़, वि० स० १७५३-५४, २ वि० स० १८१८-२१, ३ वि० स० १८२१ स२८, ४ वि० स० १८२८ से ३४, ५ वि० स० १८३४ स ४३, ६ वि० स० १८५४-५५

झ सावा बही नोहर—

१ सावा बही नोहर, वि० स० १८२२-२५, २ वि० स० १८२५ से २७, ३ वि० म० १८३१ स ३२, ४ वि० स० १८३४-४०, ५ वि० स० १८४०-४३, ६ वि० स० १८४३-४६, ७ वि० स० १८४९

ट सावा वही भादरा, वि० स० १८७६-८५

ठ सावा बही चूरू, वि० स० १८२९

ड सावा बही सरदारगढ, वि० स० १८८८

बही जमीं रे कागदा री, नबर ५

१ वही जमी रे कागदा री, वि० स० १८१४-२१ २ वि० स० १८४३-४५ ३ वि० स० १८४६-५६ ४ वि० स० १८६२-६३

बही चिट्ठी रे खतों री, नबर २९

१ बही चिट्ठी रे खतो री, वि० स० १८२०, २. वि० स० १८३७, ३ वि० स० १८४९, ४ वि० स० १८५१, ५ वि० स० १८५७, ६ वि० स० १८६४-६५

१ वही खरच री, वि० स० १८८५, न० ३०

१ बही तलबे तपारी, वि० स० १८६६, न० ३१

खालसा बहिया, न० ३२

१ वही खालसा रे गाव री, वि० स० १८२७, २ वि० स० १८३० ३ वि० स० १८६५

पट्टा बही, न० ३३

१. पट्टा बही, वि० स० १६८२, २. वि० सं० १६९२, ३. वि० सं० १७०४-५, ४. पट्टा बही, वि० स० १७२५, ५ वि० स० १७२५-२६, ६. वि० सं० १७४२, ७ वि० स० १७५३

बही बडा कमठाणा री

१ बही बडा कमठाणा री, वि० स० १७४६, २. वि० स० १८०८-१२, ३. वि० स० १८१२ से १३, ४. वि० स० १८१६, ५. वि० स० १८२१, ६. वि० स० १८२३-२४, ७ वि० स० १८२५

अन्य बहियाँ

१. बही कूच मुकाम रे कागदा री, वि० स० १८१०-१४ न० ३४
१ बही अमल रे चीठीया रे खता री, वि० स० १८६९-६८ न० ३६
१ बही पेशकसी रे लेखे री, वि० स० १८५३, नं० ३८
१. बही सासण री, वि० स० १६७१, न० ३९
१. बही महाजना पहिया री, न० ४०।१
१, बही महाराज गजसिंघजी धाम पधारिया तेरी, वि० स० १८४३, न० ४०।२
१ बही परगना फलोदी रे गाव री, वि० स० १७०१, न० ४०।३
१ बही पानावली ठिकाणा री, वि० स० १८००, न० ४०।५
१. बही विगत ताजीम री, नबर ४०।६
१. बही पट्टे रे गावा री, न० ४०।८
१ बही घोडा रेख री, वि० स० १८३५, नबर ४०।९
१ बही रूखवाली भाछ री, वि० स० १८७९, न० ४०।१०
१ बही परचून ठिकाणा री, वि० स० १८८५, नं० ४०।११
१. बही छाप रे कागद री, नबर ४०।१२
१. *बही रसाले री, वि० स० १६८७, न० ४०।१३*
१. बही बाईजी श्री सरदार कुअरजी रे ब्याव री, वि० स० १८२७, न० ४०।२२

परवाना बही

१ परवाना बही, वि० स० १७४०, न० २२।३
२. परवाना बही, वि० स० १८००, न० २२।२
३ बही खाल रे गता री, न० २२।३

(ई) जोधपुर रिकार्ड—रा० रा० अ० बी०

१ खरीता रजिस्टर और खरीता बहियां
२ ख्यात री बही, बस्ता न० ४३
३ तवारिख जोधपुर, बस्ता न० ४०
४ विजय विलास, बस्ता न० १४
५. हकीकत बहिया, वि० सं० १८२१ से १८७५

(उ) अन्य रिकार्ड—रा० रा० अ० बी०

१ जयपुर बही बीकानेर विभाग
२ तवारिख जैसलमेर बस्ता न० ७५
३. खरीता, बीकानेर महाराजा गजसिंह का, मगसिर (मार्गशीर्ष) बद २, वि० स० १८१२

(ऊ) मोहता रिकार्ड—रा० रा० अ० बी०

१ वेरियस परवानाज़ ऑफ दी बीकानेर रूलर्स एड्रेस्ड टू दी मोहता फेमिली ऑफ बीकानेर पलेश न० २, माइक्रो फिल्म रील न० ८, (२१ परवाने)
२ कोन्टेम्परेरी नेरेटिव प्रिपेयरड बाई दी मोहता भीमसिंहजी रिगार्डिंग दी सीज़ ऑफ बीकानेर बाई महाराजा अभयसिंह आफ जोधपुर एलोगविद अदर नेरेटिव ऑफ अलियर रेन्स, (मोहता भीमसिंह द्वारा जोधपुर—महाराजा अभयसिंह के घेरे का वर्णन), पनेल न० २, माइक्रो फिल्म रील न० ८

(ए) भैय्या सग्रह - निजी सग्रह, बीकानेर

१ भैय्या आलमचन्दजी के पत्र, वि० स० १८०२-१८३० तक, स० ४८
२ भैय्या नथमल व जेठमल के पत्र वि० स० १८६६-१८७३ तक, स० १२६

बहियात

१ बही मोदीखाने रे ठीक री, वि० स० १८२६
२ बही घर खरच री, वि० स० १८४३
३ भाटियों र गाव री विगत, वि० स० १८४६
४ जमा खरच की बही, वि० स० १८५४
५ गारी पट्टी मगरे री रूखवाली री बही, वि० स० १८५६

६ लेखे री वही, वि० सं० १८६०
७ बीदाहद री रूखवाली भाछ री वही, वि० स० १८६१
८ मोरगढ़ रे थोणे री जमा खर्च री वही, वि० स० १८६२
९. चौरे खारी पट्टे रे जमा खर्च री वही, वि० स० १८६५
१०. पैदा री सरख ठीक री वही, वि० स० १८६६
११ गांव बुधणाव रे लेखे री वही, वि० स० १८७०
१२. जमा खर्च री वही, नथमल, वि० स० १८७२
१३. विगत रुक्कों री, वि० स० १८७२
१४. गुवाडियो रे सै भाछ उगाई री वही, वि० स० १८७२
१५. फौज री जमा खर्च री वही, वि० स० १८७२
१६. वही फौज रे भाछ री, वि० स० १८७२
१७ लेखे री वही, वि० स० १८७२
१८. नोहर रे थाणे री जमा खर्च री वही, वि० स० १८७२
१९. चोपनिया तनवगसी रा, वि० स० १८७३
२०. वही खता री, वि० स० १८७३
२१ सीरबन्धी री हाजरी री वही, वि० स० १८७३
२२. सीरबन्धी री चिठिया री नक्ल, वि० स० १८७३
२३. वही साहूकारो री जगात रे लेखे री, वि० स० १८७४
२४. वही कोटडी रे लाजम री, वि० स० १८७४
२५ वही नोहर थाणै रे जमा खरच री, वि० स० १८७४
२६. बन्दूकचीया री विगत, वि० स० १८७५
२७. विगत कागद मू उतारी, वि० स० १८७८

(२) शिलालेख (संस्कृत) बीकानेर

१. चिन्तामणि मन्दिर शिलालेख, स० १६६२
२. सूरज पोल प्रशस्ति, जूनागढ, बीकानेर, वि० स० १६५०
३. बीकानेर जैन शिलालेख, वि० स० १६८७
४. छत्री शिलालेख (अनूपसिंह) वि० स० १७५७
५. छत्री शिलालेख (सुजानसिंह), वि० स० १७९२
६ छत्री शिलालेख (जोरावरसिंह) वि० स० १८००

(३) एतिहासिक साहित्य

(अ) राजस्थानी साहित्य

१ राव जैतसी रो छन्द बीठु सुजे रो कयो, अ० स० पु० बी०
२ दलपत विलास—सम्पादक रावत सारस्वत, सार्दुल राजस्थानी रिसर्च इस्टीट्यूट, बीकानेर, १९६०
३ राजा सूरजसिंघ जी रे जागीर री विगत, फुटकर बाता, न० २०६।२-२०, अ० स० पु० बी०
४ सूबा री सरकारा ने परगना री विगत, न० २ ६।३, अ० स० पु० बी०
५ नागोर रे मामले री बात कवित, न० ६, अ० स० पु० बी०
६ राठौडो री वशावली तथा पीढिया, न० २३२।५, अ० स० पु० बी०
७ बीकानेर रे पट्टे रे गावा री विगत कर्णसिंघजी रे समै री, न० २२६।२, अ० स० पु० बी०
८ बीकानेर रे धणीया री याद ने बीजी फुटकर बाता, न० २२५।१, अ० स० पु० बी०
९ महाराजा अनूपसिंघजी रो आनन्दराम नाजर रे नाम परवानो वि० स० १७४६, आदुणी लिखत खास रुक्का न० १६७।१६, अ० स० पु० बी०
१० मुहणोत नैणसी री ख्यात, न० २०२।२४, अ० स० पु० बी०
११ बरमलपुर विजय—मथेरण जोगदास, अ० स० पु० बी०
१२ महाराजा अनूपसिंघजी रे मुनसब न तलब री विगत, न० २०६।२-१६ अ० स० पु० बी०
१३ बीकानेर रै राठौड राजाआ री ने बीजा लोका री पीढीया—बीकानेर रे कामदारा वगैरा री पीढिया अ० स० पु० बी०
१४ राठौडा री वशावली व पीढिया व फुटकर बाता, न० २३३।६ अ० स० पु० बी०
१५ ओसवाला री पीढिया, न० २२८।१ अ० स०पु० बी०
१६ फुटकर बाता, न० २०६।२, अ० स० पु० बी०
१७ क्यामखा रासो, राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला, जयपुर

(आ) सस्कृत साहित्य

१ अनन्त-राजधर्म कौस्तुभ, न० २५२।५४, अ० स० पु० बी०
२ गीत गोविन्द टीका, न० २६-२६, अ० स० पु० बी०

३. जयसोम—कर्मचन्द्र वशोत्कीर्तनकम् काव्य, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, न० १२०६ इति
४. दिनकर भट्ट—साहित्य कल्पद्रुम, अ० स० पु० बी०
५ पेरशास्त्रिन –अनूप यशोवर्णन, न० ४४, अ० सं० पु० बी०
६. महादेव—रायसिंह सुधासिन्धु, न० ४२८३, अ० स पु० बी०
७. रायसिंह प्रशस्ति, न० २६-२६, अ० सं० पु० बी०
८. रायसिंहजी रो वेलि, न० २६-२६, अ० स० पु० बी०
९. विट्ठल कृष्ण विद्यावागीश—अनूपसिंघ गुणावतार, न० ४५, अ० स० पु० बी०
१०. होशिंग कृष्ण—कर्णावितस, न० २९८१, अ० स० पु० बी०

(इ) फारसी-साहित्य

१. अब्दुल कादिम बदायूनी—मुन्तखब-उत-तवारिख, अनु० रैंकिंग एण्ड लॉ
२. अब्दुल हमीद लाहोरी—बादशाहनामा, भाग २, बिबलियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १८६७-६८
३. अबुल फजल—अकबरनामा, अनु० एच० बेवरिज, भाग ३, ऐशियाटिक सोसायटी, बगाल, कलकत्ता, १८९७-१९१०
४. अबुल फजल—आईन-अकबरी, अनु० ब्लोकमैन, भाग १, १८७३ ई०: जैरेट, भाग २-३, १८९४ ई० बिबलियोथिका इण्डिका, कलकत्ता
५ इनायतखान—शाहजहानामा, अनु० इलियट एण्ड डाउसन, भाग ७
६. गुलाम हुसैन—सियार-उत-मुताखिरिन, भाग १-४ कलकत्ता, १९०२
७. तुजुके जहांगीरी, अनु० रोजर्स एण्ड बेवरिज, भाग २
८. निजामुद्दीन अहमद—तबकात-ए-अकबरी, अनु० बी० डे०, भाग ३, बिबलियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १९२७
९ मुहम्मद काजिम—आलमगीर नामा, बिबलियोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १८६५-७३
१०. मुहम्मद कासिम हिन्दुशाह—तारीख-ए-फरिश्ता, अनु० जे० ब्रीग्स—हिस्ट्री ऑफ दी राइज ऑफ मोहम्मडन पावर इन इण्डिया, भाग ४
११. मुहम्मद सकी मुस्तैद खान—मासिरे आलमगीरी, अनु० सर जदुनाथ सरकार, कलकत्ता, १९४७
१२. मुहम्मद हाशिम खाफीखान—मुन्तखब-उल-लुबाब
१३- शाहनवाज खान—मासिर-उल-उमरा, भाग ३, एशियाटिक सोसायटी, बगाल, कलकत्ता

फरमान, रा० रा० अ० बी०

१ सम्राट अकबर का राजा रायसिंह के नाम फरमान, दिनाक ७ उर्दिबिहिश्त ३७,२५ अप्रैल, १५६२, न० १

२ सम्राट अकबर का राजा रायसिंह के नाम फरमान, दिनाक ५ उर्दिबिहिश्त, ४२१ अप्रैल, १५६६, न० ४

३ सम्राट अकबर का राजा रायसिंह के नाम फरमान, दिनाक ६ दाइ ४२, फरवरी, १५६७, न० ६

४ शहजादा सलीम का रायसिंह के नाम निशान, दिनाक २६, अजर ४२, नवम्बर, १५६७ न० ८

५ सम्राट अकबर का राजा रायसिंह के नाम फरमान, दि० १६ उर्दिबिहिश्त ४६, अप्रैल, १६०४, न० १२

६. सम्राट जहागीर का राव सूरजसिघ के नाम फरमान, दि०—दाई इलाही १।१२, दिसबर १६०६, न० १८

७ शहजादा खुर्रम का राजा सूरजसिह को निशान, दि० १५ फरवरदीन ६।२६, मार्च, १६१४ ई०, न० २४

८ सम्राट जहागीर रा राय सूरजसिह को फरमान, दि० १ खर्वदाद, ६ मई, १६१४, न० २६

६ सम्राट जहागीर का राय सूरजसिह को फरमान, दि० ५, अमरदाद ६, जुलाई १६१४, न० २७

१० शहजादे खुर्रम का राजा सूरजसिह को निशान, दि० ५, अस्फन्दारमुज, इलाही, ११ फरवरी, १६१६, न० ३३

११ सम्राट जहागीर का राजा सूरजसिह को फरमान, दि० १३, दाइ इलाही १२, नवम्बर, १६१७, नबर ३७

१२ सम्राट जहागीर का राय सूरजसिह को फरमान, दि० १४, अस्फन्दारमुज १५ फरवरी १६२०

१३. साम्राज्ञी नूरजहा का रानी गगाबाई को निशान,२ शहरयार, १४, अगस्त, १६१६, न० ३७

१४ सम्राट जहागीर का सूरजसिह को फरमान, दि० १६, मेहर—२२/२६ सितम्बर, १६२७ न० ६१

१५ दावर बख्श का राय सूरजसिह को निशान, दि० २० अबान—२२, अक्टूबर, १६२७, न० ६२

१६ सम्राट जहागीर का राव सूरजसिह को फरमान, दि० ८, मोहर ' , सितम्बर, न० ६६

१७ सम्राट औरंगजेब का अनूपसिंह को फरमान, दिनांक १६, रबी-उल अव्वल १०,११ नं० ६१
१८ सम्राट शाह आलम का महाराजा गजसिंह को फरमान, दि० १४ जमादिउससानी ४, जुलाई, १७६२, नं० ८०

माध्यमिक स्रोत

(१) राजस्थानी-साहित्य

१ आर्याख्यान कल्पद्रुम—सिंढायच दयालदास, नं० १८०।८ अ०स०पु०बी०
२ देशदर्पण—दयालदास, नं० १८६।८, अ० स० पु० बी०
३ दयालदास री ख्यात, भाग १, भाग २, नं० १८८।१० (क—ख), अ० स० पु० बी०, भाग २, प्रकाशित—अनु० दशरथ शर्मा, सादुल प्राच्य ग्रन्थमाला, अ० स० पु० बी०, स० २००५
४ बांकीदास री ख्यात—सम्पादक जिन विजय मुनि, जयपुर १९५५
५ बीदावतों की ख्यात—ठाकुर बहादुरसिंह
६ उदयपुर री ख्यात व फुटकर कविता, नं० १२२।४, अ० स० पु० बी०
७ बीकानेर रै राठौडों री ख्यात, सींढ़ै जी सूं, नं० १६२-१४, अ० स० पु० बी०
८ मारवाड़ की ख्यात, भाग-२, अ० स० पु० बी०

(२) हिन्दी-साहित्य

१ वंश भास्कर—सूर्यमल्लमिश्रण, भाग २, जोधपुर, वि० स० १९५६
२ वीर विनोद—श्यामल दास, मेवाड़ गवनमण्ट पब्लिकेशन, १८८६ ई०
३. लक्ष्मीचन्द तवारिख राज श्री जैसलमेर, गवर्नमेण्ट पब्लिकेशन, जैसलमेर, १९०४ ई०
४ मुंशी सोहनलाल—तवारिख राजश्री बीकानेर, स० १९४७
५ ठाकुर मेघसिंह—तवारिख रियासत बीकानेर, गवनमण्ट पब्लिकेशन, बीकानेर १८५८

आधुनिक स्रोत

(१) प्रकाशित

१. अलपधारी—राजा पार्थसिंह, १९३४
२ अनन्त सदाशिव अलतेकर—प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, द्वितीय

संस्करण, प्रयाग, १९५९
३. अतहरअली—दी मुगल नॉबिलिटी अण्डर औरंगजेब, एशिया, १९६६
४ आर० वी० सिंह—हिस्ट्री ऑफ चाहमन्स्, १९६४
५. आर० पी० त्रिपाठी—सम आस्पेक्ट्स ऑफ मुगल एडमिनिस्ट्रेशन, इलाहाबाद, १९६४
६. आर० पी० त्रिपाठी—मुग़ल साम्राज्य का उत्थान व पतन, अनु० कालीदास कपूर, द्वितीय संस्करण, इलाहाबाद, १९६९
७ आर० पी० व्यास—नाबिलिटी इन मारवाड़, दिल्ली, १९६९
८. ओझा निबन्ध संग्रह—भाग १ से ५, विद्यापीठ, उदयपुर, १९५९
९. इब्ने हसन —दी सेंट्रल स्ट्रक्चर ऑफ दी मुगल एम्पायर, बम्बई, १९३६
१०. इरफान हबीब – दी एगरेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, बम्बई, १९६३
११. ईलियट एण्ड डाउसन—दी हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग १-८, लन्दन, १८६६
१२. ए डेस्क्रेप्टिव लिस्ट आफ फरमान्स, मन्सूर एण्ड निशान्स, डायरेक्ट्रेट ऑफ आरकाईव्ज, बीकानेर, १९६२
१३ ए० एल० श्रीवास्तव—अकबर महान, भाग १-३, अनु० डा० भगवानदास गुप्त, आगरा, १९६७, १९७२
१४. ए० पी० एडम्स—दी वैस्टर्न राजपूताना ऐस्टेट्स एण्ड दी बीकानेर एजेन्सीज् लन्दन, १९००
१५. एन० एल० डे०—दी जियोग्राफीकल डिक्शनरी ऑफ एनशियन्ट मैडिवल इण्डिया, १८१९
१६. ए० सी० बनर्जी—राजपूत स्टडीज़, कलकत्ता, १९४४
१७. ए० सी० बनर्जी—दी राजपूत स्टेट्स एण्ड दी ईस्ट इण्डिया क०, कलकत्ता १९५१
१८ एम० एम० मेहता—लार्ड हैस्टिग्स एण्ड दी इण्डियन स्टेट्स, लन्दन, १९२५
१९. करणीसिंह—दी रिलेशन्स ऑफ दी हाउस ऑफ बीकानेर विद दी सेंट्रल पावर्स, दिल्ली, १९७४
२०. कर्नल जेम्स टॉड—एनल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज ऑफ राजस्थान, ऑक्स-फोर्ड, १९२०
२१. कर्नल मैलसन—ए हिस्टोरिकल स्केच ऑफ दी नैटिव स्टेट्स ऑफ इण्डिया, लन्दन, १८७५

२२ कालिका रजन कानूनगो—शेरशाह एण्ड हिज टाइम्स, अनु० मथुरालाल शर्मा ग्वालियर, १९६६
२३ के० एम० पनिकर—हिज हाईनेस दी महाराजा ऑफ बीकानेर, ऑक्सफोर्ड, १९३७
२४ गोविन्द अग्रवाल—चूरू मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास चूरू, १९७४
२५ जी० एन० शर्मा—ए बिबलियोग्राफी ऑफ मेडिवल राजस्थान, आगरा, १९६५
२६ जी० एन० शर्मा—सोशियल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान (१५००-१८०० ई०) आगरा, १९६८
२७ जी० एन० शर्मा—ऐतिहासिक निबन्ध राजस्थान, जोधपुर, १९७०
२८ जी० एन० शर्मा—राजस्थान का इतिहास, द्वितीय संस्करण, आगरा, १९७३
२९ जी० एस० एल० देवड़ा—ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान, (१७४५-१८२६) बीकानेर, १९८०
३० जी० एस० एल० देवड़ा—सोशियो इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, जोधपुर, १९८०
३१ जी० डी० शर्मा—राजपूत, पोलिटी दिल्ली, १९७७
३२ जी० सी० शर्मा—एडमिनिस्ट्रटिव सिस्टम ऑफ राजपूत्स, दिल्ली, १९७९
३३ जी० आर० परिहार—मारवाड़ एण्ड दी मराठाज, जोधपुर, १९६८
३४ जी० एस० सर देसाई—न्यू हिस्ट्री ऑफ दी मराठाज, भाग ३, १९४८
३५ जे० एन० सरकार—औरंगजेब, भाग १-५, १९१२, १९२४, १९२८, १९३०, १९३४
३६ जे० एन० सरकार—फाल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग ३, कलकत्ता, १९५२
३७ जे० एन० सरकार—फाल ऑफ दी मुग़ल एम्पायर, भाग २, कलकत्ता, १९५३
३८ जी० एच० ओझा—बीकानेर राज्य का इतिहास, भाग १-२, अजमेर, वि० सं० १९९६, वि० स० १९९७
३९. जी० एच० ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग १-२, अजमेर, १९३८, १९४१
४०. जार्ज थोमस—मिलट्री मेमोयर्स, सम्पादक विलियम फ्रेंकलिन, कलकत्ता, १८०३
४१ टैसीटोरी—ए डेस्क्रेप्टिव केटलोग ऑफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मेन्य-

स्क्रिप्ट सवशन, प्रोजक्रोनिकल्स, पार्ट सेकिण्ड, बीकानेर स्टेट—बिबलियोथिका इण्डिका—कलेक्शन ऑफ ओरियन्टनल वर्क्स, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, न्यू सीरीज, नम्बर १४१३, १६१८
४२ डब्ल्यू इरविन—लेटर मुगल्स, भाग १-२, १६२२
४३ डब्ल्यू इरविन—मिलिट्री एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी मुगल्स, अनु० रमेश तिवारी, इलाहाबाद
४४ थोमस एडवर्ड—दी मेकिंग ऑफ दी इण्डियन प्रिन्स, १६४३
४५ दी हाऊस ऑफ बीकानेर—ए नेरेटिव, बीकानेर १६३३
४६ दशरथ शर्मा—अर्ली चौहान डायनेस्टी, दिल्ली, १६५०
४७ दशरथ शर्मा—राजस्थान थ्रू दी एजेज, बीकानेर, १६६६
४८ दशरथ शर्मा—लेक्चर्स ऑफ राजपूत हिस्ट्री, दिल्ली, १६७०
४६ पी० सरन—स्टडीज इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, द्वितीय संस्करण, बम्बई, १६७३
५० पद्मजा शर्मा—महाराजा मानसिंह ऑफ जोधपुर, आगरा, १६७२
५१ फोर डीकेडस आफ प्रोग्रेस इन बीकानेर, बीकानेर, १६४४
५२ बीकानेर गोल्डन जुबली, गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन, बम्बई, १६३७
५३ बी० पी० सक्सेना—शाहजहाँ ऑफ दिल्ली, इलाहाबाद, १६३२
५४ मीर मुन्शी श्रीराम—ताजीमी, राजवीज, ठाकुर्स एण्ड खुवासवाल्स ऑफ बीकानेर, बीकानेर
५५ मथुरालाल शर्मा—हिस्ट्री ऑफ जयपुर स्टेट जयपुर, १६६६
५६ मोतीचन्द खजान्ची—मीनियेचर पेन्टिंग्स, ललित कला ऐकेडमी, नई दिल्ली, १६६०
५७ मोर लेण्ड—दी ऐगरेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, इलाहाबाद, १६२६
५८ रजिस्टर देहात खालसा, बीकानेर
५६ रघुवीर सिंह—पूर्व आधुनिक राजस्थान, उदयपुर, १६५१
६० रफाक़त अली खान—दी कच्छावाहा अण्डर अकबर एण्ड जहाँगीर, दिल्ली, १६७६
६१ रायबहादुर हुक्मसिंह सोढी—जियोग्राफी ऑफ बीकानेर, बीकानेर
६२ वी० ए० स्मिथ—अकबर, दी ग्रेट मुगल, आक्सफोर्ड, १६१६
६३ वी० एन० रेऊ—मारवाड का इतिहास, भाग १-२, जोधपुर, १६४०
६४ वी० एस० भटनागर—लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सवाई जयसिंह (१६८८-१७४३) दिल्ली, १६७४
६५ वी० एस० भार्गव—मारवाड एण्ड दी मुग़ल एम्परर्स, दिल्ली, १६६६

६६ सर जोन मॉल्कम—मैमोयर्स ऑफ सैन्ट्रल इण्डिया भाग १ लन्दन १८८०
६७ सर एच० एम० ईलियट—नार्थ वेस्ट प्रोविन्सिस ऑफ इण्डिया, लन्दन
६८ सर्जन मेजर डब्ल्यू एच नेलसन—ए-मैडिको टोपोग्राफिकल एकाउण्ट आफ बीकानेर विद मैप्स एण्ड प्लान्स, इलाहाबाद, १८६६
६६ सी० यू ऐतचीसन—ए कलैक्शन ऑफ ट्रीटीज, ए इन्गेजमैन्ट्स एण्ड सनदस, गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया, कलकत्ता, १६३२
७० सैय्यद नुरुल हसन—थोट्स ऑन एगरेरियन रिलेशन्स इन मुगल इंडिया, नई दिल्ली, १६७३
७१ सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी—हुमायूनामा भाग १ मुगलकालीन भारत, अलीगढ़ १६६१
७२ हरमन गौयट्ज—आर्ट एण्ड आरकिटेक्चर ऑफ बीकानेर, आक्सफोर्ड १६५०

(२) अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध

१ एस० पी० गुप्ता—दी लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन इन ईस्टर्न राजस्थान, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, १६७५
२ तोलाराम अग्रवाल—रिलेशन्स बिटवीन दी रूलर्स एण्ड दी नॉबल्स ऑफ बीकानेर १८१८—१६४६
३ दिलबागसिंह—लोकल एण्ड लैण्ड रेवेन्यू एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी स्टेट ऑफ जयपुर, १७५०—१८००, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, १६७५
४ शशी अरोड़ा—पोजिशन आफ वूमन इन राजस्थान (१६००-१८००) राजस्थान विश्वविद्यालय, १६७८

(३) गजेटियर, पत्रिका, शब्दकोष, तिथि-पत्रक

१ इम्पीरियर गजेटियर ऑफ इण्डिया, प्रोविन्शियल सीरीज, राजपूताना, १६०८
२ गजेटियर, दी बीकानेर स्टेट, कैप्टन पी० डब्ल्यू, पाउलेट गवर्नमेन्ट प्रेस, बीकानेर १६३५
३ के० डी० अर्सकिन—राजपूताना गजेटियर्स, गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन, कलकत्ता, १६०६
४ जनरल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, न्यू सीरीज, कलकत्ता
५ दी इण्डियन इकोनोमिक एण्ड सोशियल हिस्ट्री, रिव्यू, वौल्यूम, न० १ जुलाई-सितम्बर, १६६३

६ प्रोसिडिंग्स आफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस जोधपुर सशन, १९६७, जयपुर, सशन १९६८ ब्यावर सशन, १९७३ पाली सशन, १९७४ अजमेर सशन १९७५, डिपार्टमेन्ट आफ हिस्ट्री, यूनिवर्सिटी आफ जोधपुर, जोधपुर

७ प्रोसीडिंग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस, १९५८-६२

८ परम्परा, सम्पादक नारायणसिंह भाटी, राजस्थान शोध-संस्थान, चोपासनी, जोधपुर, भाग २८-२९, १९६९

९ राजस्थान भारती, सादूल राजस्थान रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर, दिसम्बर १९७२ जनवरी-मार्च, १९७४ जुलाई-दिसम्बर, १९७४

१० वैचारिकी, भारतीय विद्यामंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, दिसम्बर १९७५

११ शोध-पत्रिका, उदयपुर, १९५०-६३

१२ ऐतिहासिक तिथि पत्रक, जगदीश सिंह गहलोत, जोधपुर, १९६२

१३. मानविकी-शब्दावली ह्यूमंनिटीज ग्लोसरी— मिनिस्ट्री आफ एजूकेशन, गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, १९६६

१४ संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सप्तम् संस्करण, १९७१

अनुक्रमणी

डॉ० जी एस एल देवड़ा

जन्म बीकानेर (राजस्थान) म १९४५ ई० म, राजस्थान विश्वविद्यालय म १९६७ ई० म इतिहास (मध्यकालीन भारत) म प्रथम श्रेणी म एम० ए० (स्वर्ण पदक प्राप्त), १९७६ म इसी विश्वविद्यालय स पी एच० डी० डिग्री प्राप्त; लगभग १३ वर्ष का स्नातक एव स्नातकोत्तर कक्षाओं क अध्यापन का अनुभव, इस समय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर के स्नातकोत्तर इतिहास विभाग स सम्बन्धित।

डा० देवडा के २८ शोध लेख, राजस्थान की राजनीतिक, आर्थिक व विज्ञान की समस्याओं स सम्बन्धित, विभिन्न शोध पत्रिकाओं म प्रकाशित हो चुके हैं। अब तक प्रकाशित पुस्तकों म—ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान, इण्डियन केलण्डर, कालगणना व पचाग, सम आस्पेक्ट्स ऑफ सोशियो-इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ राजस्थान (सम्पादन) व महाराजा गगासिंह शताब्दी ग्रन्थ (सम्पादन) उल्लेखनीय है।